बसन्त







प्रकाशक :

महाराजा छत्रसाल नेहरू युवा क्लब

एवं

बुन्देली उत्सव आयोजन समिति

बसारी जिला छतरपुर (म.प्र.)

(07686) 81251

शुभकामनाओं सहित

2/2/2001

मूल्य : 50/–

पचास रुपये

बसन्त

पंचम बुन्देली उत्सव के अवसर पर प्रकाशित

सम्पादक :

डॉ. बहादुर सिंह परमार

4/2, प्रोफेसर्स कॉलोनी,

छतरपुर (म.प्र.) 471 001

☎: (07682) 44133

सह सम्पादक :

- **डॉ. के.एल. पटेल**

  3/4, प्रोफेसर्स कॉलोनी,

  छतरपुर (म.प्र.)

- **डॉ. हरिसिंह घोष**

  घोषयाना, संकटमोचन मार्ग

  छतरपुर (म.प्र.)

  ☎:(07682) 43066

संपादन एवं प्रबंध पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

आवरण चित्र :

रामकुमार सोनी, छतरपुर (म.प्र.)

छाया चित्र :

आर.के. स्टूडियो एवं दिनेश पटेल, छतरपुर

मुद्रक :

जिला सहकारी संघ मुद्रणालय, छतरपुर (म.प्र.)

☎: (07682) 22686

आवरण मुद्रण :

प्रियंका आफसेट, भोपाल (म.प्र.)

(0755) 555789

शुभकामनाओं सहित

2/2/2001

अनुक्रम

आलेख :

कविताएँ :

लघुकथाएँ :

कहानी :

सम्पादकीय :

हमारे देश तथा विश्व के धनाढ्य लोग इस समय एक मुहावरा बड़े जोरों से उछाल रहे हैं कि 'सूचना क्रांति के कारण संसार एक गांव बन गया है।' जब संसार एक गांव बन ही गया है तो संसार में सांस्कृतिक संघर्ष भी प्रारम्भ मान ही लिया जाये क्योंकि अमेरिकी विचारक हटिंगटन ने वर्षों पहले इक्कीसवीं सदी को संस्कृतियों के संघर्ष का युग घोषित किया था और उसी दृष्टिकोण को सही साबित करने हेतु आज अमेरिकी सत्ता अपनी संस्कृति की डुगडुगी संसार भर में जादूगर की तरह बजा रही है। हम तथा हमारे देश के कर्णधार इस मायावी संस्कृति (भोगवादी, स्वार्थी तथा आत्मकेन्द्रित) के मोहपाश में फँसते चले जा रहे हैं। यहां एक यक्ष प्रश्न उत्पन्न होता है कि सूचना क्रांति की सुख सुविधा कितने लोगों के पास है? जिस देश में तीस प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर दो जून की रोटी को मोहताज हो। अधिसंख्य किसान-मजदूर कर्ज में फंसा हो और शोषण-चक्र में पिस रहा हो। उसके लिए यह सूचना-तकनीक आदि बेमानी है। लेकिन विश्व पूँजी के सरमायेदार लोग अपनी कुटिल चालें चलकर हमारे बहुसंख्यक समुदाय को भोगी, कामुक तथा विलासी बनाने के साथ परजीवी बनाने में संलग्न है। वे हमारी संस्कृति को विकृत कर इसे भ्रष्ट कर रहे हैं। लोक आचरण परिवर्तित होने से इसका सीधा प्रभाव हमारी लोक संस्कृतियों पर पड़ रहा है। लोक का लोभी मन इस सभ्यता की माया में पड़कर मूलभूत लोकमूल्यों को तजकर अपनी निज गौरवशाली संस्कृति को विस्मृत कर रहा है। हमारा बुन्देलखण्ड भी इस परिवर्तन से अछूता नहीं है। हमें अपनी विशिष्ट पहचान कायम रखते हुए विश्व परिदृश्य में भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों को कायम रखना होगा। इसी अवधारणा को लेकर बसारी में विगत पांच वर्षों से बुन्देली-उत्सव का आयोजन किया जा रहा है। इसका स्वरूपपूर्ण व्यावहारिक लोक कलाकारों को स्थान दिलाने वाला है। हमारे कुछ विद्वजनों का सुझाव आया कि इस उत्सव में वैचारिक गोष्ठियाँ भी आयोजित होना चाहिये। मैं उनसे विनम्र अनुरोध करना चाहता हूँ कि मेरा व्यक्तिगत अनुभव यह है कि लोक संस्कृति या साहित्य के नाम पर हम बन्द कमरों या होटलों में बैठकर हम चर्चा तो कर लेते हैं, बड़े-बड़े मंसूबे बाँध दावे कर लेते हैं लेकिन वास्तव में लोक संपृक्तता न होने से अपना प्रभाव नहीं छोड़ पाते। विद्वजनों के मार्गदर्शन हेतु हमने यह *'बसन्त'* पत्रिका प्रारम्भ की है, जिसके माध्यम से हमारे लोक का मस्तिष्क अपने विचार न केवल मुद्रित रूप से लोक कलाकारों तक पहुँचायेगा बल्कि वे ऐतिहासिक दस्तावेज भी बनेंगे मेरा ऐसा विचार है। विगत वर्ष समिति स्मारिका का नामकरण समय से न कर सकी किन्तु उसे 'बसन्त' की ही कड़ी माना जाए। विद्वानों ने पिछली स्मारिका को सराहा मैं उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ।

सूचना तकनीक से जहां हमें लाभ प्राप्त हुए हैं वहीं कुछ हानियाँ भी। हानि हमारे वैयक्तिक स्वार्थों से यह हुई कि लोक संस्कृति व कलाओं के नाम पर तथाकथित कुछ कलाकारों ने रुपये की हवस में लोक आत्मा को समझे बिना भौंड़े व विकृत स्वरूप में

प्रस्तुतियाँ दी हैं। जिससे गलत संदेश गया है। बुन्देली उत्सव समिति सूचना तकनीक का लाभ उठाकर बुन्देली संस्कृति तथा कला के विविध रूपों को इंटरनेट व अन्य विकसित माध्यमों से इसे प्रतिष्ठित करने हेतु प्रयत्नशील है। इस वर्ष से समिति ने यह भी निर्णय लिया है कि प्रतिवर्ष यह आयोजन महाप्राण निराला तथा माँ सरस्वती दिवस के साथ लोक में उमंग लाने वाले बसन्त पंचमी पर्व से प्रारंभ किया जायेगा। हमने बैलगाड़ी दौड़ तथा अश्व नृत्य आदि को दिवसीय कार्यक्रमों में सम्मिलित कर लोक जुड़ाव को बढ़ाने का प्रयत्न किया है।

हमने 'बसन्त' के माध्यम से लोकसाहित्य के विविध पक्ष रखने की कोशिश की है जैसा कि आप जानते हैं कि लोक साहित्य की प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें जीवन का वास्तविक चित्र अकुण्ठित भाव से मिलता है। उसमें शोषित की पीड़ा व व्यथा और शोषक की बर्बरता और अमानुषिकता भी रहती है लेकिन शोषित की दुष्टता और शोषक की उदारता भी उसमें छिपाई नहीं जाती। यह सब मैं इसलिए कह रहा था कि मैंने रचनाओं में वह सब पत्रिका में जाने दिया जो लोकमन को प्रतिबिम्बित करता है। 'बसन्त' में लेख अधिक हैं, कवितायें व कहानियाँ कम। इसका प्रमुख कारण यह है कि इसके माध्यम से बुन्देली ज्ञान-संपदा का संकलन करना। इसमें आल्हा, महाकाव्य, छतरपुर रियासत के साथ बुन्देलखण्ड की पुरा-सम्पदा तथा ऐतिहासिक भूमिका पर केन्द्रित आलेख हैं। मुंशी अजमेरी, देवी प्रसाद 'प्रीतम', माधौ सिंह बुन्देला तथा ईसुरी पर जानकारी के साथ ओरछेश राजाराम पर नए ढंग से सोचा गया है। बुन्देलखण्ड के आस्तिक लोकमन के आराधक हनुमान मूर्तियों के साथ लोक साहित्य में ज्योतिष भी लेखों की विषय वस्तु हैं। 'ऐंसो-ऊँसो-समझत हैं..' तथा 'बुन्देलिन क्षत्राणी' जैसी कवितायें बुन्देली काव्य की आधुनिक परम्परा को रेखांकित करती हैं। बुन्देलखण्ड के परिवर्तित लोक जीवन पर प्रकाश डालने के साथ हमने यहाँ की वेशभूषा, आभूषण तथा वाद्ययंत्रों को भी लिया है। लोक साहित्य भी लोकगीत, लोकगाथा, ख्याल, स्वांग आदि विधाओं को लेखकों ने अपने-अपने नजरिए से देखा है। कहावतों, मुहावरों, पहेलियों के साथ-साथ बुन्देली की शब्दावली को हमने स्थान देने का प्रयास किया है। इस तरह बुन्देलखण्ड अचल के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा साहित्यिक पक्ष को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है। इसमें हम कहाँ तक सफल रहे हैं? यह तो आप सभी विज्ञ पाठक ही निर्णय करेंगे।

मैं सम्पादक मण्डल की ओर से 'बुन्देली-उत्सव' आयोजन समिति के संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह बुन्देला के साथ उनके सभी सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनके अथक् परिश्रम से यह सपना साकार हो रहा है। रचनाकारों, कलाकारों तथा विज्ञापनदाताओं के साथ मैं संघ मुद्रणालय के प्रबंधक- श्री बी.जी. पाण्डेय, कर्मचारी- जीतेन्द्र बस्वापट्टनकर, अरुण, सर्वेश आदि के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिनके सामूहिक प्रयास से 'बसन्त' आपके हाथों में है। मैं आपसे करबद्ध निवेदन करता हूँ कि आप इस बुन्देली उत्सव आयोजन से अपने-आपको जोड़ें और अपने महत्वपूर्ण सकारात्मक सुझाव अवश्य दें।

– बहादुर सिंह परमार

बुन्देलखण्ड का दरकता लोक जीवन

– डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी

किसी भी युग के साहित्य, भाषा, संगीत, कला, शिल्प और इतिहास की दशा और दिशा को समझनें के लिए समकालीन लोक जीवन की धारा को जानना–समझना आवश्यक होता है क्योंकि लोक जीवन की आशा, निराशा, आकांक्षाएँ और विवशताएँ ही इन सब में प्रतिबिम्बित होती हैं।

वर्तमान समय में वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास तथा बढते हुए भौतिकवादी सोच और उपभोक्तावादी जीवन जीने की ललक के कारण समाज में तीव्र परिवर्तन हो रहा है। नैतिक मान्यताएँ शिथिल हो रही हैं और सामाजिक मूल्य खण्डित हो रहे हैं। सोच की दिशाएँ बदल रही हैं। आज समाज की दशा एक कटी हुई पतंग की तरह हो रही है जो अपने आधार से छिन्न हो गयी है और कोई दूसरा ठोस आधार पकड़ नहीं पा रही है।

यह एक ऐसा त्रासद संक्रमण काल है जहाँ साहित्य, भाषा, शिल्प, इतिहास आदि सबकी मार्गी या शास्त्रीय परम्पराएँ भ्रष्ट हो रही हैं तथा लौकिक परम्पराएँ नष्ट हो रही हैं।

नगरीय संस्कृति सदा संक्रमित होती रहती है और कारोबारीपन के नीचे इतनी दबी रहती है कि हर जगह उसका औपचारिक स्वरूप ही अधिक रहता है। लोगों के हृदय में उसकी जड़ें काफी उथली रहती हैं। उसका जितना और जो कुछ भी संरक्षण होता है वह महिलाओं के द्वारा घर के अन्दर होता है, जो धार्मिक आचरण, तीज–त्यौहारों के मानने और किसी हद तक नैतिकता के रूप में बना रहता है। पुरुष वर्ग आधी–अधूरी आस्था के साथ उससे जुड़ा भर रहता है। आधुनिक स्त्री शिक्षा और महिला संगठनों के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण उसमें भी औपचारिकता और परम्परा निर्वाह का रूप अधिक उभरने लगा है। समाज की वर्तमान आर्थिक संरचना के कारण परिवारों का विघटित होता संगठन भी इसका एक कारण है।

लोक संस्कृति के यथार्थ रूप को जाचने–परखने के लिए ग्रामीण जीवन में झांकना आवश्यक है। यद्यपि बढ़ती हुई वैज्ञानिक प्रगति और मूल्यहीन अधकचरी शिक्षा से प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में ग्रामीण जीवन भी प्रभावित और प्रदूषित हो रहा है। इसी कारण लोक जीवन में दरारें आने लगी हैं और लोक संस्कृति का रूप बदलने लगा है। सोच का विषय समाजपरक न होकर व्यक्तिपरक हो गया है। पुराने मूल्यों और आस्थाओं से लोग कट रहे हैं और नये मूल्यों और आस्थाओं से पक्की तौर पर कहीं जुड़ नहीं पा रहे हैं।

सहयोग और समन्वय हमारे लोक जीवन के दो मजबूत सूत्र थे, जिनसे समाज जुड़ा रहता था और सामान्यतः एक सौमनस्यपूर्ण वातावरण बना रहता है।

किसी के यहां विवाह–शादी होती थी तो गाँव के सभी लोग अपने–अपने स्तर पर उसमें सहयोग करते थे। लड़की की शादी में सहयोग करना तो पुण्य कार्य माना जाता था, शादी लड़की की हो या लड़के की, पांव–पखरई, टीका, भेंट या अन्य किसी रूप में सहयोग दिया जाता था, जिसे व्यवहार करना कहा जाता था। इसके पीछे शादी जैसे खर्चीले काम में थोड़े–बहुत सहयोग की भावना रहती थी। आज भी व्यवहार दिया जाता है, किन्तु उसके पीछे की भावना नष्ट हो गयी है। अब उसे टैक्स या शादी में भोजन करने के बिल के रूप में लिया जाने लगा है। इसका प्रमाण यह है कि शादी में व्यवहारियों को भोजन न दिया जाये तो लोग व्यवहार देने भी नहीं जाते हैं।

शादी के निमंत्रण को भी लोग वारण्ट, नोटिस आदि नाम देने लगे हैं। यद्यपि यह बात सही है कि ये शब्द मजाक में कहे जाते हैं तो भी पारस्परिक व्यवहार के प्रति लोगों की बदलती हुई मानसिकता का परिचय भी इन शब्दों में मिलता है।

गांव में किसी की मृत्यु हो जाने पर शवयात्रा में सम्मिलित होने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने–अपने घर से एक दो लकड़ियां या कण्डे ले जाता था। पंचों द्वारा लाया गया यह ईंधन ही शवदाह के लिए पर्याप्त हो जाता था। इसके साथ ही पंचों द्वारा मृतक का सामाजिक सत्कार भी हो जाता था। इसी कारण पंचों द्वारा लाई जाने वाली लकड़ियों को पंच लकड़ी कहा जाता था। आज भी यह प्रथा रूढ़ि के रूप में चल रही है किन्तु पंचों द्वारा लायी गयी लकडी का अर्थ हो गया है पांच लकड़ियां। लोग वहीं श्मशान में इधर–उधर से पांच छोटी–छोटी तीन चार इंच लम्बी सीकें इकट्ठी कर चिता पर फेंक कर इति कर्त्तव्य हो जाते हैं।

अस्थि विसर्जन के लिए प्रयाग जाते समय और लौटने पर गंगाजली–पूजन के समय लोग भेंट देते थे। अब यह प्रथा निकट संबंधियों तक सिमट गयी है।

ये सभी घटते हुए सामाजिक सहयोग के नमूने हैं। किसी के खेत का बतर (जुताई के लिए मिट्टी में नमी की उचित मात्रा की स्थिति) जा रहा हो तो सहयोग की एक सामाजिक प्रथा थी – 'नवरा'। वह किसान दूसरे किसानों को 'नवरा' करने के लिए आमंत्रित करता था और यदि किसी को कोई व्यक्तिगत अड़चन न हो तो वे सब मिलकर एक ही दिन में उसका खेत जोत आते थे। उसकी कृतज्ञता ज्ञापन स्वरूप उन किसानों को रात्रि में भोज दिया जाता था। ये भोज उनकी मजदूरी नहीं बल्कि कृतज्ञता ज्ञापन ही होता था। धीरे-धीरे यह भोज मजदूरी माना जाने लगा है। दूसरी बात यह भी है कि कुछ किसानों ने अपनी प्रतिष्ठा या अहंकार के कारण नवरा में भाग लेना बन्द कर दिया है। सहयोग की यह प्रथा भी लगभग समाप्त हो चुकी है।

ग्रामों में किसी की म्यारी, करी या फर्सी चढ़ाना या ठाट बांधना हो, सब पारस्परिक सहयोग से हो जाता था। अब ऐसे अवसरों को लोग टालने का प्रयास करते हैं।

ग्रामों की जातीय संश्लिष्ट और पारस्परिक जुड़ाव की व्यवस्था की चर्चा कर लेना भी समीचीन है। विस्तार से इसकी चर्चा करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि काम-काज का यह जातीय आधार अब विश्रृंखल होकर इतिहास बनता जा रहा है। कालान्तर में समाज के इतिहास की यह कड़ी लुप्त भी हो सकती है। अतः इसको रिकार्ड करना भविष्य के लिए उपयोगी होगा।

एक बात और भी है, अति प्राचीनकाल से समाज में वर्ण व्यवस्था लागू थी। इसके अन्तर्गत शिक्षा और संस्कृति की रक्षा तथा सम्बर्द्धन का उत्तरदायित्व ब्राह्मणों पर, समाज तथा देश की रक्षा का भार क्षत्रियों पर, समाज के भरण पोषण की व्यवस्था करने का भार वैश्यों पर कार्मिक सेवाओं का भार शूद्रों पर था।

इनके लिए संस्कृत के कर्मिन से अपभ्रंश कम्मिन और आगे कमिन तथा सुखोच्चार के कारण 'कमीन' शब्द विकसित हुआ।

यह दुःखद संयोग है कि फारसी का शब्द 'कमीन' जिसका अर्थ है – छुपकर आघात करने वाला। गुणसाम्य के कारण इसका अर्थ विस्तृत होकर धोखेबाज और नीच भी हो गया और यह गाली के रूप में प्रचलित हो गया। ध्वन्यात्मक एकरूपता के कारण यह उस कमीन शब्द से एकाकार हो गया जिसका अर्थ 'काम करने वाले' था। इसका पुराना अर्थ तो भुला दिया गया और फारसी 'कमीन' का अर्थ हावी हो गया।

इस कारण निश्चित ही इनमें हीन भावना का उदय होगा। दूसरी तरफ उच्च वर्ग के लोगों ने भी इसी अर्थ को ग्रहण कर लिया। इस तरह दोनों वर्गों की सोच में दूरी भी बढ़ी, जबकि उनके पारस्परिक सम्मान की रूढ़ियां यथावत रहीं। जैसे उच्च वर्णों में जब नयी व्याही बहू आती थी तो उसे इन सभी जातियों की स्त्रियों, जो उसके घर को कमाये होती थीं (घर में काम करती थीं) के पैर पड़ कर आर्शीवाद लेना पड़ता था। चाहे भले ही दूर से पैर पड़े जायें। मेहतरानी और बसोरन के भी पैर पड़ना पड़ते थे। आपसी दूरी बढ़ने के कारण यह परम्परा टूट गयी है।

इन जातियों के लिए आदरवाची सम्बोधन भी थे। जैसे लुहार और बढ़ई के लिए – मिस्त्री, नाई के लिए खबास, ढीमर के लिए माते, बरउआ, कुम्हार के लिए परजापत (प्रजापति), माली के लिए बागवान, धोबी के लिए बरेठा, चमार के लिए छीरई, चौधरी, बसोर के लिए धानक, दर्जी के लिए तोशकसी। दूसरी जातियों के लिए भी आदरवाची सम्बोधन थे जैसे-अहीर को दऊआ, सौंरिया को बर्रखा (वन रक्षक) आदि।

इनके साथ उनकी उम्र के अनुसार कक्का, बब्बा आदि आत्मीय सम्बोधन भी जोड़े जाते थे।

ये आज भी प्रचलित हैं किन्तु वे औपचारिक ही अधिक रह गये हैं। उनसे आत्मीयता निकल गयी है।

ग्रामों में कमाने अर्थात् किसानों की विशिष्ट सेवाएँ करने वाले-लुहार, बढ़ई, नाई, ढीमर, कुम्हार, माली, धोबी, चमार, बसोर आदि जातियों के लोग विशेष अवसरों पर अपने किसानों का काम करते थे। जैसे-लुहार-हलों के फार, बखर की पाँसें, करे और दतुआ, सुरया, हँसिया, कुल्हाड़ी आदि कृषि औजार बनाते और उन पर धार करते, उन्हें ठीक करते। बैलगाड़ी के चाकों पर धाऊ चड़ाते थे। शादी के कंगन लाते थे।

बढ़ई-हल, बखर, बैलगाडी आदि बनाते और उनकी मरम्मत करते थे। शादी में पलाश की लकड़ी का खाम (स्कम्भ) बनाते थे। मण्डपाच्छादन के लिए मड़दाऊ लाते थे। मृत्यु पर अर्थी और अस्थि चयन के लिए चिमटा लाते थे।

नाई का काम सेवादार जातियों में सबसे अधिक रहता था। वर्ष भर बाल बनाते थे। शादी में दोना-पत्तलों की पूर्ति करते थे। निमंत्रण देते तथा टेरा-बुलाई का काम करते थे। कन्या की शादी में नाईन नेग-चार के अवसरों पर उसकी परिचर्या करती थी। शुभ अवसरों और त्योहारों पर सौभाग्यवती स्त्रियों के पैरों में हल्दी लगा कर तथा चिरैयां निकालकर महावर (आलता) तथा कुमारियों के पैरों में सादा ढंग से महावर लगाती थी। प्रसूता और नवजात शिशु को एक महीने तक (सोर के दिनों को छोड़कर) मालिश करती थी। नाई की अधिक सेवाओं के कारण ही उसे खबास (खास-बरदार) कहा जाता था। यह शब्द देश

में मुसलमानों के आगमन के बाद चलन में आया। इसके पूर्व पुराने जमाने में घर के लोगों के बिना ही नाई और पण्डित ही कन्या की सगाई पक्की कर आते थे। सगाई के रस्म के बाद वह जानने के लिए कि शादी कितने की होगी अर्थात दान–दहेज के रूप में कितना धन प्राप्त होगा? एक प्रथा थी – पंचों की उपस्थिति में ही वरपक्ष की ओर से कन्या पक्ष के नाई के सामने रूपयों से भरा एक थाल रखा जाता था और नाई को उसमें से रुपये उठाने के लिए कहा जाता था। उसमें से नाई जितने रुपये उठाता था। प्रति रुपया हजार की शादी होने का संकेत होता था। इस प्रथा को 'व्रत उठाना' (संकल्प प्रकट करना) कहा जाता था। उठाये हुए रुपये उसी के होते थे। चाहने पर वह अधिक भी उठा सकता था, परन्तु मालिक के प्रति उत्तरदायित्वबोध के कारण कम से कम उठाता था। मजबूरी में उसे अधिक भी उठाना पड़ते थे तो भी मालिक उन्हें स्वीकार करता था। व्रत उठाने जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने के कारण उसके लिए 'विरतिया' जैसा सम्मानपूर्ण सम्बोधन प्रचलित था।

ढीमर का मुख्य काम पानी भरना, बर्तन साफ करना तथा शादी–विवाह में पालकी और डोला उठाना था। कुम्हार बच्चों के जन्म के समय चरुआ, बोनी के समय बिजा (खेतों पर बील जे जाने के लिए मिट्टी की गागर) अगती (अक्षय तृतीया) पजूने पूने (हनुमान जयन्ती), गोवर्द्धन पूजा के लिए 'कुड़वारौ, (चार घैला–मझौली गागर) दीवाली के लिए मिट्टी की दीया, गणगौर, महालक्ष्मी, गणेश नौरता के लिए गौर (गौरी) तथा पन्धोला (शिवलिंग) की मूर्तियां, नौरता में पूजन के लिए नौ मलियाँ (बड़े आकार के दीये), बच्चों के खेलने के लिए मिट्टी के गड़िया–घुल्ला, चूलो–चकिया खिलौने, शादी में आवश्यक बर्तन चरुआ, पिटरे, डहरियां, मण्डप, के नीचे रखी जाने वाली बेरी (सात छबला), दरबाजे के कौरों में रखे जाने वाले कलश या मंगल घट, मृत्यु के समय आड़ को घैला, अस्थि–चयन के लिए डबला और चिता–भूमि पर रखने को घट लाता था। बच्चा होने पर जच्चाघर में बांधने के लिए झूमर भी कुम्हार लाता था। कुम्हार की सेवाएँ भी बहुत होती थी।

माली वर्ष भर त्यौहारों पर फूल–दूब की पुरिया रखता था। हरछट (हरषष्ठि) की विशेष तरह की पुरिया तथा तीजा (हरतालिका व्रत) को फुलारा (कुमुद के फूलों से बना झूमर) और शादी में दूल्हा–दुल्हिन के लिए खजूर के पत्तों के बने मौर (एक प्रकार का मुकुट) तथा फूल मालाएं लाता था।

धोबी सोर–सूतक के तथा दीवाली पर घर के सब कपड़े धोता था।

चमार दशहरा–दीवाली की छपाई–लिपाई में सहयोग करता था तथा किसानों के मरे हुए पशुओं को ठिकाने लगाता था। उनके चमड़े को पकाता था। आधे चमड़े पर पशु के मालिक का हक होता था और आधे पर चमार का। यदि वह उसके जूते बना कर देता था तो उसे तेल और बनवाई अलग से मिलती थी। विवाह में चमार दूल्हा–दुल्हिन के लिए कनौंरा और कनौंरियाँ (लाल तूस मढ़े हुए स्लीपरनुमा जूते) लाता था।

बसोर–महिला बच्चों के जन्म के समय प्रजनन कराती, सोर उठने तक जच्चा–बच्चा को मालिस करती, बसोर सोर उठने के समय, देवी–देवताओं के आयोजन–मय पूजन के समय से लेकर आयुवृद्ध सम्भ्रान्त व्यक्ति की शवयात्रा तक बाजे बजाते थे। शादी के अवसर पर बड़ी मात्रा में भात पसाने के लिए परेना, आवश्यक छबला, टोकरी आदि बांस के बर्तनों के अतिरिक्त लड़के की शादी में मण्डप मारने के लिए बिजना (पंखा) और लड़की की शादी में लड़की के साथ जाने वाले पकवान को रखने के लिए बड़ा टिपरा, खलिहान में अनाज नापने के लिए डुलिया देते थे।

दर्जी लड़के की शादी में दूल्हे के लिए बागी (एक प्रकार का सुनहले गोटें लगाकर सिला गया अंगरखा, जो पैरके पंजों तक नीचा होता था। सिलता था। दुल्हिन का लंहगा–पोलका सींता था,)

नाई माली और दर्जी शुभ अवसरों पर दरबाजे पर बन्दनवार बांधते थे।

कुम्हार और दर्जी, बच्चे के जन्म के दस दिन बाद होने वाले उत्सव 'दस्टोन' में प्रसूतिगृह में बांधने के लिए कलात्मक झूमर लाते थे।

ग्रामों में मेहतर की सेवा की कम आवश्यकता होती थी। इस कारण बहुत से ऐसे गांव हैं जहां मेहतर हैं ही नहीं।

इन सभी सेवाओं के लिए इन्हें सेवा उपलब्ध कराते समय ही नेग–दस्तूर के रूप में नकद तथा आखौती के रूप से अनाज, विशेषकर चावल तुरन्त दिया जाता था। जन्म–मरण, शादी–विवाह के सभी अवसरों पर संबंधित लोगों को सपरिवार भोजन कराया जाता था। साल भर तीज–त्यौहारों के अवसर पर पावन (सम्बन्धित पूजा का प्रसाद पकवान, पूड़ियां आदि) दिया जाता था। नाई जिस दिन किसान के यहाँ बाल बनाने जाता था शाम को उसी दिन कलेवा के नाम से पका हुआ भोजन या अनाज दिया जाता था।

इन सबके साथ ही रबी और खरीफ की फसलें आने पर किसान इन सबको पूर (अनाज के पौधों का गटवा) या एक पैला (लगभग दस किलो) अनाज देता था।

इस तरह समाज में उत्पादन और सेवाओं के दान-प्रतिदान की संश्लिष्ट व्यवस्था थी।

नगरों के कृषि व्यवसाय की कमी के कारण सेवाओं के बदले नकद पैसा कुछ अधिक मिल जाता था।

नेग-दस्तूर के रूप में मिलने वाली राशि के तेजी से होते हुए अवमूल्यन और दातव्य राशि में धीरे-धीरे होने वाली वृद्धि ने एक ओर इन जातियों में असन्तोष पैदा किया। दूसरी ओर इनमें अर्थप्रधान दृष्टिकोण के अधिक विकसित हो जाने के कारण सभी कामकाजी जातियां अपनी हरेक सेवा का नकद भुगतान भी चाहने लगी हैं और परम्परा से जो मिल रहा है यदि उसे भी नहीं छोड़ना चाहती हैं तो यह स्वाभाविक है कि सेवाएं देने वाला यदि अपनी संवाओं का नगद मूल्यंकन कर पैसा वसूलना चाहेगा तो देने वाला किसान भी पारम्परिक बन्धान क्यों देगा?

इस तरह दोनों तरफ असन्तोष की जड़ जम गयी। दूसरी तरफ औद्योगिक क्रान्ति और आधुनिकतावादी दृष्टिकोण पैदा हो जाने के कारण स्थानीय सेवाओं का महत्व भी घटता जा रहा है फिर भी काफी अंशों में अभी भी जारी है। इनकी उपयोगिता घटने के कारण इनकी अर्थव्यवस्था भी प्रभावित हुई है और असन्तोष भी बढ़ा है।

इस तरह सामाजिक सौमनस्य और सहयोग के वातावरण में दरारें पड़ने लगी हैं। जातिवादी, तथाकथित राजनीति करने वाले लोग इन्हें निरंतर चौड़ा कर रहे हैं और उनमें उस घास के बीज भी बो रहे हैं जिससे यादवी संघर्ष हुआ था।

अपने पेशों की गन्दगी ओर उसी के अनुरूप अपने रहन-सहन को ढाल लेने के कारण कुछ जातियाँ, निश्चित ही समाज में पिछड़ने के साथ ही अस्पृश्य हो गयी थीं। ऐसी जातियों को, देश की नब्ज को ठीक-ठीक समझने वाले, महात्मा गांधी ने हरिजन जैसा पवित्र नाम दिया था और उनके उत्थान के लिए विभिन्न कार्यक्रम बना कर उस पर तेजी से अमल भी किया था। इनके कारण उनकी दशा में परिवर्तन होने लगा था तथा समाज के सोच में भी एक सकारात्मक बदलाव आना शुरु हो गया था।

परन्तु उन्हीं में से कुछ लोगों ने अपने व्यक्तिगत अहंकार की तृप्ति और राजनैतिक स्वार्थों की सिद्धि हेतु गांधी को गालियाँ देकर हरिजनों को उनके कार्यक्रमों से न केवल विमुख किया बल्कि हरिजन उत्थान के लिए कोई विकल्प भी प्रस्तुत नहीं किया। केवल आरक्षण की भीख मांगने के स्वर को तेज कर दिया। गांधी जी द्वारा दिये गये 'हरिजन' नाम को न केवल मैटा गया बल्कि कुर्सीजीवियों की मदद से उनके प्रयोग को गैर कानूनी तक घोषित करवा कर उनको दलित शब्द दिया। दलित अर्थात् कुचले हुए। जब कुचले हुए हैं तो कोई कुचलने वाले भी तो होंगे, वे कौन हैं? प्रश्न के इस अहसास को निरन्तर हवा देकर उनमें घृणा और प्रतिहिंसा की आग भड़काई जा रही है जो सामाजिक सौहार्द को नष्ट कर रही है। उनमें प्रतिहिंसा की भावना से शायद उन्हीं का अधिक नुकसान हो रहा है। वे उन्हीं बुराइयों की तरफ लौटने लगे हैं जिनसे, गांधी के प्रभाव से, वे दूर होने लगे थे।

इससे थोड़ी भिन्न स्थिति आदिवासियों की है। आदिवासियों के उत्थान के सम्बन्ध में कोई निश्चित नीति नहीं बनी। इस कारण सरकार का अरबों रुपया खर्च हो जाने पर भी उनकी स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। पहले उन्हें सेठ-साहूकार लूटते थे अब उन्हें सरकारी अंमला लूटता है, जो उनके नाम पर मिलने वाले सरकारी धन को हड़पता है।

इसकी परिणिति यह हुई कि नक्सलवादी और पब्लिक वार ग्रुप जैसे दलों का प्रादुर्भाव हुआ जो उन्हें हत्या और लूट के मार्ग पर धकेल रहे हैं। इनके प्रभाव से बिहार, आन्ध्र और मध्यप्रदेश का कुछ क्षेत्र काफी अशान्त हो गया है।

तीसरा वह वर्ग है जो अपनी आर्थिक व्यवस्था से संतुष्ट रहने के कारण पढ़ाई-लिखाई से दूर रहा और सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ गया। उसमें ब्राह्मण-क्षत्री भी हैं और दूध में पानी, सोने में पीतल, शराब में पानी मिलाकर तथा लम्बी-चौड़ी जोतों पर खेती कर धन इकट्ठा करने वाली जातियां भी हैं। राजनैतिक स्वार्थों को दृष्टि में रखकर जातिवादी कूटनीतिज्ञों ने जो नीति उनके उत्थान के लिए बनाई उसका आधार आर्थिक न रखकर जातियां रखा जिसके कारण सामाजिक विद्वेष को बढ़ावा मिला। स्वाभाविक है कि गरीब होने पर भी यदि किसी जाति विशेष में जन्म लेने के कारण किसी को अपनी प्रतिभा का विकास करने का अवसर न मिले और किसी जाति विशेष में जन्म लेने के कारण धनी होने पर भी बजीफा मिले और अयोग्य होने पर भी उत्तरोत्तर उन्नति का मौका मिलता जाये तो न केवल वंचित व्यक्ति में बल्कि उसके वर्ग में आक्रोश, व्यवस्था के प्रति धृणा और विद्रोही भावना तो पैदा होगी ही।

चौथा वर्ग अल्पसंख्यकों का है। आज की स्थिति में अल्पसंख्यक का मतलब मुख्यतः मुसलमानों से उसी तरह है जैसे दलितों का चमारों से और पिछड़ों का यादवों से।

देश के विभाजन के बाद जो मुसलमान देश छोड़कर नहीं गये थे वे स्थानीय समाज से और भी अच्छी तरह समायोजन कर रहे थे। कारण यह भी हो सकता है कि वे विभाजन की त्रासदी भी देख चुके थे। उनमें बहुसंख्यकों के

साथ मिल–जुल कर रहने का संस्कार पहले से ही था। उसकी उपयोगिता को उन्होंने नए सिरे से पहचान लिया था, किन्तु राजनीति के कुचक्र ने उनके समाज को 'वोट बैंक' में बदल दिया। उस समय के एक सबसे बड़े और प्रभावशाली राजनैतिक दल ने छटवें दशक में (सन् याद नहीं है) दिल्ली में एक मुस्लिम कन्वेशन बुलाया, जिसमें पं. जवाहल लाल नेहरू, सुभद्रा जोशी तथा अन्य कई बड़े–बड़े नेताओं ने ऐसे–ऐसे भाषण दिये जिनसे उनमें अपने अल्पसंख्यक असुरक्षित होने का अहसास जगाया गया और यह विश्वास जमाया गया कि उस दल के अतिरिक्त उनका और कोई भी संरक्षक नहीं है। उसके बाद के दिनों में दूसरे दलों ने भी इस सूत्र की उपयोगिता समझ कर मुसलमानों को अपने वोट–नीति का खिलौना बनाये रखने का प्रयास जारी रखा और उनमें पृथकता, असुरक्षा और आशंका का भाव कमजोर नहीं पड़ने दिया, इसके लिए चाहे उन्हें महमूद गजनबी को ही उनका उद्धारक क्यों न बताना पड़ा हो। इस भ्रम से वे, आधी शताब्दी बीत जाने पर भी, पूर्णतः नहीं उबर सके हैं।

प्राचीन काल से चली आ रही ग्रामीण जीवन में प्रभावी अनुशासन, पारस्परिक सद्भाव, सहयोग और नैतिक आचरण की रक्षा करने वाली संस्था सार्वजनिक पंचायत तथा जातीय पंचायतों की व्यवस्था नष्ट हो गयी। सार्वजनिक पंचायतों का रूप संगठित नहीं होता था,फिर भी अत्यन्त प्रभावशाली होता था। जातीय पंचायतों के माते–मुखिया चुने हुए और खानदानी भी होते थे। खानदानी व्यक्ति भी जाति की स्वीकृति के बिना पद पर नहीं रह सकता था, किन्तु सरकारी पंचायत व्यवस्था ने समाज को बुरी तरह तोड़ दिया है। राजनैतिक वैर, उसी में गुटीय बैर, जातीय वैर, व्यक्तिगत वैर और भ्रष्टाचार को इस व्यवस्था में इस कदर बढ़ावा मिला है कि भ्रष्टाचार पंचायतों का और वैर–विरोध ग्रामीण जीवन का पर्याय लगने लगा है।

इस तरह देश सेवा का दम भरने वाले तथाकथित राजनेताओं ने देश की एकता, अखण्डता, दलित, आदिवासी, पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यक शब्दों का जाप करते हुए समाज के सौमनस्य को नष्ट कर उसमें न केवल बैर भावना और कुण्ठा भर दी बल्कि, घुसपैठियों, अपराधियों और माफियाओं को संरक्षण दे आशंका और आतंक से भयमीत कर दिया है। देश के शीर्षस्थ पदों पर बैठे लोगों ने हवाले–घुटाले करके तथा प्रदेशों के उच्च पदों पर बैठे लोगों ने जनता की कमाई और विदेशी ऋणों से भरे खजानों को बेरहमी से लूटकर भ्रष्टाचार का ऐसा माहौल बना दिया कि आम आदमी की आस्था टूट गयी है। थोड़ी बहुत बची भी है तो उच्च स्तर की अदालतों में जहां उसकी पहुँच नहीं है।

आज न केवल बुन्देलखण्ड बल्कि पूरा देश आपसी वैमनस्य, कुण्ठा, असुरक्षा और डांवाडोल आस्था की मानसिकता में जीवन काट रहा है। यह देश के सामाजिक स्वास्थ्य के लिए भयावह स्थिति है और देश के अधोगामी भविष्य का भी संकेत है। गनीमत है कि इस देश का आदमी भाग्यवादी है अन्यथा.......।

– पुरानी नजाई, टीकमगढ (म.प्र.) □

बुन्देलखण्ड महिमा

– डॉ. प्रेमलता 'नीलम'

बॉकी धरती जा,
वीरन की हिरन की खान,
बॉकी धरती जा.......।
ओरछा बिराजे आकें राजा राम,
छोड़ आये कैंसें अजोध्या से धाम
चित्रकूट आई, गंगा निरमल धार,
हरे–भरे मये पहार,
बहे बेतवा सुनार,
जटाशंकर दरबार।
बॉकी धरती जा..............
छत्रपुर संवारे महाराज छत्रसाल,
करे जिननें ऊँचे बुंदेलन के भाल
कहाँ और भये देवर जैंसे हरदौल
करो दुनियाँ सें तौल,
प्रान तज राखे कौल,
ऐंसो हीरा अनमोल,
बॉकी धरती जा..................
केशव से कवि रचे जिनने कवित्त
प्रवीन राय के सामू अकवर भओ चित्त,
वीरों की धरती वीरमाता दुलार,
मुआनी की तलवार।
करे दुश्मन पे वार,
लड़े जीते हर बार
बॉकी धरती जा......................
झांसी की रानी बुंदेलन की शान,
धरती की आन राखी दे डारे प्रान,
रानी ती दुर्गा रणचण्डी अवतार,
भूली पायल झंकार,
करे गिन–गिन के वार,
जस माने संसार,
बॉकी धरती जा..................
पन्ना में बिराजे हैं जुगल किशोर,
बलदाऊ प्राणनाथ छइचित्त लेत चोर,
पन्ना नगरी है, हीरन की खान,
जाने सकल जहान,
बड़े–बड़े भये सुजान,
जिनकी जग में रई शान,
बॉकी धरती जा.....................

–एच–27, लॉ कॉलेज के पास, दमोह (म.प्र.) □

मंगल अभिप्राय : मोती बेराणा चंदन चौक में

– डॉ. श्यामसुन्दर दुबे

लोकजीवन में उत्सवधर्मिता प्रकृति और मनुष्य की साझेदारी का जीवंत अनुष्ठान है। अनेक त्यौहार और उत्सव प्रकृति–परिवर्तन के साथ मनाये जाते हैं। कृषि–सभ्यता के विकास के क्रम में फसलों की बुवाई–कटाई गाहनी आदि के साथ भी उत्सवों की परंपरा विकसित हुई। अधिदैविक और अधिभौतिक शक्तियों के नियंत्रण हेतु भी उत्सवपरक पूजन–चर्या के आयोजनों की प्रतिष्ठा की गई। सामाजिक विन्यास में संस्कार सोपानों के समादृत होने पर जो संस्कार पद्धति विनिर्मित हुई उसने भी उत्सवी आयोजनों का सूत्रपात किया। इन सभी कार्यक्रमों में गीत–नृत्य और गृह–सज्जा के साथ–साथ विभिन्न तरह के पूजन–विश्वासों का भी समावेश हुआ। लोक ने अपने सामाजिक ढांचे के भीतर अपनी एक भिन्न कर्मकाण्ड शैली विकसित की। इस शैली में वैदिक पद्धति के साथ–साथ देशज अनुष्ठानिक क्रिया–कलापों का सम्मिश्रण हुआ। देशज आयोजनों में पुरोहितों की दखलंदाजी ने संभवतः अभिजात्यीय कर्मकांड आरोपित किया। इस सम्मिश्रण ने देशज कर्मकांड को भी प्रसरित किया और वे भी स्थानीयता से मुक्त होकर सर्ववर्ग की स्वीकृति प्राप्त कर सके। लोक की अतृप्तियों का प्रकाशन, लोक का अभिजात्यीय अनुकरण, लोक की सामूहिक इच्छाओं का सौन्दर्यात्मक प्रतिफलन और लोक के अपने विश्वासों का मिरपेक्ष सम्मूर्तन आदि तत्व लोक को अभिजात्यीय उत्सव शैली की ओर उन्मुख करते रहे हैं।

लोक का जीवन अनेक अभावों के बीच क्रियाशील रहता है। इन अभावों का अनुभव वैषम्य में ही होता है। समाज में आर्थिक शक्तियों के केन्द्रीयकरण से जैसे ही एक अभिजन वर्ग निर्मित हुआ वैसे ही लोक ने अपने अभावों को अनुभव करना प्रारंभ कर दिया और वह इन अभावों की काल्पनिक प्रतिपूर्ति हेतु अपना एक स्वप्न–संसार रचने लगा। उच्च वर्ग के रहन–सहन और उनके उत्सव आचारों का यादृच्छिक समावेश अपने उत्सवों–आचारों में लोक ने प्रतीक भावना से ग्रहण किया। लोक ने अपनी सृजनेच्छाओं की प्रतिपूर्ति हेतु कुछ सौन्दर्यात्मक अभिकल्पों को अपने अनुष्ठानों में समावेशित किया तथा अपने विश्वासों का अपनी कद–काठी के अनुरूप सम्मूर्तित किया। यह लोक की कला–दृष्टि से अनुस्यूत आयोजन था। इन सभी संदर्भों को हम लोक की विभिन्न उत्सवधर्मी कलापरक अभिरुचियों में सन्निहित विभिन्न अभिप्रायों के रूप में प्राप्त कर सकते हैं।

इन अभिप्रायों का प्रकाशन लोकगीतों में सर्वाधिक हुआ है। किसी भी मांगलिक अवसर पर गीत–गायन अनिवार्य है। इन गीतों में सामान्यतः यथार्थ को अतिक्रमित करके एक स्वप्निल आख्यान प्रस्तुत किया जाता है। इस स्वप्निल आख्यान में उत्सव की तैयारी और उसके आयोजन का विधान ऐश्वर्य संपन्न परिवेश में होता है। ऐश्वर्य, एक अभिप्राय की तरह प्रायः सभी क्षेत्रों के लोकगीतों में सन्निहित है। लोक–कामनाओं का संपन्न संसार उसके दारिद्रयपूर्ण जीवन के संघर्षों में एक राहत बनकर उपस्थित रहता है। उत्सव प्रारंभ होता है और आंगन में सुरहिन गऊ का गोबर लीपा जाता है। गजमुतियन के चौक पूरे जाते हैं। कंचन कलश में गंगाजल भरा जाता है। छत्तीसगढ़ी लोकगीतों में पुत्र जन्मोत्सव और विवाह के मांगलिक पर्व पर यह परिवेश इस प्रकार प्रकट होता है – यह लोक के मन का हुलास है –

"ललना लईका का पाईव में आज
मोर मन हुलासे हो;
सुरहिन गैया के गोवर मंगावेय
खूंटि धरि अंगना लिपाऐव हो;
ललना गजमुतियन के चौक पुरायेव
सोनकर कलस मंडाऐब हो।"

बेटी के विवाह में भी यही परिवेश परिलक्षित होता है –

"सुरहिन गईया के गोबर मंगाइले
खूट धरि अंगन लिपइले
....
ओगरी धान के पिसान पिसइले;"

देवताओं के पूजन–विधान में भी इसी तरह की व्यवस्था की जाती है। मालवी लोकगीतों में सोने का दीपक जलाया जाता है –

"काय को दिवलो मैया काय की बाती
काय की लागी जगा जोत
सुन्ना को दिवलो मैया रूपा की बाती
कपूर की लागी जगाजोत;"

स्वर्ण–दीपक में चांदी की वर्तिका प्रज्जवलित है और कपूर की ज्योति जगमगा रही है। चंदन का चौक बना कर उसमें मोतियों से भराव किया जा रहा है। चौक में मोती फैल गये हैं। इन्हें कैसे समेटा जाये मालवी नायिका अपने प्रियतम से पूंछती है –

"मोती वेराणा चंदन चौक में हो राज
केसे सोरूं ने कसे सकयूं राज।"

लोक इस बात को भी अनुभव करता है कि यह पवित्र और ऐश्वर्यमय कल्पनासंसार मनोकामनाजन्य है। कविता इस तरह के संसार की सृष्टि करने में समर्थ है, इसलिये कविता से यह काम लिया जा रहा है। किन्तु यथार्थ तो बिल्कुल भिन्न है। लोक ने स्वप्निल संसार के मध्य यथार्थ को भी कविता में प्रस्तुत किया है। अपने अनुकूल विकल्पों को प्रस्तुत किया है। एक बुन्देली लोक गीत में इसी तरह की वैकल्पिक व्यवस्था का उल्लेख है। स्वप्न–अभिप्राय और यथार्थ का यह द्वन्द्व जो चयन देता है उसमें अपनी लोक अपनी संतोषवृत्ति से ही परिचालित है –

"सुरहिन गऊ को गोबर नें पूजे
श्यामा को गोबर मंगाओ
मुतियन चौक ने पूजे मोरे बाबुल
चुन को चौक पुराओ मोरे बाबुल
चंदन पटरी ने पूजे मोरे बाबुल
छेऊले की पटरी मंगाओ मोरे बाबुल
कंचन कलश ने पूजें मोरे बाबुल
माटी के कलशा धराओ मोरे बाबुल;"

यह यथार्थगत हस्तक्षेपमय विकल्प बेटी द्वारा सुझाया जा रहा है। बेटी घर की स्थिति से परिचित है। वह अपने पिता की परिस्थितियों और उनके मनोभावों को जानती है। माता और पिता की ऊँची आकांक्षाओं का उसे अनुमान है किन्तु वह नहीं चाहती कि पिता किसी तरह के कष्ट में पड़े इसलिये वह पिता को अपने ही संसाधनों का उपयोग करने के लिये कहती है। बेटी का यह यथार्थ–दर्शन लोक की अपनी अकिंचनता का बोध कराता हुआ भी लोक के स्वाभिमान की रक्षा करता हैं। लोक स्वाभिमान से आवेष्टित अभिप्राय को केवल बेटी ही अभिव्यक्त कर सकती है – उसका हस्तक्षेप यहां माता–पिता को भी स्वीकार्य हो सकता है।

लोक जीवन में संस्कारों का महत्व है। इन संस्कारों में ऐश्वर्यमयी कल्पनाओं का तामझाममय चित्रण है। जन्म के समय गाये जाने वाले सोहरों में सोने के छुरा से नाल–छेदन किया जाता है – *"सुन्ने के छुरा नाल छीनौ मोरी मौसी।"* चांदी के अक्षत डाले जाते हैं। रूपे के आखतडारे जे आंगन में।" मणियों के दीपक प्रज्जवलित किये जाते हैं – *"मानिक दीप उजारे जे वंदन वारे"*। रेशम और मखमल के कपड़े लाने के लिये ननदी से कहा जाता है –

"रेशम को कपड़ा ले आईयो री ननदी
मखमल को मोरें रिवाज
थारी भर मोहर पावो ओ मांगो
मांगो वो ननदिया
मनचाहे जो ननदिया तुहार।"

ननद को थाली भर सोने की मोहरें दी जा रही हैं। मालवी लोक गीत में जो बधावा आया है उसमें लाखों के हाथी–घोड़े आये हैं –

"दूरो बधानों बागां में आवियो
नारेलारी लागी लटालूट
दाख चारोल्यां म्हाराणा बहुफले
तीसरो बधावों ड्योढ़ी पे आवियो
हस्ती झूले दे दरबार खड़ा मारू जी
बांदिया लखेना ते ज़न जौ चरे।"

मांगलिक अवसरों पर न्यौछावर देने की परंपरा है। यह परंपरा प्रसन्नता को बांटने के अभिप्राय से प्रतिष्ठित हुई होगी। पुत्र की मां सबको कुछ न कुछ बांट रही है, और बच्चे के लिये आशीर्वाद मांग रही है। नाईन को मैंने चुनरी दी, वारिन को पियरी और तेलनिया को साड़ी दी। पंडित को हाथी, भाट को घोड़ा और देवर को अंगूठी दी। यह भाव एक अवधी लोकगीत में चित्रित हुआ है –

"नाऊन का मैं चुनरी दीन्हीं
वारिन का पिअरिया
तेलिन का मैं सारी दीन्हों दीन्हों मैं लाल
पंडित का मैं हाथी दीन्हों
भाट का मैं घोड़ा
देवर का मैं मुदरी दीन्हों दीन्हौं मै लाल!"

प्रत्येक बच्चा चाहे वह किसी वर्ग और वर्ण का हो लोक में कृष्ण है, और प्रत्येक जच्चा मां यशोदा है। यह जो लोक की दृष्टि है, यह जो देवत्वमय अभिप्राय है। नर में जो नारायण को देखने की दृष्टि हैं यह बहुत मूल्यवान है। इसे न तो किसी अतृप्ति से जोड़ा जा सकता है, न किसी प्रदर्शन से, न ही किसी अभिजात्यीय अनुकरण से : यह वह लोक–भाव है, जिसमें सामाजिक विन्यास के भीतर कहीं कोई दरार नहीं है; कहीं कोई वैषम्य नहीं है। मानव के भीतर दिये ईश्वरत्व की यह तलाश लोक में निरंतर चलती है और मंगल विधानों में तो यह दृष्टि और मुखरा हो जाती है। लोक की दृष्टि में दूलह पांच दिन का राजा होता है। दूलह के पिता बड़े भाई अन्य वरिष्ठ रिश्तेदार भी दूलह को राजा जैसा ही मानते हैं। वह एक सामान्य बालक नहीं रहता है। सामान्य में यह असामान्य की खोज लोक की श्रेयस और प्रेयस पूर्ण इच्छाओं का ही निदर्शन है। अवधी लोकगीतों में तो वर को संबोधन श्रीवर शब्द के रूप में ही दिया गया है। विवाह संबंधी लोकगीतों में प्रत्येक दूलह और दुलहिन राम और सीता की तरह प्रतिष्ठित होते हैं। लोक का यह पवित्र भाव और लोक की यह लोकोत्तर

दृष्टि लोक को महत्तम बनाती है। यहां व्यक्ति कभी–कभी बौद्धिक धारणाओं से मुक्त होकर संपूर्णतः उदात्तता के अभिप्रायों से आविष्कृत से उठता है।

बन्ना का श्रृंगार किसी राजा से कम नहीं होता। बन्ना की सजावट में इतना समय लगता है कि बारात प्रस्थान का मुहूर्त्त टलने लगता है। *'सजत बेरा हो गई महाराज।'* बन्ना को सजाने में एक–एक चीज का ध्यान रखा जाता है। माथे पर सेहरा, कानों में कुण्डल और मुरकियां, गले में कंठा और गोप, हाथों में कंगन और घड़ी, शरीर पर बागा और फेंटा, पांवों में जूता और मौजा –

''कानों में कुंडल पेनों राजा बनरे
मुरकन बीच गुच्छा कुसुम कली के
गरे में कंठा पेनो राजा बन
गोपन बीच गुच्छा कुसुम कली के।''

बारात में भी ऐश्वर्य छलक रहा है। वर का प्रस्थान हो रहा है। बारात चल पड़ी है। दल के दल हाथी–घोड़ा हैं। हाथी पर दारू और गोली लाद ली गई है। ऊँट भी साथ चल रहे हैं। बाराती प्रसन्नता से लाल–पीले दिख रहे हैं। उनके कपड़े बहुरंगी हैं। ये कपड़े खास बारात के लिये ही बनवाये गये हैं। वर झीनी पिछौरी का अलगा डाले हुऐ हैं। छत्तीसगढ़ी लोकगीत में यह भाव प्रकट होता है –

''लहसत रेंगत डांडी अऊ डोलवा
नाचत रेंगथे बरात
पैदल रेंगथे मोर हाथी अऊ घोड़ला
कै कै दल रैंगथे बरात
हाथी मां लादथे दारू अउ गोली
कै ऊँटवा में बान चचान
कै हुई घोड़वा सहस हुई मोहथिया
पैगा के हावे अनलेख।''

बारात की यह भव्यता अपने देशज यथार्थ के साथ और अधिक मोहित हो उठती है। लोक का यह अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन एक समृद्ध और संपन्नतम स्वप्न को अनुभव करना है। मालवी लोक गीत में पूरा परिवेश ही जगमगाता रहता है। वर की शोभा से सभी जगह जगमगाहट जागृत हो गई है।

''जगमग राज रा मोजी
जगमग राज री मेंहदी
जगमग राज री पैरण री चतराई हो।''

विवाह में बेटी की विदा के साथ पिता जो दायज देता है वह भी अनगिनत है। दशरथ जैसे समधी के सामने गांव की बेटी का पिता जनक जैसा बन जाता है। गांव की लड़की सीता बन जाती है। एक ओर लोक अभिजात्योन्मुखी है, तो दूसरी ओर वह अभिजात्य को अपनी छवि भी देना चाहता है। स्वप्न और यथार्थ का यह द्वंद लोक जीवन के धूप छांही रूप को प्रस्तुत करता है –

''राजा जनक जू दोई हाय जोरें
नैनन बैये नीर
राजा दशरथ सें विनती करत हैं
सुनियो संजन मोरी बात जू
हीरा–पन्ना कछु नई दीने
न कछू करे सत्कार जू
भूल–चूक जो किछू हम सें भई है
सो करियो सब माफ जू
गोबर खों गुबरारी दीनी
पानी खों पनहारिन जू
रोटी खों रूटयारी दीनी
महलन खों इक दासी जू।''

बुन्देली के इस लोक गीत में पिता जनक महाराज दशरथ को बहू रूप में राजकन्या सीता को समर्पित करते हुये सीता को गांव की सामान्य कन्या के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यहां विशिष्ट अपनी विशिष्टता त्याग कर सामान्य बन रहा है। स्वयं जनक भी यहां विशिष्ट नहीं रहते। वे सामान्य लड़की` सामान्य पिता बन जाते हैं। लोक का यह भाव स्पष्ट करता है कि राजा भी लोक भावना के अनुरूप आचरण करके बड़े बनते हैं।

वर–वधू के लिये जो कोहबर सजाया जाता है, वह राजा–महाराजाओं की शान–शौकत से कम नहीं है। मालवी लोकगीत में इस भवन के निर्माण की लोक ने अनूठी कल्पना की है। केशर का गारा बनाया जाता है। इस गारे में कस्तूरी को मिलाया जाता है। नारियलों से नीव भराई जाती है। सुपारी से नींव के ऊपर का दासा निर्मित होता है। बरफी की ईंटों से दीवारें उठाई जाती हैं। लवंगों की जालियां और सिंघाड़ों के कंगूरे बनाये जाते हैं। चंदन की लकड़ी से पलंग, रेशम से रस्सियां, मखमल से चादर, मशरूम सिल्क से तकिये बनाये जाते हैं। लोक का यह कलात्मक और ऐश्वर्यमय भवन लोक की सौन्दर्यात्मक अभिरुचियों का प्रमाण है–

''केशर रो कीच मचाबो
कस्तूरी रो मलन मिलाबो
राम महल बिच धन खड़ी जी म्हारा राज
नरेला री नींव नखाव
सुपारी री पूरणी नखाव
बरफी री भीतं कराव
जलेवी री वारी कराव
लोंगा री जाली लगाव
सिंगोड़ा री कंगूर लगाव।''

इस तरह के अधिकांश लोकगीतों की रचना मध्यकाल में हुई है। मध्यकाल राजसी वैभव की चमक–दमक का प्रतीक काल है। इस युग में विशेषतः उत्तर मध्यकाल में सामंती जीवन मूल्यों को महत्व प्राप्त हुआ है। लोक ने इन मूल्यों को स्वीकृति भी प्रदान की और अपने यथार्थ को भी नहीं भुलाया।

लोक में स्त्रियों की हिस्सेदारी कर्म–क्षेत्र में कम नहीं रही है, यद्यपि वे दयनीय जीवन जीने के लिये अभिशप्त रहीं है। भारतीय नारी की यह अलग तस्वीर है। इस तस्वीर को अलक्षित ही रखा गया है। लोक में नारी का अधिकार उसकी उपार्जन क्षमता के कारण अधिक रहा है। वह मजदूरी करती थी। वह खेलों में कृषि–कार्य करती थी। वह गृहणी और सहधर्मिणी भी थी। वह अपने मन बहलाव के पूरे अवसर चाहती थी। आर्थिक दृष्टि से विपन्न पुरुष की सीमायें थीं। इन सीमाओं के कारण चाहते हुये भी नारी को वह उतना नहीं दे पा रहा था जितना नारी उससे अपेक्षा करती थी। पुरुष चूंकि अधिक स्वतंत्र और अधिक संचरणशील थे, इसलिये वे अपने मन बहलाव के क्षण तलाश लेते थे। स्त्री को ऐसे अवसर यदा–कदा ही प्राप्त होते थे। नारी ने अपनी संपूर्ण सीमाओं के बीच अपने एवं अपने परिवार के मंगलमय, समृद्ध एवं सम्पन्न स्वरूप की ऐसी कल्पना कर ली, जो उसके लिये एक ऐश्वर्यमय समांतर संसार जैसा था – इसी भावना का प्रकाशन तमाम तरह के मंगलपरक लोकगीतों में हुआ है। लोकजीवन में पुरुष भी नारी को उसके स्वप्न के अनुकूल सुख–सुविधायें देना चाहता था इसलिये वह अपनी पत्नी को महल के सातवें खंड पर बैठी डिब्बों के पान खाने वाली रानी के अनुरूप आरामदायी परिवेश देना चाहता है –

"बैठी हो रईयो रानी सतखंडा पे खईयो डबन के पान"

संयुक्त परिवारों की जकड़ी प्रथाओं और लोक–लज्जा की कठिन पहरेदारी के बीच नारी की मानसिकता को उन्मुक्तता का जीवन जीने नहीं मिल पाता था, इसलिये अक्सर वह विभिन्न मंगल–विधानों में विभिन्न रिश्तों की बखिया उधेड़ती है। सोहर, विवाह–गीत और बरुआ गीतों में उपस्थित सास–ससुर, जेठ–जिठानी, ननद–ननदोई, देवर–देवरानी आदि के प्रति एक उपेक्षाभाव और तिरस्कारपूर्ण वर्ताव सर्वत्र प्राप्त होता है। सास और ननद तो बहू के लिये हर मंगल कार्य में व्यवधान उत्पन्न करने वाली रही हैं। पुत्र जन्मोत्सव में इन्हें इनका मन वांछित नैग नहीं दिया जा सकता। सो वहू अपने पति से कहती है कि इनकी परवाह मत करो, ये तो हमारी जीवन–चर्चा में हस्तक्षेप करते ही रहेंगे। बहू के मन में इन सभी संबंधों के प्रति एक आक्रोशपूर्ण भाव है। बावजूद इसके वह अपने कर्त्तव्य के प्रति सावधान है। परिवार में सबका ध्यान रखती है। अपने आक्रोश को वह लोकगीतों में तीक्षण व्यंग्य उत्पन्न कर सहज कर लेती है। मंगल–विधानों में इसलिये व्यंग्य अभिप्रायी लोकगीत अपने यथार्थ को भी प्रस्तुत करते हैं, और उस यथार्थ की काट भी देते हैं।

मंगल–विधानों में एक और अभिप्राय अत्यंत महत्व का रहा है। चाहे लोक कथायें हों, चाहे व्रत–उपवास से संबंधित व्रत–कथाऐं हों, चाहे लोकगीत हों, इन सब में लाख विपत्तियों और संघर्षों में एक सुखद भविष्य का स्वप्न झिलमिलाता रहता है। एक आशावादी भाव सर्वत्र झलकता रहता है। अक्सर इन कथाओं में–इन गीतों में यह मंगलकामना व्यक्त की जाती है कि जैसे उनके दिन फिरे वैसे सबके दिन फिरें। इससे यह स्पष्ट होता है कि लोक–जीवन के अंधेरों से पराजित नहीं है। वह सर्वत्र एक प्रकाश की तलाश करता है। यही कारण है कि वह अपने घोर दारिद्रय में भी लोकगीतों के भीतर एक जगमगाता ऐश्वर्य पूर्ण संसार उपस्थिति करता रहता है।

– श्री चंडी जी वार्ड/हटा/दमोह/म.प्र. ☐

चौकड़ियां

– एल.एम. चौरसिया

दिनभर ढोर चरावें जाबैं, हार पहारन राबैं।
बेर मकुइयाँ टोर–टोर कैं, चींख–चींख कैं खाबैं।।
कबहुं तुवाकरी गाय पकर कैं, दौनन दूध लगाबैं।
संजा लगें नार लै करकैं, घरै लौट कैं आबैं।।

कैबे ढोर चराबे जाबैं, दिनभर खेलत राबैं।
अंडा डारौ खेल–खेल कैं, सब खाँ खूब पदाबैं।।
छुआ–छुबउल में रूखन पै, बंदरा सें चड़जाबैं।
तुआतार गूँगा में मिलकें, धूरा बीच लुटावैं।।

नौनी लगैं बुन्देली बानी, वाणी की वरदानी।
अटका, टउका उर कानातें, बूझे गूढ़ कहानी।।
गारी भी सुर लय मैं गाकैं, सुना दैंय मनमानी।
जे रस भरीं गुंरीरी गारीं, सुनबे तरसें प्राणी।।

सबसें देश बुन्देला प्यारे, सब देशन सैं न्यारे।
राजा राम ओरछा बिराजे, त्रिभुवन के रखवारे।।
पतित पावनी वेत्रवती नित, जिनके चरण पखारे।
केशव, रायप्रवीण यहाँ के, बने जगत उजयारे।।

अब तौ रानै देश गुड़ानें, अंत कहूँ न जानें।
महुआ आम अचार आँवले, मनचाहे सो खानें।।
विन्ध्याचल सतपुड़ा प्रकृति के, जां अनमोल खजानें।
बेर मकुइयाँ तेंदू ऊमर, बौल बगइया खाने।।

– सीताराम कॉलोनी, छतरपुर ☐

बुन्देली लोककथाओं का धार्मिक स्वरूप

– डॉ. दुर्गेश दीक्षित

हमारा भारत धर्म प्रधान देश है। यहाँ की भोली भाली जनता धर्म के नाम पर मर–मिटने को तैयार रहती है। प्राचीन काल से ही धर्म मानव–जीवन का प्रमुख अंग रहा है। मनुष्यों के आचार–विचार, रहन–सहन और खान–पान आदि समस्त कार्यकलाप धर्म पर ही आधारित हैं। यही कारण है कि भारत के हर अंचल का लोक साहित्य धर्म की ही आधार भित्ति पर स्थित है। क्या लोक गीत, क्या लोक कथायें और क्या लोक गाथायें सभी धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत है। लोककथा का प्रारंभिक रूप धर्म–गाथा के ही रूप में दिखाई देता है। धर्म ही हमारे देश का जीवन है। भारतीय संस्कृति और समाज में धर्म का ही स्वर सुनाई देता है। अर्थ धर्म, काम, मोक्ष इन चार पदार्थों में धर्म का ही सर्वोच्च स्वर है, जो समस्त वातावरण में ध्वनित हो रहा है।

वैदिक साहित्य से लेकर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, और पालि का साहित्य धर्म के विविध पहलुओं को लेकर ही लिखा गया है। हमारे पूर्वज आर्यों ने समाज में सर्वप्रथम धर्म की ही स्थापना की थी। धर्म की प्रेरणा से लोक साहित्य की रचना हुई है। व्यक्ति और जाति में जो सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध लोकसाहित्य और धर्म में परिलक्षित होता है। धर्म के कारण ही लोक साहित्य को इतनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। उदाहरण स्वरूप कार्तिक के गीत, देवी के भजन, बाबा के गीत, और अन्य उत्सव–त्योहारों के गीतों में धर्म ही धर्म दिखाई देता है। ग्राम्य–जन तीर्थ, यात्रा को जाते समय ''लमटेरा या बाबा के गीतों का गायन करते हुए अपनी धार्मिक भावनाओं का परिचय देते हैं। नारियां पूरे माह भर कार्तिक स्नान करती हैं और कृष्ण लीलाओं का गायन करती हुई घरों से निकल पड़ती हैं। ग्रामीण समाज में नारियां अनेक व्रत और उपवास करती हैं। व्रतों और पर्वों के अवसर पर लोकगीतों के गायन और तत्सम्बन्धी लोक–कथाओं के कहने का प्रचलन है, जिनमें धर्म का स्वर सुनाई देता है। बौद्धों की जातक कथायें जैनियों की चरित्र कथायें और हिन्दू की व्रत कथाओं में धर्म का स्वरूप दिखाई देता है। लोकगीतों में कर्म पर विशेष बल दिया गया हो किन्तु लोककथायें भाग्यवाद को ही अधिक महत्व देती हैं, जो ईश्वरीय कृपा पर आधारित हैं। इनमें धर्मप्रधान और मर्यादित पात्रों को ही स्थान दिया जाता है। ये प्रायः सुखान्त ही होती हैं। भले ही कथावस्तु में दुखद और भयावह घटनाओं का समावेश किया गया हो, किन्तु उनका अंत सुखान्त ही होता है। इनमें सत्य की विजय और असत्य की पराजय प्रदर्शित की गई है। लोक कथाकार 'सत्यमेव जयते, नानृतम्' के शास्वत सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। हमारा समाज अनेक रूढ़ियों, परम्पराओं और अंधविश्वासों से आवृत है। जिनके दर्शन लोककथाओं में होते हैं। मुगलों के अत्याचारों से त्रस्त होकर नारियों को जौहर करना पड़ा। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक साहित्य के स्वरूप का निर्धारण करते हुए लोकसाहित्य की भूमिका में लिखा है – *''लोक संस्कृति का जैसा दिव्य तथा अकृत्रिम प्रतिबिम्ब इस साहित्य में उपलब्ध होता है, उसका दर्शन अन्यत्र कहां? जन साहित्य की निर्मल–निर्झरिणी में अवगाहन कर केवल शरीर ही पवित्र नहीं होता प्रत्युत आत्मा भी पवित्र और पूत बन जाती है। इसमें जिस समाज का चित्रण किया है वह स्वस्थ सदाचारी एवं धर्मभीरु है। जिस नीति की प्रतिष्ठा की गई है। वह कल्याण मार्ग की ओर ले जाने वाली है। वहां मंगल–मय पथ की प्रदर्शिका हैं जिस धर्म का वर्णन किया गया है, वह संसार में प्रेम और शांति का संदेश देता है। जिस आर्थिक संघटन का उल्लेख हुआ है, वह पीड़ित तथा दलित मानवता के शोषण पर अवलंबित नहीं है। जिस राजनीति का दिग्दर्शन कराया गया है वह दलीय संघर्ष और विषाक्त वातावरण से कोसों दूर है। धर्म, समाज और नीति का यही मनोरम चित्रण इस साहित्य की महत्ता में चार–चांद लगा देता है।''* अधोलिखित बिन्दुओं के आधार पर लोक कथाओं में निहित धार्मिकता का मूल्यांकन किया जा सकता है।

(1) व्रत और उपवास की महत्ता :

इस अंचल के पर्वों के अवसर पर धार्मिक उत्सवों का आयोजन किया जाता है। नारियां अपने पतियों और पुत्रों की मंगलकामना हेतु अनेक प्रकार के व्रत और उपवास किया करती हैं। हर व्रत के अवसर पर लोक कथा कहने का विधान है। कथा के बिना व्रत अपूर्ण माना जाता है। जैसे प्रत्येक माह में किसी न किस व्रत का विधान है। जैसे एकादशी, गणेश चौथ, करवा चौथ, ओघ द्वादशी, सन्तान सातें, महालक्ष्मी, हरछठ, गनगौर, हरितालिकातीज, मौराईछठ, रामनवमी, नागपंचमी, शिवरात्रि, अनंत चौदस, प्रदोष, बाबू की दोज, भइया दोज, जन्माष्टमी, दशहरा, दिवारी, आदि त्योहार महत्वपूर्ण हैं। हर त्योहार की कोई न कोई लोककथा अवश्य होती है जिनमें व्रतों की अनिवार्यता और उपयोगिता पर बल दिया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि व्रत और उपवास न करना नास्तिकता और अधर्म है। बुन्देलखण्ड

की 'हरछठ' लोककथा का संक्षिप्तांश दृष्टव्य है – "हरछठ के दिनां सबई जनीं उपासीं रती हैं। वे उदनां अकेली भैंसई को दूद मठा खातीं हैं। उर उदनां हर कौ जुतों नईं खाव जात। ऐसें ऐसें उदनां एक अहीरन अपनें हल्के से लरका खौं एक छेवलिया के छांयरे में पार कैं दूद मठा खौं बेंचबे गांव में चली गई। ऊनें गांव में गैयन उर भैसन कौ मिलो–जुरो दूद उर मठा बेच दओ। एक किसान खेत जोतबे आई खेत में पौच गओ जिते छेवलिया के छांयरे में ऊ अहीरन कौ नन्नैया परोतो। किसान खौं कछू कूत नई परो, उर ऊकी हर की नांस सैं ऊ लरका कौ पेट फट गओ, उर बौ तुरतई मर गओ। जब वा लौटकै आई उर अपने मरे लरका खौं देख कैं डिड़यान लगी। ओई समय कछू जनीं ऊसें पूछन लगीं कैं काय बाई तैनें आज कछू पाप तो नई कर दओ। सांसी सांसी बताव। अहीरन बोली कै जिजी एक गल्ती आज मोसे हो गई। मैने गांव में गैया भैंस कौ मिलो दूद मठा बेंच दओ सुनतनई सब जनीं बोली कैं तै जल्दी गांव में घरन घरन कै दे कै बाई हरों जौ मिलवाँ कौ दूद मठा जिन खइयो। वा तुरतई गांव में जाकें घरन घरन जा बात कै आई। औरतन ने उये अशीष दई कै बाई तोरौ बेटा खुशी रयें जब वा लौट कैं आई, तब नौ किसान ने उयै एक छेवलिया के पत्ता पै धरकै उर जरिया के कांटे उर कांस सैं मरे लरका कौ पेट सीके धर दओ। जब वा अहीरन लौट कैं आई, तबई उयै अपनौ लरका हँसत खेलत दिखानौ। देखतनई वा अहीरन भौत खुश भई उर सब जनियन सैं बोली कै जौ होत हरछठ के व्रत को प्रभाव। बाढ़ई नें बनाई टिकटी, उर हमाई किसा निपटी।" इसी तरह की लोककथायें हर व्रत के अवसर पर कहीं जाती हैं।

(2) **भक्ति–भावना का आधिक्य :**

लोक कथाओं में भगवान के अनन्य भक्तों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। बुन्देलखण्ड में प्रचलित भक्त ध्रुव, भक्त प्रहलाद, मोरध्वज, सती सुलोचना, शबरी, विदुर से सम्बन्धित लोक कथाओं में भक्ति–भावना दिखाई देती है। बुन्देलखण्ड में महालक्ष्मी की कथा प्रचलित है, जिसमें नारियों की अनन्य भक्ति के दर्शन होते हैं। लोककथा का एक संक्षिप्त अंश प्रस्तुत है– "ऐसें ऐसें एक शिहिर में एक राजा राज करत्ते। उनकी प्रजा खूबई भरी पूरी हती? काऊयें कछू चीज की कमी नईं हती। ऊ राजा कीं दो रानी हतीं। बड़ी रानी कौ नाव अमौती उर हल्की रानी को नांव दामौती हतो। राजा कौ हल्की रानी से जादा प्रेम हतो उर राजमिहिल में ओई की हुकूमत चलत्ती। नौकर चाकर सब ओई की अरदली में रत्ते। बड़ी रानी आमौती नौकरानी की घांई गोबर कूरा उर झारा बटोरी करत रत्ती। हल्की रानी रूखै सूकौ खाबे खौं दै देतती। वा बिचारी ओई में संतोष रत्ती। एक कच्चे फूटे से घर में कथरी ओढ़े डरी रत ती। एक दिनां माँ लक्ष्मी की पूजा कौ दिन आ गओ। बा विचारी सुकरी सुकरी सी फिरन लगी, उर सोसन लगी कै आज हम लक्ष्मी जू की पूजा कैसें करें। कछुअई तौ हांत पास में नइयां। वा मौगी चाली हल्की रानी के लिंगा जाकैं बोली कै बेन आज लक्ष्मी जू की पूजा है। थोरौ भौत कछू दै देतीं, तौ मैईं पूजा कौ थेरौ सौ पकवान बना लेती। हल्की रानी ऐंठ कैं बोली कै इतै का धरो। ले थोरौ सौ पौवा भर तेल उर अस्सेरा भर चून लै जा। चाय खा लिइये उर चाय पूजा कौ सामान बना लिइये। जौ कछू ऊने दओ सो वा मौगी चाली लै कें चली गई वा तौ गरीबनी हती, अकेलें वा भगवान उर लक्ष्मी जू खौ साँसे भाव सै मानतती ऊनें सोसी कै हम उत्तई चून उर तेल में थोरी थोरी गुलइयाँ ठिठइयां बना लैय। उर वा बनाबै की तैयारी करन लगी।

दुपर लौटें लक्ष्मी जू नें बूढ़ी डुकरिया कौ रूप, धारण करो उर अपने भक्तन की परीक्षा लैबे खौं चल दईं। सबसै पैला वे हल्की रानी के राजमिहिल के दरवाजै पौचीं उर जोर सैं बोली कै को आरे है भीतरै किवार तौ खेलौ। हल्की रानी बड़ी ठसक में हती। वा भीतर सैं बोली कैं को आव तुम। किबार काय खौं खुलवा रईं। लक्ष्मी जू बोली कै बेटा हम तुमाई मौसी आँय। दामौती बोली कै इतै हमाई मौसी कासें आई। जाव कोनऊ और घर देखौ। डुक्को हरां हरां बड़ी रानी के फूटे घर नौ पौंची। वा बिचारी दोर में किवरिया लगांय पकवान बनाबे की तैयारी कर रई ती। डुक्को ने किबरिया के लिंगा जाकैं टेर लगाई कै कौआरे है घरै। सुनतनई आमौती बोली कैं काय बाई। डुक्कौ बोली कैं खोलौ किवरिया बेटा, हम आ तुमाई मौसी। आमौती तुरतई बायरै कड़ आई उर उन डुक्कौ के गरे सैं लग कैं खूबई रोई उर बोली कैं मौसी तैने भौत दिना में हमाई खबर लई। आज मा लक्ष्मी है अपुन अच्छे मौका पै आईं मौंसी। चलौ भीतरै चलौ। घर में तौ कछु है नइयां, तनक सौ चून उर तेल है। चलौ थोरौ सौ पूजा कौ सामान बना लेवूँ।

डुक्को बोली कै बेटा तुम फिकर नई करो। सब लक्ष्मी जू पूरौ कर दैय। तुम पैलऊ सपर खोर कैं आ जाव, तब तक हम सामान बनाबे की तैयारी कर रये। उर देखौ तुमें नदी के घाट पै लहर पटोरे उर सोने कौ गढुवा धरो मिलै सो तुम डराइयौ नई। आमौती बोली कै मौसी हमाये भाग में लहर पटोरे काँधरे जेई फटे चीरई भौत हैं। इत्ती कै के अमौती सपरबे खौं चल दई। उतै जातनई घाटपै उयै लहर पटोरे उर सोने को गढुवा धरो दिखानौ। ऊनै अच्छी तरा सै सपरो उर सोने के गढुवा सैं सोरा ढारे, उर लहर पटोरे पैर कैं जब घरे आई तौ देखतनई रै गई। कुटिया की मिहिल ठाढ़े हो गये। भीतर झाकर पकर हो गओ। पकवानन

के ढेर लग गये। भीतर बाजे बज रयेते। इन्द्रलोक से ऐरापत हाथी आ गओ। लक्ष्मी जी की पूजा होन लगी। मौसी कुजानें कितै बिला गई। आमौती रानी अचरज में हो गई कै जौ हो का गओ। उनई के घरै राजा आ गये। उर गाँठ जोर कैं पूजा होन लगी। उतै हल्की रानी के घर में इंदयारौ डरौ तो। ऊके घर में कोऊ बातई करबे वारौ नई हतो। वा बड़ी रानी कौ भाग देख कैं सनाकौ खाकै रै गई उर अपनी करनी पै पछतान लगी। लक्ष्मी जी की कृपा से बड़ी रानी के दिन फिर गये।''

ये है भक्ति भावना का प्रभाव। ईश्वर की सच्ची साधना के द्वारा मनुष्य का भाग्योदय हो जाता है। यह भारतीय संस्कृति का एक मूल मंत्र है, जिसके कारण मनुष्य देवतुल्य हो जाता है।

(3) लोक मंगल की भावना :

प्रत्येक लोककथा के अंत में लोकमंगल कामना की जाती है। लोक कथा में नायक विविध प्रकार की विपदाओं को सहन करने के पश्चात् विजयी होता है। उसके दुखद दिवस सुख की स्वर्णिम घड़ियों के रूप में बदल जाते हैं। नायक की विजय प्रदर्शित करके लोककथाकार "वसुधैव कुटुम्बकं की भावना से प्रेरित होकर लोक मंगल के भाव प्रदर्शित करता है। यही कारण है कि हर कथा के अंत में लोक मंगल की कामना की जाती है। यह प्रवृत्ति समस्त आंचलिक साहित्य में दिखाई देती है। लोक कथाकार कथा पूर्ण करने के पश्चात् कहता है कि *"ऐसी बैंन और ऐसौ भैया सबई काऊ के होबै।"* कहीं कहीं कहा जाता है कि *भइया वे राजा भये उर वे रानी भई जैसे इन राजा रानी के दिन फिरै ऊसई सबई के दिन फिरबै। ऐसी अनहोनी घटना काऊ के संगै नईं घटै।"*

(4) परोपकार भावना :

परोपकार भावना भी धर्म का प्रमुख अंग हैं महाकवि तुलसीदास जी ने धर्म की परिभाषा देते हुए लिखा है कि *"परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।"* लोक कथाओं में 'सत्य हरिश्चन्द्र का उदाहरण प्राप्त होता है। जिन्होंने अपना सर्वस्व दान करके डोम के यहां नौकरी की थी। परोपार प्रवृत्ति से प्रेरित होकर दधीचि ऋषि ने इन्द्र को अपना अस्थि-पंजर दान में दे दिया था। राजा शिवि ने कबूतर की रक्षा हेतु अपने शरीर का मांस काट काटकर तराजू पर चढ़ा दिया था। राजा दिलीप गाय की रक्षा हेतु स्वयं सिंह के सम्मुख प्रस्तुत हो गये थे। हमारा सम्पूर्ण पौराणिक साहित्य परोपकार की पूत भावना से परिपूर्ण है। राजाओं में यह प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। लोककथाओं में इस प्रार के उदाहरण भरे पड़े हैं। राजा विक्रमादित्य और राजा भोज की उदारता और न्यायप्रियता पर आधारित अनेक लोककथायें बुन्देलखण्ड में प्रचलित हैं।

(5) नैतिक मूल्यों की बहुलता :

इस साहित्य में आदर्श और यथार्थ का समन्वित रूप दिखाई देता है। माता-पिता, पिता-पुत्र, भाई-बहिन और पति-पत्नी के चरित्र आदर्श की सीढ़ी पर खड़े हुए हैं किन्तु वे यथार्थता से भी हीन नहीं है। इस साहित्य में समाज के उभयपक्षों का दिग्दर्शन किया गया है – जहां समाज के ऐश्वर्य सम्पन्नता और वैभव का चित्रण है, वहीं समाज की विपन्नता, और दीनता का दर्दनाक वर्णन भी है। जहां पति-पत्नि, पिता-पुत्र, भाई-बहिन और देवर-भाभी के आदर्श चरित्र हैं, वहीं पति-पत्नी ा कलह पिता-पुत्र का विरोध, भाई-बहिन की कटुता और देवर-भाभी की नोक झोक का भी वर्णन किया गया है। बुन्देलखण्ड की कथाओं में लाला हरदौल की लोक कथा देवर-भाभी के आदर्श प्रेम का परिचय देती है। लाला हरदौल ने अपनी निष्कलंकता का परिचय देने के लिए भाभी के हाथ से विष-मिश्रित भोजन ग्रहण करके प्राण त्याग दिये थे। श्रवण कुमार की पितृ-भक्ति से कौन परिचित नहीं है। वीर जगदेव ने अपना शीश देवी जी के चरणों में चढ़ाकर सच्ची भक्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया था।

इतिहास प्रसिद्ध ओरछेश मधुकरशाह की रानी गणेश कुँवरि अयोध्या से राजा रामको ओरछा लाई थीं। ओरछा जाकर हम आज भी रामराजा के दर्शन सकते हैं। हमारा कथा साहित्य आदर्श चरित्र और इंस जनपद के महापुरुषों की आदर्श चरित्र कथाओं से भरा पूरा है। उनका त्याग-तपस्या और बलिदान आज की नवीन पीढ़ी के लिए प्रेरणास्पद है। नैतिक और आदर्श मूल्यों की बहुलता जन-जागरण का मूल मंत्र है।

(6) अलौकिकता का आधिक्य :

इन धर्म कथाओं में अलौकिकता की अधिकता दिखाई देती है। अनेक स्थलों पर चमत्कारिक क्रियायें प्रदर्शित की गई है। महाकवि तुलसीदास जी ने लिखा है कि –

"समरथ को नहिं दोष गुसाँई।
रवि-पावक सुरसरि की नाँई।।"

ईश्वर कुछ भी करने में समर्थ है। वह क्षण भर में असंभव को संभव कर सकता है। कहा भी है –

"मुकं करोति वाचालं, पंगुं लंघते गिरिम्"

भक्त भगवान की इस अलौकिकता पर अटूट विश्वास करता है।

"भावी मेटि सकई त्रिपुरारी"

जगत सृष्टा ईश्वर ही संसार के कष्टों को दूर कर

अज्ञात रचनाकार माधौसिंह बुन्देला

– डॉ. कुंजीलाल पटेल "मनोहर"

बुन्देलखण्ड में प्राचीन काल से ही साहित्य का सृजन होता चला आया है, एक ओर जहां परिनिष्ठित भाषा में साहित्य की रचना हुई तो दूसरी ओर लोक–भाषा बुन्देली में भी लोक–साहित्य के अतिरिक्त अनेक रचनाकारों द्वारा काव्य–सृजन किया गया। ऐसे अनेक कवि और साहित्यकार हैं, जिनकी पर्याप्त जानकारी आज उपलब्ध नहीं है। हिन्दी साहित्य के इतिहास और नागरी प्रचारणी की खोज–रिपोर्टो में जिन साहित्यकारों का व्यौरा नहीं आ सका, कवि माधौसिंह बुन्देला उन्हीं अज्ञात रचनाकारों में से एक है।

सीलौंन का ऐसा कोई पड़ौसी गांव नहीं, जहाँ का जन-मानस कवि बुन्देला के साहित्य से परिचित न हो और बुन्देली–साहित्य का ऐसा कोई सुधीसमीक्षक नहीं है, जो इनके साहित्य की जानकारी रखता हो। इसलिए प्रकाशन और प्रसारण की दृष्टि से बुन्देलखण्ड की इस विभूति को अज्ञात रचनाकार ही कहा जायेगा। अपनी शोध–यात्रा के दौरान लोक–गायकों से सम्पर्क करने पर मुझे अनेक ग्रामीण रचनाकारों की जानकारी प्राप्त हुई, जिनमें बुन्देला जी के साहित्य ने मुझे काफी प्रभावित किया।

माधौसिंह का साहित्य अधिकांशतः लोकगायकों के पास है। उन्हीं के द्वारा इनकी रचनायें सुनने को मिलीं। अभी तक इनका साहित्य सहेजकर रखने वालों ने मुझे बताया है कि सीलौंन क्षेत्र में बुन्देली साहित्य पर माधोसिंह का वैसा ही अधिकार रहा, जैसा कि छतरपुर में गंगाधर व्यास का, बगौरा में विन्ध्यकोकिल ईसुरी का, पनवाड़ी में ठाकुर भुजबलसिंह का और बिजावर में ख्यालीराम का अपने समय में था। सीलौंन, झमदुली, सलैया, वरद्वाहा, भुसौर, कौड़न, गंगवाहा, हरपुरा तथा रनगुवां आदि ग्रामों में लोक–गायक आज भी बुन्देला जी की रचनाओं को तीज–त्यौहारों के अवसरों पर आदर के साथ गाते हैं। इस रचनाकार का काफी साहित्य विलुप्त भी हो गया है।

माधौसिंह आचार्य ईसुरी एवं कवि गंगाधर व्यास के समकालीन माने जा सकते हैं। कवि के वंशज कुँवर अमानसिंह बुन्देला की स्मृति के अनुसार – *"कवि माधौसिंह का जन्म सीलौंन के राजा पृथ्वीसिंह बुन्देला की धर्मपत्नी से प्रथम पुत्ररत्न के रूप में सम्वत् 1927 में हुआ था। बुद्धसिंह, किशोरसिंह तथा पर्वत सिंह इनके तीनों अनुज बहुत ही श्रृद्धालु एवं भक्ति प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। बुन्देलाजी ने अपनी जिन्दगी के अन्तिम क्षणों तक साहित्य सेवा की। सम्वत् 2002 में आप अपने भरे–पूरे परिवार को हमेशा के लिए छोड़ गये थे।"*

ठाकुर साहब की जन्मभूमि पुरानी सीलोन के इर्दगिर्द रनगुवां बांध बंधवाये जाने के कारण वहां के निवासियों ने अन्यत्र आकर बहुत ही व्यवस्थित ढंग से नया सीलौंन बसा लिया है। पुरानी सीलौंन में महाराज पृथ्वीसिंह जू देव का राजमहल तथा उन्हीं के द्वारा बनवाया गया बिहारी जू का विशाल मंदिर आज भी देखा जा सकता है। समय–समय पर आज भी समीपवर्ती लोग भक्तिभावना के कारण इस

सकता है। अनेक लोकगाथाओं में भगवान शंकर और पार्वती की कृपा का वर्णन है। पार्वती जी का नारी स्वभाव बहुत ही सरल और उदार प्रदर्शित किया गया है। वे पर दुख देखकर शीघ्र ही द्रवित हो जाती है। पार्वती जी के आग्रह पर भगवान शंकर कभी तो अपनी कनिष्ठिका चीरकर अमृत छिड़ककर चिड़िया से स्त्री बना देते हैं और कभी कमण्डल का जल छिड़क कर मुर्दा को भी जीवित कर देते हैं। कभी कभी वे किसी भूले भटके नायक को मार्ग प्रदर्शित भी करते हैं। अनेक लोक कथायें भगवान शंकर और पार्वती की कृपा से भरीं पड़ी है। वे आशुतोष अवढरदानी हैं। भक्तों से प्रसन्न होकर शीघ्र ही वरदान दे देते हैं।

कुछ कथाओं में देवी जी की कृपा और उनकी अलौकिकता का वर्णन है। राजा जगदेव, आल्हा–ऊदल, मलखान आदिशक्ति के परम भक्त थे। कुछ भक्त तो आवेश में आकर–अपना शीश भी काटकर चढ़ाने को तैयार हो जाते थे। माँ की कृपा से वे बड़े से बड़े युद्ध जीतकर लौटते थे। देवी जी ने भौमासुर का बंध करके अपने भक्तों को निर्भय कर दिया था। आल्हा–ऊदल अपने आराध्य मनियादेव की पूजा करने के बाद ही युद्ध में प्रयाण करते थे। रानी कुंवरि गणेश पुष्य नक्षत्र में राजा राम को अयोध्या से ओरछा लाई थी।

बुन्देली लोककथा साहित्य मानव जीवन के उज्जवल चरित्र की झांकी प्रस्तुत करता है। आज के दिग्भ्रमित मानव समाज को सत्पथ की ओर ले जाने का कार्य इन कथाओं के द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है। अधिकांश लोककथायें लोकमुख में ही सुरक्षित है। यदि इन्हें लिपिबद्ध करके मानव समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जाय तो नैतिक मूल्यों की स्थापना हो सकती है।

– कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ □

भव्य मंदिर के दर्शनार्थ पहुंचते हैं तथा माधौसिंह की भक्ति–रचनाओं का सामूहिक रूप से गायन करते हैं।

माधौसिंह को फड़वाजी का शौक गंगाधर की भांति था। कुंवर अमानसिंह के अनुसार इन्हें फड़वाजी का इतना लगाव था कि फागों के फड़ और भजन मण्डली मे मस्त हो जाने के कारण अपने घर–गांव की खबर तक भूल जाती थी। वे कभी–कभी रात्रि में सोते समय रचनात्मक स्वप्न भी देखा करते थे। यदि रात्रि में प्रकाश सुलभ न हुआ और भावुक हृदय से किसी रचना का प्रादुर्भाव हुआ तो वे कोंयला के टुकड़ों से अपने शयनकक्ष की दीवारों पर भी लिख डालते थे और प्रातः अपने काव्य–संकलन के रजिस्टर में लिपिबद्ध कर लेते थे।

माधौसिंह का एक हस्तलिखित रचना संग्रह जीर्ण–शीर्ण हालत में उपलब्ध हुआ है, जिसमें दोहा, सोरठा, पद, प्रभाती, कवित्त, कीर्तन, चौकड़ियां एवं छन्दयाऊ फागों के उदाहरण प्रचुर मात्रा में पाये गये हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि इनकी काव्य–प्रतिभा बहुमुखी थी। काव्य–रचना का दृष्टिकोण कवि गंगाधर व्यास की भांति अत्यन्त विस्तृत और व्यापक रहा। सूरदास की पद शैली में लिखा गया इनका वृहद ग्रन्थ "माधौ भजनावली" है जिसमें राम तथा कृष्णभक्ति काव्य धारा पर तो पर्यात प्रकाश डाला ही गया है, साथ ही शिव–पार्वती विवाह, सुदामा चरित्र, हरदौल चरित्र, प्रहलाद चरित्र आदि के अतिरिक्त चेतावनी विषयक स्फुट पद भी पर्याप्त मात्रा में लिखे हैं।

भजनावली के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में चार–पांच पदों में गणेश वन्दना की गई है। जिसमें भाव, भाषा और संगीतात्मकता का पूर्ण समन्वय हुआ है। उदाहरणार्थ एक पद प्रस्तुत है :–

तुमसों दुइकर जोरकें, बिनती करहुँ गनेश।
दास आपनो जानकें, करियो दया हमेश।।
भजो मन श्री गोरी के नन्दन।
चारभुजा अति सुभग बिराजत, माथे पै चन्दन।।
सुण्डा डंड दंत एक सोहत, सोस सकल गंजन।
मकराकृत कुण्डल कानन में, तुम संतन रंजन।।
कीजे कृपा जान जन अपनों, मैटहु दुख दंदन।
"माधौसिंह" छवि देख मगन भये, हरौ बिपति फंदन।।

मंगलाचरण के बाद अयोध्यापति दशरथ के कुल में भगवान राम का भ्राताओं सहित अवतार वर्णित कर उनकी बाल लीलाओं का मनोहारी चित्रण किया गया है। चारों भाईयों की बाललीला का वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

बालरूप खेलत फिरैं, जुरकें चारउ भाय।
बलिहारी बारूप की, शोभा कही न जाय।।
खेलत बाल–रूप रघुराई।
रामलखन और भरत शत्रुघन, नृप दसरथ घर चारउ भाई।।
लस तीनन में लाल झंगुलिया, टोपी कुसुम रंग शीश सुहाई।
कौशिल्या कैकई सुमित्रा, लेबें गोद तन धूर झराई।।
किलकत खात न ऐंगर आवें, भूपत बहुविधि रहे बुलाई।
"माधौसिंह" कहां लग बरनें, बाल–चरित हरि रहे दिखाई।।

कुछ समय उपरान्त मुनि विश्वामित्र का आगमन तथा उनके द्वारा यज्ञ रक्षार्थ राम–लक्ष्मण की याचना एवं राजा दशरथ द्वारा पुत्र मोह के कारण मुनि के साथ न भेजने की असमर्थता का चित्रण किया गया है। अयोध्यापति विश्वामित्र जी से कहते हैं –

लगत सुत प्रानन से प्यारे।
चौथेपन मौय इन सुख दीन्हों, करहु मती न्यारे।
मैं रिषिपति कौ कहा बिगारो, बचन बान मारे।
कहं मरीच सुबाहु ताड़का, कहां लखन बारे।
"माधौसिंह" कहें राम लखन दोऊ, नैनन के तारे।।

इस प्रकार रामचरित मानस के आधार पर भगवान राम की सम्पूर्ण जीवन–लीलाओं का चित्रण लोकभाषा बुन्देली में सरलतम ढंग से किया गया है। तदुपरान्त कृष्ण भगवान की अनेक लोक–लीलाओं का चित्रण किया गया है। "माधौ भजनावली" के "कृष्ण चरित्र" खण्ड में भगवान कृष्णावतार विषयक यह रचना, तिथिबद्ध चित्र प्रस्तुत करती है :–

तिथि आठें भादों वदी, अर्ध निसा बुधवार।
रोहनी आय नक्षत्र में, लओ कृष्ण–अवतार।
आज हरि ब्रज में लओ औतार।
लै बसुदेव चले गोकुल खाँ, बारहिं बार निहार।
जगत पहरूआ सो गये सारे, बाढ़ी जमुन अपार।
सोस बिचार करत हैं मनमें, केहि बिध उतरों पार।
पैठत जल उमड़ो कानन लो, कीन्हों चरण दुलार।
याविधि पार भये लै हरि को, पैठे नगर मझार।
जसुदा पास राख घनस्यामह, लई कन्या सुकमार।
"माधौसिंह" कहत कर जोरें, देवकी करत विचार।।

इसके बाद अनेक बाल–लीलाओं का चित्रण तो किया ही गया है साथ ही भक्तों की रक्षा के लिये अनेक राक्षसों का संहार चमत्कार पूर्ण ढंग से किया गया है। कंस द्वारा पहुंचाई गई राक्षसी पूतना का प्राणान्त कितनी आसानी से किया गया है, देखिये –

कीन्हों कंस विचार तब, हिये सोधकें बात।
है बालक ब्रजभूमि में, जापै करदो घात।
पूतना ब्रज में हरि ढिग आई।
दीनो हुकम कंस राजा ने, अब तू जा धाई।
मारहु बेग नंद सुत जाकें, बहुतक समझाई।
नउतम साज सिंगार कुचन विष, नंद भवन जाई।
पैर छुये जसुदा के आतुर, गह कर बैठाई।

तीन्हों बिहंस उछंग स्यामको, पयमुख में नाई।।
तेहिको स्याम कियो अति पावन, जननी गति पाई।
"माधोसिंह" देवतन प्रगटी, सुरपुर पहुंचाई।।

भगवान कृष्ण ब्रज में नाना प्रकार की क्रीड़ायें करते हैं, जिन्हें देखकर देवताओं तक की मति बौरा जाती है। रासलीला देखने के लिये भगवान शंकर तो नारी का रूप तक धारण कर लेते हैं। एक उदाहरण इसी संबंध में प्रस्तुत है –

एक समय श्री कृष्ण ने, लख सबको उत्साय।
रास रचो है प्रेम सों, सोभा कही न जाय।
ब्रज में रहस रचो गिरधारी।
बाजत ताल मृदंग झांझ ढप, मुरली धुन न्यारी।
ब्रज बनिता सब मोह गई है, नाचें दे दे तारी।
सुर–नर मुनि सबकी मति डोली, शंकर बन गये नारी।
"माधौसिंह" कछु कहत बनेना, देख–देखकें बलिहारी।।

इस प्रकार माधौसिंह ने भगवान कृष्ण की समस्त लोक–लीलाओं का समावेश अपनी भजनावली में किया है। आवश्यकतानुसार बीच–बीच में शरीर की क्षणभंगुरता संबंधी चेतावनी विषयक अनेक प्रसंग प्रस्तुत किये हैं। थोड़े दिन की जिंदगी का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

जियन जग थोरे दिन कौ जान।
हिललो मिललो खालो–पीलो, नाहीं करो गुमान।
सिर पै तोरे काल चढ़ो है, तुमें खबर नहिं आन।
न जाने किदना कढ़ जैहैं, ई चोला से प्रान।
"माधोसिंह" कहैं अलख लखे बिन, सब धन–धाम विरान।।

गोस्वामी तुलसीदासजी की भांति माधौसिंह ने भी राम–भजन कर मानवीय जीवन को सफल बनाने की सलाह इस प्रकार दी है –

माधौसिंह सबसे कहें, राम–राम अब काव।
जनम सिरानौ जात है, लोहा कैसो ताव।।
राम राम नहिं काते, कैसो उसई जनम गवाते।
ऐसौ नौनों नर तन पाकें, बिरथा यार नसाते।
जा नई सोचत अपने मनमें, गये दिन लौट न आते।।
जिनने हरी भजन नहीं कीन्हों, सो पाछूं पछताते।
याही सौ हम सबसे कहियत, नाहक चूके जाते।
"माधौसिंह" सब कोउ जानत, सब स्वारथ के नाते।।

माधौसिंह अच्छे भजनकार तो हैं ही साथ ही उच्चकोटि के फागकार भी हैं। चौकड़िया तथा छन्दयाऊ फागों के अनेक उदाहरण लोक–गायकों से सुनने को मिले हैं। बुन्देलाजी आचार्य ईसुरी की रजऊ विषयक फागों से खूब प्रभावित रहे, इसीलिए रजऊ शब्द का प्रयोग कर पर्याप्त मात्रा में चौकड़िया फागों की रचना की है। रजऊ की विदा विषयक एक चौकड़िया देखिए–

जिदना रजउ कौ होने जैबो, बन है कैसे रैबो।
मिलबो करी रोज दोरे में, हंसबो और बतैबो।
कैबो करी के तुम बिन प्यारे, हमें बिसर गओ खैबो।
"माधौसिंह" जौ बिछुरन कौ दुख, है मुसकिल सै लैबो।।

ईसुरी की भांति माधोसिंह की फागों में भी रजऊ परमात्मा का प्रतीक बन गई है। इसीलिए रजऊ से भेंट होना ही परमात्मा से मिलन होना है। जब विधना खबर लेता है तभी रजऊ से भेंट होती है। रजऊ से भेंट विषयक यह फाग विचारणीय है –

मोरी रजऊ से भेंट भई है, बिधने खबर लई है।
भओ आनंद हियै में भारी बिछुरन काल कई है।
भोत दिनन की बिछुरी मिल गई, दिल की पार गई है।
"माधौसिंह" लग गरें भेंट रये, सीधौ आज दई है।।

अन्य बुन्देली फागकारों की भांति बुन्देला जी ने भी घटनात्मक फागें प्रचुर मात्रा में लिखी हैं। एक घटनात्मक चौकड़िया देखते ही बनती है –

फटौ चित्य मिलबो कठिन, कोटन करौ उपाय।
फिर जोरो नाहीं जुरै, जीसें जो फट जाय।
मिलबो मुसकल चित्त फटे सें, फट गओ नेह घटेसें।
अब वे बातें होने नैयां, फिर से कभऊँ लटे सें।
कड़बी गैल घाट दूरई सें, ऐसे छैल छटे सें।
"माधौसिंह" कहें दुख बिसरत, अपनौ काम सटे सें।।

बुन्देला जी को फागों की फड़बाजी का बहुत शौक था। विपक्षीदल को परास्त करने के लिए आप भी पहेलियात्मक एवं गूढ़ार्थ की फागें रचकर स्वयं गाया करते थे। विपक्षीदल आपकी फागों में उसी तरह फस जाते थे जिस प्रकार मकरी के जाल में मक्खियां फस जाती हैं। ऐसी ही एक पहेलियात्मक फाग प्रस्तुत है –

देखी एक चीज घर–घर है, सब काऊ में पर है।
जाके पास होयना यारो, लगत बिहूनो घर है।
जामे पेड़ पत्र कछू नाहीं, न फूलत न फर है।
भूल जायेगा इस उरझा में, जो कोई सुरझा कर है।
तुमने हमरो नाम सुनौना, "माधौसिंह" जाहर है।
मकरी कैसो जार, फस गयी रजोवा फन्दा में।।

इस प्रकार कवि माधौसिंह बुन्देला की उपलब्ध रचनाओं के आधार पर यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि वे अपने समय के बुन्देली काव्य–भारती के समर्थ रचनाकार थे। यदि इनके समग्र साहित्य का संकलन कर मूल्यांकन किया जाय तो वे निश्चय ही विन्ध्यकोकिल ईसुरी, गंगाधर व्यास, ख्यालीराम, भुजवल सिंह तथा फागकार रसिया की भांति ही बुन्देली के समर्थ रचनाकार सिद्ध होंगे।

– सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर □

बुन्देलखण्डी रसिकता

– श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

स्वर्गीय मुंशी अजमेरी जी बड़े मौजी और रसिक जीव थे। उनके मुख से ब्रजमंडल तथा बुन्देलखण्ड के ग्राम गीतों की तुलनात्मक आलोचना सुनने में मजा आता था। चूँकि वे बुन्देलखण्डी थे इसलिये जान बूझकर हमारे जैसे ब्रजवासियों को चिढ़ाने के लिये ब्रज के दो घोर घासलेटी रसियों का पारायण करते थे और साथ में ईसुरी की सर्वोत्तम फागों का। ब्रजभाषा वे ब्रजवासियों से भी अच्छी बोलते थे और उनकी स्मरण–शक्ति गजब की थी। वाक्पटुता में उनके मुकाबले ठहरना यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठित अवश्य था। जब मुंशी जी कहते –

"अए चौबेजी, काए कौं बढ़ि बढ़ि कैं ब्रज कौ बखान कत्तौ! म्हाँ रुक्खौ ई का ऐ? "करि आई कौल करार दाऊजी के मन्दिर में" ऐसी ही घासलेटी बातें भरी हैं, और हमारे यहाँ बुन्देलखण्ड में?

"गाड़ी बारे, मसकि दै बैल
अबै पुरबइयाके बादर ऊन आए
कौना बदरिया ऊनई रसिया?
कौना बरसि गए मेय?
अबै पुरबइया के बादर ऊन आए!
अग्गम बदरिया ऊनई, रसिया,
पच्छम बरसि गए मेय।
अबै पुरबइयाके बादर ऊन आए!
घुँघटा बदरिया ऊनई, रसिया,
गलुअन बरसि गए मेय!
अबै पुरबइयाके बादर ऊन आए!

इसके बाद मुंशीजी एकके बाद एक रसियों तथा फागों की झड़ी लगा देते और ऐसा प्रतीत होता कि एक बार इन्द्र ने ब्रजपर फिर कोप किया है। बिचारे ब्रजवासी को याद आ जाती कुँवर कन्हैया की और किसी सत्यनारायणकी, जो मुंशीजी से उसकी रक्षा करता।

दो वर्ष पहले की बात है। श्रीमान् ओरछेश के साथ बैलगाड़ी में ग्रामों की यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। महाराजा साहब ने कहा, "आप तो ग्राम गीतों के शौकीन हैं, हमारे लिये बुन्देलखण्डी ग्राम–गीत इकट्ठे करते चलिये।" ग्रामगीतों का कार्य प्रारम्भ हुआ।

जिस समय अस्तौन के हलकुआ लुहार, भैयालाल, गोरेलाल और मर्दन ने ग्राम–गीत सुनाना शुरू किया, स्वर्गीय मुंशीजी की याद आ गई। मैंने उनसे कह दिया था कि निस्संकोच होकर जो मन में आवे सुनाओ।

हलकुआ की फागों को सुनकर बुन्देलखण्डी रसिकता तथा स्पष्टोक्तिका कायल होना पड़ा।

"भोरी कई मानि गैलिहारे
दिन डूबे जिन जारे
आगे गांव दूरनौ नइयाँ, नइँ चौकी नइँ पारे
परनै होउ तौ ठौर बताइ देउँ, रीते डरे उसारे
सास हमारी भोरी भारी, ससुर जनम के न्यारे
कहत ईसुरी मजा मार लेइँ, घरै नाँइ घरवारे

इसके बाद संकोच छोड़कर हलकुआने जो फागें सुनाईं तो रसका परनाला ही बहा दिया। उनको छापने की हिम्मत हममे नहीं है। पर बेचारे हलकुआ को ही दोषी क्यों ठहराया जाय यहां तो ब्रज की कहावत के अनुसार कुआ में भांग परि गई है! यहां तो हलकुआसे लेकर श्रीमान् ओरछेश तक और श्री गोविन्ददास विनीत से लेकर कविवर मैथिलीशरण जी गुप्त तक सभी रसिक हैं।

श्रीमान् ओरछेश ने ईसुरी की सैकड़ों फागों का संग्रह किया है और श्री युत गौरीशंकरजी द्विवेदी डाकखाने का नीरस काम करते हुए भी सरस ग्राम–गीतों की टीका लिखते हैं! और बाबू बृन्दावन लाल जी वर्मा तो अपने प्रान्त की रसिकतापर उतनेही मुग्ध हैं जितना कोई मुसलमान मक्केपर हो सकता है!

कविवर गुप्तजीने बन्धुवर सत्यार्थी जी को निम्न लिखित गीत लिखाया था –

नजर–भर हेरत काय नइयाँ?
हम तो राजा पिया, बनकी हिरनिया
तुम ठाकुरके लरिका
तुपक तीर मारत काय नइयाँ
नजर–भर हेरत काय नइयाँ?
हम तौ राजा पिया, जलकी मछरिया
तुम ढीमरके लरिका
झमक जाल डारत काय नइयाँ?
नजर–भर हेरत काय नइयाँ?

भला ब्रजकी बोलीभाली कुमारियों में यह भयंकर स्पष्टवादिता कहाँ मिल सकती है?

कोई महीने–भरसे बन्धुवर सियारामशरण गुप्त वन में वास कर रहे हैं। खेत के एक कुएपर डेरा जमा लिया है। सामने एक छोटी पहाड़ी है, जो निरन्तर अपनी ऊँचाई को छिन्न–भिन्न कराके सड़कों पर दूर–दूर तक अपनी

लालिमा (मुरम) पथयात्रियों के पद–तलों के नीचे बिछा रही है। अरसिक आदमियों का यह अनुमान हो सकता है कि कविबन्धु वहाँ शुष्क तपस्या कर रहे हैं, पर यह बात गलत है, देखिये वह किशोरी घास काटते हुए क्या गारही है और हमारे कोई चिरपरिचित कवि छिपकर उस लोक गीतको लिपिबद्ध करते जाते हैं।

"डुकरा, तोकौं मौत कितउँ नइयाँ!
डुकरा की खाट मरेला में डारी,
मरलाके भूत लगत नइयाँ।
• डुकरा, तोकौं मौत कितउँ नइयाँ!
डुकरा की खाट बँबीठे पै डारी,
करिया नाग डसत नइयाँ!
डुकरा, तोकौं मौत कितउँ नइयाँ!
डुकराकी खाट मड़इयों में डारी,
टूटे बड़ैरा, मरत नइयाँ।
डुकरा, तोकौं मौत कितउँ नइयाँ!
डुकराकी खाट नदीपै डारी,
आउत नदी, बउत नइयाँ।
डुकरा, तोकौं मौत कितउँ नइयाँ!

इस गीत को पढ़कर हमारे होश उड़ गये और हम ईश्वर से प्रार्थना करने लगे, "हे परमात्मा! अगर बुढ़ापा देना ही है तो बुन्देलखण्ड में न देना।" बेचारे डोकरे की खाट को जिन सुरक्षित स्थलों पर रखा गया है – श्मशान बाँबी और नदीकी मँझधार–उनकी कल्पना करके ही किसी ब्रजवासी डोकरे के तो प्राण कण्ठगत हो ही जावेंगे।

पर महारौनी के श्री गोविन्ददास 'विनीत' जीने जो ग्राम–गीत भेजे हैं, उनकी स्पष्टवादिता से दातों तले उँगली दबानी पड़ती है।

"नदी किनारे गोंदरा, लफलफ दूनर होय
दो गोरी को बालमा, सूक बहेरो होय"

....

"सुधर नारि वंडे पिया, रैन अकारथ जाय
मुरगा पापी बोलि दै, जौ मुरदा टरि जाय
करमके पांसे परे, मोरे बालमा।"
त्रिफला के बहेरे की उपमा विचारणीय है।

सैदपुर के ग्राम–संगठन–कर्ता श्री रामसेवक रावत दिन–भर तो ग्रामों का संगठन करते हैं और शाम को गाते हैं :–

जिन घालौ गुलेल, जिन घालौ गुलेल
आफतकी मारी चिरैया
कैसें को मन राखत अपनो
ना कोइ धीर धरैया
जिन घालौ गुलेल
00

00 00

अंधियारी है रात, अंधियारी है रात
बिन्नू को बूंदा दमकि रयौ
सपने में दिखाय, सपने में दिखाय
पतरी कमरि बूँदाबारी, हो।

वह देखिये झाँसी के सुप्रसिद्ध कवि श्री युत रामचरणजी मित्र क्या गुन–गुना रहे हैं :–

कायकौं दई मोरे राम
डँगैया में कायकौं दई मोरे राम
एक तो डँगैया में जुनरीको पीसिबौ
दूजो लटनसों काम
डँगैया में काय कौं दई मोरे राम

{डँगैया – बुन्देलखण्ड का एक भाग। लटा – महुआ को भूनकर, कूटकर और तिली के साथ बेल कर बनाई हुई चीज}

और सुनिये
बाँगर जोत बये
चना मैंने बाँगर जोत बये
जब वे चना भए दो दो पतौअन
सौतन खोंट लए
चना मैंने बाँगर जोत बये"

बुन्देलखण्ड में सौतों ने जो गज़ब ढाया है और फिर उनकी जो दुर्गति हुई है, उसका वृत्तान्त पढ़ कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हरे–हरे चन्दन वृक्ष कटवा कर जिस प्रकार उनकी चिता बनाई गई है और जिस प्रकार उनकी राख जमनाको भेजी गई है और फूल प्रयाग को, उसकी रोमांचकारी कथा फिर कभी सुनाई जायेगी।

बुन्देलखण्डी रसिकता के ये उदाहरण सुनकर हमने समस्त ब्रजमंडल की ओर से हार मान ली है। जहाँ प्रकृतिकी छटा नित्य नवीन दीख पड़ती हो, विस्तृत झीलों और सरोवरों तथा वनों–उपवनों से जो प्रान्त परिपूर्ण हो, जहाँ नदियों तथा झरनों का कल–कल निनाद क्षण–क्षण पर सुनाई देता हो, चारों ओर हरियाली का साम्राज्य हो, जहाँ पक्षियों का मनोहर संगीत आकाश में गूँजा करता हो, और जहाँ ग्रीष्म ने जलाशयों के सम्पर्क से अपनी कठोरता खोदी हो, वर्षा वनों के आकर्षण से झूम–झूम के आती हो और जहाँ वसन्त वनश्री को निहारता हुआ ठिठक–ठिठक कर धीरे–धीरे चलता हो यदि वहाँ के प्राणियों में रसिकता न आवेगी तो क्या रेगिस्तानों और करीलों के प्रदेश में शरण पावेगी?

बुन्देलखण्ड में इतना सब होने पर भी ब्रजमण्डल और ब्रजभाषा की बात ही निराली है। अधिक क्या कहें, कविवर सत्यनारायण के शब्दों में हमारा भी यह खुला चैलेंज है :–

बुन्देली काव्य–गंगा के भागीरथ : मुंशी अजमेरी 'प्रेम'

– पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'



श्री प्रेमबिहारी जी उन महान् रचनाकारों में से एक हैं जिन्होंने यशलिप्सा की कामना किये बिना मुंशी अजमेरी 'प्रेम' के नाम से रचनारत रह बुन्देली की अनवरत सेवा की। इन्हें लोग मुंशी अजमेरी 'प्रेम' के नाम से उसी प्रकार जानते थे, जिस प्रकार श्री धनपत राय को मुंशी प्रेमचन्द तथा श्री रघुपति सहाय को फिराक गोरखपुरी जैसे नामों से लोगों ने जाना पहचाना। इस बुन्देली से भी रचनाकार के बारे में जितना लिखा जाना चाहिये था, उतना नहीं लिखा गया। स्वयं राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने श्री अजमेरी के सम्बन्ध में लिखा था '.....परन्तु अपने कवित्व की ओर कभी उन्होंने ध्यान नहीं दिया। दूसरों की कृतियों का ही आनंद वे उदार भाव से लेते और देते रहे हैं।....' सही मायने में वे एक माहौल बनाकर हिन्दी और हिन्दी रचनाकारों की रचनाधर्मिता को ऊचाइयाँ प्रदान करने वाले प्रेरक पथप्रदर्शक और अनूठे सृष्टा थे। जिन्होंने सबसे पहले 'बुन्देली' को बोली की संकीर्णता से बाहर निकालकर एक साहित्यिक भाषा का स्वरूप संवारा था। उनके मार्ग पर कवीन्द्र नाथूराम माहौर, साहित्य शिरोमणि रामचरण हयारण मित्र, पं. रामप्रसाद शर्मा 'उपरीन' और पं. गुलाब राय जी 'रायकवि' जैसे कुछ लोग कुछ कदम जरूर चले। मुंशी जी की दिशा को परवर्ती रचनाकारों ने एकदम भुला दिया। फलतः बुन्देली को अभीष्ट स्थान प्राप्त नहीं हो सका। हाँ मुंशी जी के ही सुपौत्र पं. गुणसागर 'सत्यार्थी' अवश्य अपने बाबा की परम्परा का निर्वाह कर बुन्देली की सेवा में रत पाये जाते हैं। मुंशी जी का हिन्दी के अलावा बुन्देली के क्षेत्र में क्या अवदान रहा? इस इतिहास के पृष्ठ जो अब तक प्रायः अनखुले थे, श्री सत्यार्थी ने अपनी कलम से खोलकर इस लेख में शोधकर्ताओं को एक दिशा दी है।

– सम्पादक

जिस प्रकार हिन्दी– साहित्य का इतिहास पढ़ने पर हिन्दी साहित्य के क्रमिक विकास के सभी सोपान हमारे सामने स्पष्ट तस्वीर बना देते हैं, ठीक इसी प्रकार आज बुन्देली और उसके साहित्यिक विकास का क्रमिक इतिहास भी हमारी अनिवार्य आवश्यकता अवश्य है। कारण यह कि आज बुन्देली भी "बोली" का सीमित घेरा तोड़कर साहित्यिक भाषा की परिधि में आ गई है। आज बुन्देली लोक–साहित्य में लोकगीतों, कहनातों, लोक–कथाओं, लोक–गाथाओं, लोक–पहेलियों...... आदि से ऊपर उठकर एक साहित्यिक भाषा के रूप में विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रमों का महत्वपूर्ण हिस्सा बनकर उभरी है। बुन्देली में आज स्तरीय कविता लिखी जा रही है, देवभाषा संस्कृत से बुन्देली में स्तरीय अनुवाद भी हुए हैं जो कि समुद्रपार के देशों तक पहुंचे ही नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बुन्देली को एक साहित्यिक भाषा के रूप में परचित कराने में सफल हुए हैं...वगैरह।

ऐसी स्थिति में बुन्देली की दीवानगी ढोने वालों की एक भीड़ भी खड़ी है जो स्वयंभू बुन्देली के सशक्त हस्ताक्षर कहलाने में गर्व तो करते हैं परन्तु उसके प्रामाणिक इतिहास को न तो जानते ही हैं और न जानना चाहते हैं। कुछ लोग बुन्देली भाषा को विष्णुदास, केशवदास और जगनिक आदि के काव्यों की पर्तें निकालकर खोज रहे हैं तो कुछ लोग अपने गांव के अनपढ़ मजदूरों द्वारा टूटी–फूटी एवं बिखरी बोली की अति क्षेत्रीय शब्दावली को लेकर उसमें क्रियापद बुन्देली के जोड़कर स्वयं को बुन्देली का पंडित समझने का भ्रम भी पाले हुए हैं। ऐसे ही ऊहापोह की हो–हल्ला में "ईसुरी" का नाम यदि लिया भी जाता है तो एक अनपढ़ ग्रामीण फगुवारे के रूप में। ईसुरी कैसे रहे होंगे? इसकी कल्पना करते हुए स्व. अम्बिका प्रसाद जी "दिव्य" ने तो ईसुरी की तस्वीर एक नगड़िया बजाते हुए ग्रामीण फगुवारे के रूप में ही उकेरी है; जिसे आकाशवाणी छतरपुर की गैलरी में सम्मान के साथ लगाया गया है मानो वही ईसुरी का प्रामाणिक चित्र हो। बाबू कृष्णानन्द गुप्त का नाम ईसुरी के खोजकर्ताओं की सूची में अनजान लोग सबसे पहले लेते हैं, उनके बाद पं. गौरीशंकर द्विवेदी

"भुवनविदित यह यदपि चारु भारतभुवि पावन
पै रसपूर्न कमंडल ब्रजमंडल मनभावन
परम पुण्यमय प्रकृति छटा यहँ विधि विथुराई
00 00 00
जग सुर मुनि नर मंजु जासु जानत सुघराई।
तहँ सुचि सरल सुभाव रुचिर गुनगन के रासी
भोरे भारे बसत नेह विकसत ब्रजवासी
जिनके उच्च्व उदार भावगिरिसों जग आसा
जनमी तारनि तरनि कलिन्दिनि यह ब्रजभासा
बरनन को करि सकत भला तिह भाषा कोटी
मचलि मचलि जामें माँगी हरि माखन–रोटी।"

–(मधुकर (पाक्षिक) वर्ष–1 अंक–4 16 नवम्बर 194

पृ.क्र. 25 से साभार)

श्री चन्द्र जैन आदि अनेक नामों की श्रृंखला है। ईसुरी के तथाकथित प्रथम अन्वेषक बाबूकृष्णानन्द गुप्त ने डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर की वार्षिक शोध पत्रिका "ईसुरी" के पांचवे अंक में एक लेख लिखा था जिसका शीर्षक था – *"रजऊ नहीं थी"* यह लेख के रूप में प्रकाशित किया गया है, वैसे वह ईसुरी के सम्पादक प्रो. कान्तिकुमार जैन के नाम लिखा पत्र ही है। इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा *"........ ईसुरी न तो बुन्देलखण्ड का कालीदास था, न भवभूति, न जयदेव, एक साधारण अल्प शिक्षित व्यक्ति था, जिसे भगवान ने काव्य रचना की अद्भुत चमत्कारी शक्ति प्रदान कर रखी थी। वह एक साधारण फगुवारा था। फागों के दंगल में फागें कहने का उसे शौक था........"* (ईसुरी–5–87/88 पृष्ठ ईसुरी एक) तब मेरा विनम्र प्रश्न है कि जब वह एक साधारण फगुवारा था तब ईसुरी को विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रम में बुन्देलीभाषा के कवि रूप में पढ़ाने का औचित्य क्या? तात्पर्य यह कि ऐसे अनर्गल बकवासपूर्ण कथनों के उद्धरणों का संकलन ही आज के शोध छात्रों के शोध–प्रबन्ध हैं, जो उन्हें "डाक्ट्रेट" से विभूषित तो करा देते हैं, परन्तु बुन्देली और उसके साहित्यिक अवदान जैसे विषय की तह तक नहीं पहुँचा पाते। ऐसे डाक्टरों की भीड़ में यथार्थ की कल्पना करना स्वयं में टेड़ी खीर अवश्य है। अस्तु –

ओरछा राज दरबार के यशस्वी राजकवि स्व. मुंशी अजमेरी "प्रेम" जिनका वास्तविक नाम प्रेमबिहारी था, उनके बहुआयामी अवदान तक को हम भुला बैठे हैं। वे ब्रजभाषा के पारम्परिक काव्य युग एवं हिन्दी खड़ी बोली में द्विवेदी युग के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी माने गए। जिनके विषय में डॉ. हरवंश राय "बच्चन" ने लिखा –

"बजती क्या मैथिलीशरण के काव्य कीर्ति की भेरी?
मिलते अगर न उनको प्रेरक श्री मुंशी अजमेरी।"

वे जहां द्विवेदी युग में परिष्कृत हिन्दी में श्रेष्ठ काव्य रचना कर रहे थे, वहीं उनकी बृजभाषा, डिंगल और "बुन्देली" की श्रेष्ठ काव्य रचनाएँ भी हैं। परन्तु बुन्देली–साहित्य के इतिहास से वे नदारत हो गए हैं, अथवा जान बूझकर उपेक्षित कर दिए गए हैं। यदि उनके बहुआयामी पक्ष को लेकर चर्चा की गई तो यह एक निबन्ध नहीं, पुस्तक हो जाएगी। अस्तु उन सभी पक्षों को छोड़कर मात्र उनके बुन्देली अवदान पर यहाँ चर्चा की जा रही है।

पं. श्यामनारायण कश्मीरी ईसुरी के बारे में प्रामाणिक ग्रन्थ पं. श्यामसुन्दर बादल द्वारा प्रणीत प्रबंधग्रन्थ "बुन्देली का फाग साहित्य" को मानते थे। इस ग्रन्थ का प्रणयन श्री बादल जी ने 1950 के दशक में किया था। कदाचित 1953 में वह पूरा हुआ। अब तो मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद् भोपाल ने इस महत्वपूर्ण शोध–प्रबन्ध का द्वितीय संस्करण भी प्रकाशित कर दिया है। तथापि प्रथम संस्करण के पृष्ठ क्रमांक 302 पर लेखक ने लिखा है – ' *...... आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व अपने मित्र श्री वासुदेव कठिल मऊरानीपुर के विवाह में मुझे राष्ट्रकवि गुप्त जी के यहाँ बाराती के रूप में जाने का सौभाग्य मिला था, उसी अवसर पर उनके दरबार में स्व. मुंशी अजमेरी जी के रागपूर्ण मधुर कंठ से ईसुरी की "बखरी रैयत हैं भारे की. ....." टेक की फाग सुनी थी। तभी से लेखक ईसुरी की ओर आकृष्ट था, फलतः उनके साहित्य और जीवनी से संबंधित उपकरणों को जुटाने में लगा रहा........।" यह कथन श्री बादल जी ने लगभग 1950 में यदि किया, तो तीस वर्ष पूर्व का समय लगभग 1920 होता है........।"* उस काल तक क्या किसी अन्य अन्वेषक की दृष्टि ईसुरी पर पड़ी थी? क्या बाबू कृष्णानन्द गुप्त, पं. गौरीशंकर द्विवेदी, श्री चन्द्र जैन, शिवसहाय चतुर्वेदी.......... वगैरह कोई भी नाम ईसुरी के सन्दर्भ में सामने आया था? ऐसे कितने ही प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक ही है। तब तो यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि 1909 में दिवंगत होने वाले ईसुरी जैसे अपने युग के प्रगतिशील एवं सर्वहारा यशस्वी कवि जिसके साथ अनायास यह दुर्भाग्य जुड़ गया था कि श्री धीरेपंडा जैसे पगुवारे ने उनकी कुछ श्रृंगारिक फागें "राई" में बेढ़नी के साथ गा दीं। तो भी वह बुन्देली का श्रेष्ठ कवि था जिसे सबसे पहले पहचान कर साहित्यिक माहौल में परचित कराने वाला कोई और नहीं मुंशी जी ही थे। श्री बादल जी ने उनसे प्रेरणा प्राप्त की और यह शोध प्रबंध – *"बुन्देली का फाग साहित्य"* गहरे पैठकर लिखा। उनके अनुसार छतरपुर नरेश ने ईसुरी को छतरपुर राज्य का "राजकवि" बनाना चाहा था। जिसे ईसुरी ने ठुकरा दिया था....... वगैरह (देखिए बुन्देली का फाग साहित्य प्रथम संस्करण पृष्ठ क्र. 287) तो क्या छतरपुर नरेश राजा विश्वनाथ सिंह किसी अनपढ़ या अल्प शिक्षित फगुवारे को "राजकवि" की पदवी देकर राज दरबार में फागों का दंगल कराने के इच्छुक थे? यह बात बिलकुल ही गले नहीं उतरती। इसके लिए ईसुरी का प्रगतिशील एवं सर्वहारा होने का एक और प्रमाण भी मौजूद है कि जिस समय झांसी से मानिकपुर रेल लाइन बिछाई जा रही थी तो लकड़ी के स्लीपर लगाए जाने थे यहाँ साखू की लकड़ी उपलब्ध न थी। विकल्प में महुए के स्लीपर लगाए गए। अंग्रेज साहब बहादुरों का हुक्म और सामन्त खड़े हो गए धड़ाधड़–महुआ कटवाने के लिए। बुन्देलखण्ड में उस समय महुआ ही गरीबों का उदरपोषक प्राकृतिक वृक्ष था। सामन्तों व अंग्रेजों के विरोध में कोई भी नहीं बोल सका। ईसुरी ही यह साहस कर सके और उन्होंने कहा –

"इनपै लगे कुलरियाँ घालन, महुआ मानुस पालन।
इनैं काटवो ना चइयत ते, काट देत जे कालन।
ऐसे रूख भूंख के लाने, लगवा दए नंदलालन।
जे कर देत नई सी ईसुर, मरी मराई खालन।।

क्या यह पंक्तियां राई के फड़ पर गाने को ईसुरी ने लिखी थी? नहीं। तब भला ऐसा प्रगतिशील एवं सर्वहारा कवि भला छतरपुर राज दरबार में जाकर राजा विश्वनाथ सिंह का यशोगान कर सकता था? नहीं। इसीलिए उन्होंने यह वैभवशाली पद ठुकरा कर संघर्षशील जीवन ही स्वीकार किया। उनकी प्रत्येक रचना में आम आदमी की पीड़ा प्रत्यक्ष दिखाई देती है। ईसुरी के व्यक्तित्व अथवा जीवनी को उनकी रचनाओं में स्पष्ट देखा जा सकता है। स्व. मुंशी अजमेरी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने उसे न केवल देखा वरन साहित्य की कसौटी पर परखा और खरा पाया। पता नहीं ऐसे प्रगतिवादी जनकवि बुन्देली के यशस्वी एवं महान शिल्पी को क्यों और किस आधार पर उन तथाकथित ईसुरी के अन्वेषकों ने चाहे वह बाबू कृष्णानंद गुप्त हों या अन्य कोई, इन विद्वानों ने अनपढ़ और फगुवारा निरूपित कर दिया? जबकि स्व. मुंशी अजमेरी जी सन् 1920 के लगभग निश्चय ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने ईसुरी की रचनाओं को शिष्ट साहितय की कसौटी पर रखा और उन्हें भारतीय शास्त्रीय संगीत की राग-रागनियों में उपशास्त्रीय संगीत के दादरा अंग में गाकर यही सिद्व किया कि ईसुरी बुन्देली के जयदेव हैं, कालीदास हैं, भवभूति हैं, कबीर और तुलसी ही नहीं प्रगतिवादी विचारधारा के सर्वहारा कवि हैं, अनपढ़ पगुवारे नहीं। मात्र श्यामसुन्दर बादल को ही नहीं न जाने किस-किस को प्रेरणा नहीं दी उन्होंने कि वह ईसुरी पर शेध कार्य करें। यहां तक कि गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर तक को उन्होंने रागवद्ध ईसुरी की फागें गाकर सुनाई और बुन्देली से उन्हें परचित कराया था।

जिस समय राष्ट्रकवि गुप्त जी को काशी में उनके अमर काव्य "साकेत" पर मंगला प्रसाद पारितोषक दिया गया तब ओरछेश वीरसिंह जू देव (द्वितीय) को वहां अध्यक्षता हेतु उन्होंने आमंत्रित करवाया था और मुख्य अतिथि के रूप में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी पधारे थे, जिनके करकमलों से गुप्त जी को वह पारितोषक प्रदान किया गया था। वहाँ देश के चोटी के साहित्यकारों का जमघट था। सूरसागर के प्रथम संपादक श्री जगन्नाथदास रत्नाकर भी वहाँ मौजूद थे। चर्चा चल पड़ी कि हिन्दी साहित्य में कौन सी भाषा सर्वाधिक सरस एवं माधुर्यपूर्ण है? सभी शीर्षस्थ हस्ताक्षरों ने एकमत होकर "ब्रजभाषा" की बात कही तब मुंशी अजमेरी जी आगे आए और ईशुरी को उद्धत करते हुए बुन्देली के पक्ष में अपनी बात रखी उनके तर्क सुनकर जब ब्रजभाषा का पलड़ा हलका पड़ने लगा तो श्री रत्नाकर जी ने उनसे कहा — यदि आपके आश्रयदाता नरेश बुन्देला न होते तो भी क्या आप यही मत रखते? तो स्वयं महाराजा वीरसिंह जू देव ने कहा — मुंशी जी आश्रयदाता वाश्रयदाता की पर्वाह कभी नहीं करते, वे मुझे भी खरी खोटी सुनादेने में कभी नहीं चूकते।

इसके बाद एक बार पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने पत्र — "विशाल भारत" में छाप दिया कि "..... हम उनके (मुंशीजी) इस दावे को नहीं मानते कि बुन्देलखण्ड के ग्राम्यगीत ही सर्वोच्य हैं..... इत्यादि" तो इसे पढ़कर मुंशीजी ने खण्डवा प्रवास से दिनांक 4 मई 1934 को उन्हें पत्र में लिखा — *"हाँ हाल के वि.भा. में जो आपने लिखा कि हम उनके इस दावे को नहीं मानते कि बुन्देलखण्ड के ग्राम्यगीत ही सर्वोच्य हैं इत्यादि। तो महाराज मैने तो ऐसा दावा कभी नहीं किया। मैंने वह बुन्देलखण्डी और ब्रजभाषा का जो मुकाबला किया था, सो आप भूल गए? खैर, फिर भी देखा जाएगा...।"* तात्पर्य यह कि बुन्देली की ऐसी जबरदस्त वकालात करने वाला मुंशी जी के पहले कोई अन्य नाम दिखाई नहीं देता। यह भी सच है कि ब्रज क्षेत्र के रहने वाले पं. बनारसीदास चतुर्वेदी मुंशी जी के उस मुकाबले को जीवन पर्यन्त नहीं भूल पाए, उसका प्रमाण यह है कि जब 1937, मई में मुंशी जी दिवंगत हो गए, उसके बाद अक्टूबर 1937, में जब महाराजा वीरसिंह जू देव के विशेष आग्रह पर चतुर्वेदी जी कलकत्ते से "विशाल भारत" का संपादकत्व छोड़कर कुण्डेश्वर आकर रहे और वहाँ से "मधुकर" पाक्षिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया जो चौथे ही अंक में 16 नवम्बर 1940 को उन्होंने "बुन्देलखण्डी रसिकता" शीर्षक से एक संपादकीय लेख प्रकाशित किया। जिसमें मुंशीजी द्वारा वर्षों पूर्व ब्रजभाषा और बुन्देली के मुकाबले को सोदाहरण उद्धत करते हुए लिखा *"..... चूँकि वे बुन्देलखण्डी थे इसलिए जान बूझकर हमारे जैसे ब्रजवासियों को चिढ़ाने के लिए ब्रज के घोर घासलेटी रसियों का पारायण करते थे और साथ में ईसुरी की सर्वोत्तम फागों का। वाक्पटुता में उनके मुकाबले ठहरना यदि असम्भव नहीं, तो अत्यन्त कठिन अवश्य था.... इसके बाद मुंशी जी एक के बाद एक रसियों तथा फागों की झड़ी लगा देते और ऐसा प्रतीत होता कि एक बार इन्द्र ने ब्रज पर फिर कोप किया। बिचारे ब्रजवासी को याद आ जाती कुंवरकन्हैया की और किसी सत्यनारायण की, जो मुंशीजी से उनकी रक्षा करता......।"* (मधुकर वर्ष — 1 अंक 4 दिनांक 16 नवम्बर 1940 पृष्ठ क्र. 25) यह कुछ थोड़े से उद्धरण इस बात के प्रमाण हैं कि बुन्देली को हिन्दी साहित्य के मंच पर स्थापित करने वाले भगीरथ स्व. मुंशी अजमेरी "प्रेम ही थे। शेष लोग उनके पीछे बहुत बाद में आए।

मात्र इतना ही नहीं, मुंशी जी ने उस युग में भी जबकि उर्दू शायरी की तुलना में हिन्दी कविता लोकप्रिय नहीं थी तब वे हिन्दी साहित्य के लिए भी आगे आए थे। पं. पद्मसिंह शर्मा के शब्दों में "........जो लोग हिन्दी कविता नहीं समझते हैं वह भी मुंशी जी के काव्यात्मक गुणों की मुक्त कंठ से गद्‌गद् हो प्रशंसा करते देखे गए हैं। गत मार्च (1929 ई.) में मेरठ जिले में असोड़े के सुप्रसिद्ध देश भक्त रईस श्रीयुत चौधरी रघुवीर नारायण सिंह जी की पौत्री के विवाह में मुंशी जी भी आमंत्रित थे। बारात बिहार प्रांत से गई थी। दोनों ओर से बड़े-बड़े प्रतिष्ठित पुरुषों का समूह जुटा था, जिनमें मेरठ और देहली के नए-पुराने ढंग से रईस भी थे, जिन्हें हिन्दी कविता से अनुराग तो क्या परिचय भी न था। मुशायरे और कवि सम्मेलन की भी आयोजना थी। वहाँ उर्दू-कविता के रसिया भी मुंशी जी के हिन्दी काव्य की सिरधुन कर तारीफ करने लगे थे कि हिन्दी-कविता में भी इतना माधुर्य है, यह हमें आज ही मालूम हुआ। बंगाल और दूसरे अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में जहाँ शिक्षित समुदाय में हिन्दी साहित्य का प्रचार अभीष्ट है, वहां के लिए मुंशी जी सर्वोच्च हिन्दी-साहित्य प्रचारक प्रमाणित हो सकते हैं। हिन्दी संस्थाओं को उनसे लाभ उठाना चाहिए।......"

1929 में लिखे और "विशाल भारत" जैसी उन दिनों की सर्वोच्च हिन्दी-पत्रिका में प्रकाशित पं. पद्मसिंह शर्मा के इन विचारों को पढ़कर यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि मुंशी जी ऐसे युग में क्रियाशील थे, जब हिन्दी कविता उठकर खड़ी होना सीख रही थी और मुंशी जी अपनी उंगली पकड़ाकर उसे चलना सिखा रहे थे। ऐसे समय में जहाँ हिन्दी खड़ी बोली के पोषण में वे सक्रिय थे तो उसके साथ-साथ मध्ययुगीन हिन्दी की पर्याय ब्रजभाषा की सहोदरा "बुन्देली" को भी लोक साहित्य और बोली के सीमित घेरे से बाहर निकालकर उसे हिन्दी-साहित्य में मध्ययुगीन हिन्दी की साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित करने का भी कार्य उन्होंने अपने हाथ में सबसे पहले ले लिया था। बुन्देली के पक्ष में जोरदार बहसें तो बहुत चर्चित हो गई थीं। ब्रजभाषा की लालित्यपूर्ण पदावली की तुलना में ईसुरी की श्रेष्ठता सिद्ध करते थे। स्वयं भी बुन्देली में श्रेष्ठ कविताएं लिखी थीं मुंशी जी ने। पं. बनारसी दास चतुर्वेदी को खण्डवा से लिखे जिसे 4 मई 1934 के पत्र की ऊपर चर्चा की गई उसी पत्र में यह भी लिखा गया था कि "......घर छोड़े सवा महीना हो गया। इन्दौर, सीतामऊ, उज्जैन महूछावनी होता हुआ यहाँ पहुँचा हूँ। यहाँ प्रिय पं. माखनलाल चतुर्वेदी बहुत ही प्रेम पूर्वक मिले। उन्हीं के यहाँ ठहरा हुआ हूँ। अभी सीतामऊ में एक गीत बुन्देलखण्डी में बनाया था, उसे यहाँ इन चतुर्वेदी जी को सुनाया, सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। अपनी आंख की पुतली में प्रिय के दर्शन करने का भाव उन्हें बहुत पसन्द आया। मैंने यह भाव कहीं देखा नहीं है मेरी समझ में यह मेरी अपनी ही सूझ है। अस्तु, उस गीत को इस पत्र के साथ सेवा में भेज रहा हूँ। यदि आपको पसन्द हो तो विशाल भारत में दे दीजिएगा...... ।" यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि उस समय हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु मुंशी जी जहाँ लम्बे-लम्बे प्रवास पर रहते थे तो बुन्देली कविता को भी विशाल भारत जैसे प्रतिष्ठित पत्र में प्रकाशन की पहल करते थे। बुन्देली कविता देवनागरी लिपि में तो लिखते ही थे। परन्तु कुछ उच्चारणों के लिए संगीतलिपि जैसे नोटेशन चिन्हों का प्रयोग भी करते थे। ह्रस्व और दीर्घ का मध्यवर्ती उच्चारण हेतु दीर्घ में भी हलन्त का प्रयोग था। देखिये 1934 में लिखा वह बुन्देलीगीत "नेंनाँ" -

"हो रए दरस दिमाने नें नाँ, समजाएँ समजें नाँ।
भोरइकें कंऔ कालों कैसें, राखै कोउ दिन - रैनाँ?
तरफत जार-परी मछरी से, परत न पल-छिन चैनाँ।
परखत आपपुतरिया अपनी, ऐंगर करकें-ऐनाँ।
पलक-पुतरियँन बीच बसत वे, जौ बिसास विसरैनाँ।
पुतरी परखत अँसुवा उमड़त, फिर काँ ऐनाँ-मेंनाँ?
दरसन होंन देत नँइ दुसमन, रोकें तनक रुकें नां।
ऐसेंइ तरसत रै हैं जौलों, पद-पंकज परसेंनाँ।
लाख लोब दै कोऊ ललचावै, अबजे अन्त लगें नाँ।।

जिस समय हिन्दी खड़ी बोली घुटरुओं चलना सीख रही थी उस समय बुन्देली में यह स्तरीय कविता भी लिखी जा रही थी। बुन्देली में आज के कवियों की भांति इसमें अनपढ़ गमैंयों द्वारा बोली जाने वाली ठेठ बोली नहीं, वरन बुन्देली की साहित्यिक भाषा का निखार एवं भावपक्ष देखते ही बनता है। महाकवि कालिदास ने मेघदूतम् में लिखा -

"त्वामालिख्य प्रणय कुपितां धातु रागै शिलायामात्मानं ते चरण पतितं यावदिच्वामि कर्तुम।
अस्तैस्तावन्मुहूरुपा चितैदृष्टिरालुप्यते में क्रूरस्तास्मिन्नापि न सहतेसंगममं ना कृतान्तः।

(उत्तरमेघ 42)

परन्तु मुंशी जी की पंक्ति- *"पुतरी परखत अंसुवा उमड़त, फिर काँ ऐना-मेंना।"* का भाव यहाँ कालिदास से भी आगे जा पहुंचा है। बुन्देली का ऐसा सशक्त एवं जीवन्त कवि ईसुरी के बाद जब खोजा जावेगा तो माला में सुमेरु की भांति पहला नाम मुंशी जी का ही आएगा। ऐसी परिनिष्ठित साहित्यक बुन्देली से विमुख हो आज जो बुन्देली के कथित कवियों की भीड़ है वह बुन्देली कविता के भगीरथ को नहीं पहचानते? तो इससे बड़ा आश्चर्य क्या हो सकता है? नेंनाँ जैसे बुन्देली गीत के

साढ़े छः दशक बाद भी क्या बुन्देली कविता में ऐसे उत्कृष्ट भाव, परिनिष्ठित भाषा देखने को मिली? कहने को बड़े–बड़े दिग्गजों के नाम हमारे समक्ष हैं परन्तु सन् 1934 में लिखी इस कविता और उसकी भाषा की ओर एक भी कवि उन्मुख नहीं हुआ। सभी लोग क्षेत्रीय प्रभावों से चिपके रहकर अपनी–अपनी ढपली और अपना–अपना राग अलाप रहे हैं। बुन्देलखण्ड कोई एक नगर एक गाँव या एक जिला मात्र नहीं है। वह तो यमुना से लेकर नर्मदा तक और चम्बल से लेकर टोंस नदी तक फैला एक विशाल भू–भाग है जिसकी साहित्यिक भाषा बुन्देली अति क्षेत्रीय प्रभावों की चाश्नी में नहीं पगाई जा सकती। हमें बुन्देली का ऐसा रूप निखारना ही होगा जो समूचे बुन्देलखण्ड का प्रतिनिधित्व करे और बुन्देली माटी की सोंधी सुगन्ध से अपूरित हो। ऐसी बुन्देली कविता ईसुरी के बाद अगर कहीं मिलेगी तो वह इकलौता नाम स्व. मुंशी अजमेरी ''प्रेम'' का है। ''नैंनाँ'' की ही तरह उनकी अन्य बुन्देली रचनाएँ – बुन्देलखण्ड वन्दना (गान), तुलसी, चाहनाँ, सरद चांदनी, होरी, जेवनार, श्यामगारी, रामगारी, विरह.......... आदिक शीर्षकों से लिखी गई अनेक हैं जिन्हें खोजना होगा और बुन्देली की आगत पीढ़ी के लिए उसे आदर्श के रूप में परोसना होगा। आश्चर्य की बात है कि मुशी अजमेरी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की बात को गोण करके उनके नाम की पूंछ पकड़कर हम अब तक भ्रामक चर्चाएं ही करते रहे कि वे मुंशीजी क्यों थे? क्या वे कायस्थ थे? तो वे अजमेरी क्यों थे? वगैरह। जबकि उनकी उपादेयता से हम एकदम अनभिज्ञ हैं। उनके बारे में उरई के श्री राममोहन शर्मा ने सटीक लिखा है कि –

''बने नींव–पाषाण, शिवालय–कलश बनाने वाले,
प्रतिफल चाहा नहीं, रहे सर्वस्व लुटाने वाले।
ब्रम्हा से मुंशी अजमेरी का शत–शत अभिनन्दन –
काव्य गगन में सूर्य–मैथिलीशरण उगाने वाले।

डॉ. हरवंशराय बच्चन हों या राममोहन शर्मा उनके इस प्रकार के कथनों को पढ़कर प्रायः पाठक और भी भ्रामक स्थिति में पहुँच जाते हैं कि मुंशी अजमेरी कोई दीनहीन व्यक्ति रहे होंगे जिनको प्रकृतिदत्त प्रतिभा प्राप्त रही होगी और श्री गुप्त जी एक धनाढ्य सेठ के पुत्र थे अतः उन्होंने उनका शोषण किया और मुंशीजी मानो पेट की खातिर मजबूरी में जान बूझकर शोषित होते रहे.. वगैरह। जबकि सच्चाई यही है कि मुंशीजी काव्य की डिंगल और पिंगल परम्परा में शास्त्रों का गहन अध्ययन करके आगे आए और अपने प्रचलित नाम को बुन्देली अर्थ में सार्थक किया – '' अज + मेरी'' अर्थात ब्रम्हा के मित्र यानी कि ''शिव'' यही उनका स्वरूप था। जिस प्रकार से शिव की परिभाषा राष्ट्रकवि गुप्त जी के शब्दों में है कि –

''दनुज रुधिर से, मनुज दुग्ध से, अमर सुधा से जीते हैं,
किन्तु हलाहल भवसागर का शिवशंकर ही पीते हैं।''

तो मुंशीजी ने भी अमृत दूसरों के लिए छोड़कर स्वयं विष रूपी खारा पानी ही आजीवन स्वीकार किया। 26 मई 1937 की सांझ वेला में जब उन्होंने महाप्रयाण को वरण किया तो जाते–जाते उन्होंने गुप्त जी का नाम लेकर पुकारा और पीने को पानी मांगा, उनके हाथ से पानी पीकर वे सिधार गये। विह्वल होकर तब ''उच्छ्वास'' शीर्षक से राष्ट्रकवि के मुख से यह शब्द फूट पड़े थे –

''.... देश–काल का मेल मिलाकर,
आज मृत्यु तक अमृत पिलाकर,
मांगा भी क्या होंठ हिलाकर,
हा! यह खारा पानी?
ओ मेरे अभिमानी।...''

निश्चय ही देश–काल का मेल मिलाने वाले ''समन्वयक'' जिसे अंग्रेजी में ''को–आर्डिनेटर'' कहते हैं वहीं हिन्दी साहित्य में स्व. मुंशी जी थे। जिनके कुशल को–आर्डिनेशन में आज की हिन्दी कविता आगे बढ़ी। तभी तो प्रथम वीरसिंह जू देव पुरस्कार विजेता पं. दुलारेलाल भार्गव ने राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त की स्वर्णजयंती के अवसर पर अपने पत्र – ''सुधा'' के अक्टूबर 1936 के अंक में प्रकाशित किया था कि –

''अजर–अमर अजमेरी हों, हुआ, न है कोई ऐसा,
दिया राष्ट्रकवि तुमने हमको, श्री मैथिलीशरण जैसा।''

इससे साबित होता है कि द्विवेदी युग का सूर्योदय कराने में वे कितने सफल सिद्ध हुए। (भले ही यह तथ्य प्रकाश में न आया हो।) बुन्देली को एक साहित्यिक भाषा के रूप में सम्मानजनक रूप में स्थापित कराने का कार्य वे असमय यानि कि मात्र 55 वर्ष की आयु में सिधार जाने के कारण पूरा नहीं कर सके। कहा जाता है कि उन्होंने उस समय बुन्देली शब्दकोष का सम्पादन कार्य भी प्रारंभ किया था जो अधूरा रह गया था। यदि वे कुछ समय और जीवित रहे होते तो निश्चय ही बुन्देली आज एक साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित हो चुकी होती। जब भी कोई शोधकर्ता बुन्देली–साहित्य की विकासयात्रा की पर्तें खोलेगा तो यह बुन्देली काव्यगंगा का भगीरथ स्व. मुंशी अजमेरी ''प्रेम'' को ही पाएगा। वे सृष्टा, दृष्टा, तो थे ही अनूठे समन्वयक और दिग्दर्शक भी थे। ऐसे मनीषी के प्रति शत्–शत् श्रद्धांजली।

– कुण्डेश्वर, जिला टीकमगढ़ □

'लोरी' – लोकगीतों की कस्तूरी

– गोमती प्रसाद विकल

बच्चों को सुलाने–सुलझाने के लिए स्त्रियों के द्वारा गाया जाने वाला लोकगीत लोरी है। स्त्रियों की अनेक भूमिकाएं होती हैं, माता, बहन, बुआ, दादी, नानी, मामी आदि–आदि, स्त्री की इन्हीं भूमिकाओं में लोरी गायी जाती है। स्त्री की एक और भूमिका है – 'पत्नी'। पत्नी की भूमिका में लोरी गायन का निषेध है। पत्नी के केन्द्र में प्रणय–भाव है जबकि लोरी का अन्तर्गत रस 'बाल्य' है। कवीन्द्र रवीन्द्र के शब्दों में –

"हमारे अलंकार शास्त्रों में नौ रसों का उल्लेख है। पर लोरियों में जो रस प्राप्त है वह शास्त्रोक्त रसों के अन्तर्गत नहीं है। अभी–अभी जोती जमीन से जो गन्ध निकलती है, या शिशु के नवनीत कोमल देह से स्नेह को उबाल देने वाली गन्ध है, उसे फूल, चन्दन, गुलाब, जल, इत्र व धूप की सुगन्ध के साथ एक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। सभी सुगन्धों के मुकाबले में उसमें एक अपूर्व आदिमता है। उसी प्रकार लोरियों में एक आदिम सुकुमारता है। जिसकी मधुरता को 'बाल्य' रस नाम दिया जा सकता है।"

'बाल्य' रस लोरी की प्राण–धार है। लोरी लोकगीतों की स्निग्ध मुस्कान है। लोरी मातृत्व की सहजात रागिनी है। आदिम माँ के शब्द–लय की लाड़ली है। भाषा और भाव उत्पत्ति के साथ लोरी की उत्पत्ति को परिभाषित किया गया है। किन्तु भाषा की उत्पत्ति के पूर्व भी माँ के हृदय मे प्रसव का सुकुमार भाव मौजूद होता है जिसे गूँगी माँ अपने भीतर गुनगुनाती है। लोक भले ही इसे लोरी न कहें पर मातृत्व तो इसे स्वीकारता है।

मातृत्व स्त्री का अन्यतम रूप है। स्त्री–जीवन का सर्वाधिक श्रेष्ठ और सार्थक समय प्रथम गर्भकाल का तीसरा माह होता है। गर्भकाल का प्रथम माह अनिश्चिय का होता है। दूसरे माह में मातृत्वबोध का ऊहापोह रहता है। असन्न संकट और सुख की अनुभूतियों की धमा चौकड़ी मची रहती है। वधू–मन में कौख की रेखाएँ कुड़मुड़ाती हैं। तीसरे माह तक बधु–मन मातृत्व को स्वीकारता है। अपने हृदयाकाश में इन्द्र धनुषी स्वप्न उतारता है। स्त्री–जीवन में ऐसा बहुमूल्य काल एक ही बार आता है – वह है प्रथम गर्भकाल का तीसरा माह। कालान्तर के गर्भकाल सामान्य होते हैं।

लोरी के उत्पत्ति की जमीन और जलवायु आदिम माँ के प्रथम गर्भकाल का यही तीसरा महीना है। जिसमें क्वारी संवेदना का सिन्दूरी स्पर्श होता है। कोमल भाव और उर्वशी लय का मधु मिलन रहता है। रति का सात्विक अभिसार और आंचल की उजली धार का आलिंगन अठखेलियाँ करता है।

लोरी में मंत्र–सा सम्मोहन होता है। भौतिक जगत गुरुत्व बल से अनुशासित है। चेतन–सत्य मंत्र शक्ति से अनुशासित होता है। किन्तु प्राण–तत्व लोरी की लय पर थिरकता है। लोरी मातृत्व का पुष्टतम अनुशासन है। आत्म ही नहीं ब्रह्म भी लोरी के वात्सल्य बंधन से बंधा है। साध्वी अनसुइया माँ ने त्रिदेवों को शिशु बनाकर पालने में डाल दिया था। माता यशोदा की लोरी सुनकर ब्रह्म कन्हैया पालने में झूलने लगा। सूरदास ने इस वास्तव को भलीभांति पहचाना है –

यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलराबै दुलराय मल्हावै।।
जोय–सोय कुछु गावै।
मोरे लालका आब निदरिया।।
काहे न आनि सुलाबै।"

मातृत्व–बन्धन में बंधकर कृष्ण कैसा कौतूहल करते हैं। माँ भाव विह्वल है। पुत्र का पालना हिलाती–डुलाती है, जो कुछ मन में उमड़ता है गुनगुनाती है। 'जोय–सोय' कुछ गाती है। बालकृष्ण की पलकें ढप जाती है। यदाकदा अधर हिल उठते हैं। बाल्य रस का अनूठा परिपाक इस मनोहर झांकी से छलता है।

लोरी माँ के प्यार की डोरी है। लोकगीतों की कस्तूरी है। नारी मनकी सारी ममता शिशु को सुलाने में घनीभूत हो जाती है। दुनिया भले राग–द्वेष की ज्वाला में जल कर भस्म हो जाये पर माँ का लाड़ला सुख की नींद सोये कुछ ऐसे ही भाव अवधी लोरी में मुखरित हैं –

"आउ रे चिरइया बन, झँझिया लगाइ जा
तोरी झाँझी आगी लागइ
भइया खेलाइ जा, सोबाइ जा"

(अरी चिड़िया आ.......... वन में अपना घोसला बनाओ। तुम्हारे घोंसले में आग लगे, किन्तु मेरे मुन्ने को सुलाजाओ, खिला जाओ।) बघेली लोरी की अपनी अलग अर्थ छटा है–

"आउ रे निदिया तइ आउते नही
लाला का हमरे सोबउतेनही।"
"आउ रे चिरइया तैं परवना कुलाउ।
तोरे पेटै आगी लागइ लाला का सोबाउ।"

(चिड़िया तुम अपना पंख कड़कड़ा कर आओ। अरी चिड़िया तुम तो अपनी भूख मिटाने में लगी हो। तुम्हारी भूख को आग लगे पहले मेरे मुन्ने को सुलाओ।)

– 16/726, उर्रहट, रीवा (म.प्र.)

"जा तरां सनकुआ कौ हाल है"

– डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव

विन्ध्याचल पर्वत के उत्तरी छोर पर सेंवढ़ा (दतिया) के निकट सिंध नदी ने एक मनोरम जल प्रपात की रचना की है, यह प्रपात सनकुआ के नाम से मशहूर है। सनकुआ नामकरण का आधार प्राचीन और पौराणिक है। सिंध के इस सुरम्य प्राकृति स्थल पर ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों – सनक, सनन्दन, सनातन और सनतकुमार की तपस्या की थी। सनकानीक सम्प्रदाय का वह गढ़ रहा है। इन्हीं कारणों से कालान्तर में इसे सनत्कूप या सनकुआ नाम से पुकारा गया है।

पद्मपुराण के द्वितीय अध्याय में *"सनकादि क्षेत्र"* का वर्णन किया गया है। वह सनकादि क्षेत्र यह सनकुआ ही है। पद्मपुराण के अनुसार विन्ध्याचल की यह श्रृंखला शुण्ड पर्वत कहलाती थी। सनकुआ के उत्तर में 4 कि.मी. पर *"नारदा"* स्थान देवऋषि नारद की तपस्या का स्थान है। इस मान्यता की पुष्टि पद्मपुराण के निम्न श्लोक से होती है –

"शुण्डस्य चोत्तरे भागे नारदस्तपतेऽधुना।"

तात्पर्य यह है कि जिस समय सनकादि ऋषि सनकुआ पर तपस्यारत् थे और सनत्कूपों की रचना कर रहे थे। उसी समय शुण्ड पर्वत के उत्तर में नारद मुनि तप कर रहे थे। सनत्कुमारों द्वारा खोदे गये कूपों में जब जल नहीं निकला तो उनका मन अशांत हो उठा। उस समय नारद मुनि ने उन्हें शुण्ड पर्वत के उस शांत क्षेत्र में स्थित शुण्डकाश्रम में तप करने का उपदेश दिया –

"शुण्डस्य निश्रृतौ देशे शुण्डिकाश्रम गोचरम्।
स्थलम् पुष्पफलैर्युक्तं प्रशान्त श्वापदावृतं।
भवद्भिस्तप्यतां तत्र येन क्रोधस्तु शान्तिगः।।"

सनत्कुमारों ने यहाँ तपस्या की और सिंधु सरिता का आह्वान किया। ऋषियों के आह्वान पर सिंध इस क्षेत्र में आई और सनत्कुमारों द्वारा खोदे गए कूपों को भरती हुई आगे बढ़ गई –

"सिंधुनाम्नी नदी चान्द्रेपुरे चोत्तरे वाहिनी।
साहूता ब्राह्मणैस्तत्र नाम शान्त्या उपावृणु।।
साऽऽगता घन घोषेण धृता तैर्मस्तके ततः।
ऋषीणां मनसः शान्तिर्जाता सिंधुमथा ब्रुवन।।"

पद्मपुराण के इन वर्णनों से भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि सेंवढ़ा के निकट प्रवाहित होने वाली सिंधु नदी पुराण कालीन है। विन्ध्याचल के इस उत्तरी छोर पर शुण्डपर्वत की तलहटी के उस पार नारद की तपस्या का क्षेत्र था और इस ओर सनकादि ऋषियों की तपस्थली सनकुआ। सनकुआ नामकरण वास्तव में सनत्कुमारों द्वारा खोदे गये कूपों के कारण ही हुआ। पहले इसका नाम सनत्कूप रहा होगा, बाद में सनकुआ कहा गया। पद्मपुराण के द्वितीय अध्याय की कथा *"सनकादि क्षेत्र"* वर्णन का हिन्दी काव्यानुवाद सेंवढ़ा के सुप्रसिद्ध कवि स्व. श्री हरिहर प्रसाद "हरिकेश" ने *"सिंधु महात्म्य"* शीर्षक से किया और उस पुस्तिका को प्रकाशित भी कराया।

समकालीन साहित्य के अध्येता और विचारक श्री राधारमण वैध ने सनकुआ की व्युत्पत्ति *"सनानीक कुलाय"* से मानी है। जैसा कि भरकुआ "भारकुलाय" से व्युत्पन्न अनुमाना गया है।" सनकानीक पद दो शब्दों से मिलकर बना है – *"सनक" "अनीक"*। अनीक शब्द सनक सम्प्रदाय के ऋषियों के शस्त्र ज्ञान की ओर इंगित करता है। ये साधु कोरे तपस्वी ही नहीं थे, वरन् शस्त्र सुसज्जित अनीक–सेना के साथ इस पूरे क्षेत्र की रक्षा भी करते थे। श्री राधारमण वैध ने सनादिक ऋषियों की गुरु परम्परा को आदि आचार्य हंस और नारद से प्रारम्भ हुई, मानी है। हंस सम्प्रदाय में राधाकृष्ण की युगल मूर्ति को प्रेमाभक्ति का प्रतीक माना गया है। आद्याचार्य हंस ने इसका उपदेश देवर्षि नारद को दिया। देवर्षि नारद ने सनकादि ऋषियों को इस भक्ति का ज्ञान कराया तथा सनकादि ऋषियों से यह गुरु परम्परा निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यों तक निरन्तर रही और राधाकृष्ण की यह भक्ति परम्परा बृज क्षेत्र में तथा देश के अन्य अनेक भागों में आज भी सुरक्षित है।

उपलब्ध अभिलेखों के अनुसार सनकुआ का मेला सर्वप्रथम सेंवढ़ा नरेश पृथ्वीसिंह "रसनिधि" ने सम्वत् 1790 विक्रमी में प्रारम्भ किया था। फिर यह प्रतिवर्ष लगता रहा।

रीतिकालीन कवि पद्माकर के वंशज गदाधर भट्ट ने *'किन्नरगढ़ जनतोत्सव'* काव्य रचना में अनेक स्थानों पर *'सनत्कूपोत्सव'* शब्द का प्रयोग किया। इससे स्पष्ट होता है कि यहाँ पर होने वाला धार्मिक और सांस्कृतिक उत्सव प्राचीनकाल में सनत्कूपोत्सव नाम से भी मनाया जाता रहा होगा। जब सनकादि ऋषि तपस्यारत् थे और खोदे गए सनत्कूपों को तृप्त करती हुई सिंधु सरिता यहाँ अनुपम जल प्रपात निर्मित कर आगे को प्रवाहित हुई होगी तभी से इस दैवी और प्राकृतिक वरदान–सनकुआ की ओर जनमानस अभिभूत हुआ होगा और पहले पहल मानव मन का आनन्द

उत्स किस रूप में प्रस्फुटित हुआ होगा। इसका आज केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। यह सनत्कूपोत्सव धीरे-धीरे, जनतोत्सव में बदल गया जैसा कि गदाधर भट्ट ने वर्णन किया है।

बुन्देला राजा पारीछत ने इसे जनतोत्सव-जनता के उत्सव का रूप प्रदान किया। "किन्नरगढ़ जनतोत्सव" में सनकुआ पर लगने वाले मेले और उसमें मनाये जाने वाले उत्सवों का भव्य वर्णन है। आज यहाँ लगने वाले मेले का जो रूप हम देखते हैं, उसकी तुलना में उस प्रचार-प्रसार और यातायात सुविधा विहीन युग में कहीं बड़े स्तर का मेला होता था। वर्तमान में सनकुआ मेले में कश्मीर, कर्नाटक और गुजरात के व्यापारियों के आने की कल्पना भी नहीं की जा सकती पर उस जमाने में इन प्रदेशों के व्यापारी अपना कीमती माल यहाँ लाते थे। आज असुरक्षा की भावना बढ़ी है और दूरदराज के दुकानदार जोखिम उठाने में डरते हैं।

पिछले दिनों प्राचीन पाण्डुलिपियों के अन्वेषण के क्रम में हम लोगों को इन्दुरखी के गौर राजवंश के श्री पुत्तूसिंह गौर से एक पाण्डुलिपि के कुछ पन्ने प्राप्त हुए। इन पन्नों में सनकुआ के सम्बन्ध में कतिपय महत्वपूर्ण सूचनाएँ सुरक्षित हैं। पाण्डुलिपि के लेखक ने बड़े मनोमन्थन के साथ ये विवरण सुने और फिर लिखे होंगे। सेंवढ़ा नरेश पृथ्वीसिंह 'रसनिधि' ने तपस्थली सनकुआ पर भागवत् कथा श्रवण की। उस कथा का वह अंश यहाँ ज्यों का त्यों उद्धृत किया जा रहा है जिसका सम्बन्ध सनकुआ से है –

"सनकुआ कौ हाल जातरां हैं कै ब्रह्मांड पुरान में जिकर है कै त्रेता जुग के अन्त पै एक समै दुरभाषा रिष ब्रह्म लोक में गये सो ब्रिह्मा के पास जात हते सो सनकादिक नें रोको तब दुरभाषा नें श्राप दई सनकादिक नें पूछी कै रिष जू श्राप मोचन कहैं तब रिष नें कही विंदाचल परवत बौहत बढ़ौ तब सूरज दब गये सो अन्धकार लोक में हो गयो तब देवतन ने अगस्त रिष सें कही कै तुमारौ चेला विंदाचल है सो तुम विंदाचल कौं समझाऔ तब इहाँ सेंवड़े के पास विंदाचल कौ मुख है सो इहाँ अगस्त आये सोई अगस्त रिष कों देख कें कही कै गुरू जू तुम कहाँ आये औ विंदाचल ने नैंहुरि कै रिष के चरन छिये सोई अगस्त रिष ने कही कै ऐसे ही नैहुरे बने रहौ जौनों हम उत्तर तैं मुरकैं फेर अगस्त रिष जा रास्ता नहीं कड़े न विंदाचल उठो गुरू की आग्या मान कैं वैसौ ही बैठो रहि गयौ सो दुरभाषा रिष ने जौ कथा सनकादिक सौं कही कै इहाँ विंधाचल कौ मुख है यातैं जौ घाट उत्तिम है सो जा मुकाम पै तुम तपस्या करौ एक हजार बरस तब श्राप मोचन हू है तब इहां सनकादिक ने तपस्या करी तासों सनकुआ नाम भयौ और नदी सैंद जहां भयें चारऊ जुगन की बहत है और नदी पै जे मठ सन्यासिन के हैं ते कलजुग में बने हैं सम्वत् विक्रमाजीत 1414 की साल में और नदी पै जे राजन के मकान बने हैं ते प्रथीसींग राजारानी के चौंतरा सम्वत् 1805 के माह वदी 8 कौं बने हैं और बहादुर जू कौ मठ सम्वत् 1815 में बनौ है और राजा नाराइन जू कौ चौंतरा सम्वत् 1819 में बनौ है और दिमान अमानसिंघ कौ चौंतरा सम्वत् 1886 के असाढ़ में वदी 14 कौं बनौ है और श्री राजा प्रथीसींग जू देव ने जौ महातम सुनकें सनकुआ कौ मेला लगायौ सम्वत् 1790 और मदारी कौ ताल मदारी लाल साह अगरवारे ने राजा के हुकुम सौं मुसाफरन के निस्तार कौं सम्वत् 1797 में बनवायौ है और जिंदपीर कौ मकान सम्वत् 1431 में बनौ है जिंदपीर औलिया फकीर करामात वारे हैं सो जा मकान पै मरे सोई दरगाह बनी और बरखुरदार कौ मकान सम्वत् 1771 में लगदुआ के घोसिन ने मार डारे सोई उनकौ मकान बनवायौ सरकार ने और किले में जो नन्दनन्दन जू कौ दिवालौ है सो राजा प्रथीसींग जू देव ने सम्वत् 1785 की साल में बनवायौ जातरां सेंउड़े कौ हाल है और सेंहुड़े कौ किलौ पुरानों सम्वत् 1511 में कातिक सुदी तीज कौं पमारन ने बनवायौ"

पाण्डुलिपि में अंकित सूचनाओं के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि सनकुआ पौराणिक महत्व का तीर्थ स्थल है। इसका नामकरण सनकादि ऋषियों के नाम पर हुआ है। यहाँ पर विन्ध्याचल पर्वत का मुख है। अगस्त्य ऋषि ने यहीं पर विन्ध्याचल को झुके रहने का आदेश दिया था। इस विवरण में सेंवढ़ा के ऐतिहासिक स्थानों के निर्माण की जो तिथियाँ दी गई हैं उनमें राजा-रानी के चौंतरा, नन्दनन्दन मंदिर, जिंदपीर, बरखुरदार आदि प्रमुख स्थानों के निर्माण की तिथियाँ इतिहास की दृष्टि से प्रामाणिक प्रतीत होती है। यदि किसी अन्वेषक विद्वान के पास इस सम्बन्ध में कोई अन्य लिखित अभिलेख प्रमाण रूप में उपलब्ध हो तो वह उसे लेखबद्ध करके भ्रांतियों के निराकरण में सहयोग प्रदान करें। ऐसी अपेक्षा है।

– अनन्य कॉलोनी, सेंवढ़ा, जिला दतिया □

लोक गायकी : लेद

– डॉ. लोकेन्द्र सिंह नाग

इतिहास :

संगीत के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर यह बात सामने आती है कि शास्त्रीय संगीत का उद्‌भव लोक जीवन के लोक गीतों से हुआ। गंधार प्रदेश के गायक गन्धर्व कहलाये। लोक संगीत से शास्त्रीय संगीत का उद्‌भव ईसा की पांचवी सदी में हुआ। शास्त्रीय संगीत का उत्कर्ष काल हमें अकबर का शासनकाल है जब दरबार में नवरत्नों के दर्शन होते हैं। जब बेहट (ग्वालियर) के मकरन्द पांडे के पुत्र तानसेन पांडे, ग्वालियर के बैजूवावरा, तोम–तानी (गुर्जर बहन बालायें), ओरछा की रायप्रवीन आदि के नाम गौरव से लिये जाते हैं। इस एक हजार वर्ष के काल में शास्त्रीय संगीत ने उस परा–पराकाष्ठा को प्राप्त कर लिया था। तानसेन ने दीपक राग गाकर अग्नि प्रज्ज्वलित कर अपने आप को जला लिया था – वहीं तोम–तानी गुर्जर बालाओं ने मल्हार राग गाकर तानसेन के प्राणों की रक्षा की थी। कहते तो यहाँ तक हैं कि तानसेन के पुत्र विलास खाँ ने राजदरबार ने उत्तराधिकार पाने के लिये गायकी सत्ता पर मृत तानसेन के तन से अट्टहास करवा दिया था। इस देश ने अनगिनत संगीतकारों को जन्म दिया – इस देश की धरा से इन्द्रलोक भी निस्तेज–सा लगा है।

घराने :

शास्त्रीय संगीत की साधना के चलते क्षेत्रीय भावना ने बल पकड़ा और साधकों की गायन शैली में भिन्नता आई। महान गायकों ने अपने–अपने ढंग से स्वर–ताल, मीड़–मुर्कियों, आलाप बदले। इस बदलाव के कारण अलग–अलग घरों से घराने बने – बनारस घराना, दिल्ली घराना, जयपुर घराना, आगरा घराना, ग्वालियर घराना, रायगढ़ घराना, रामपुर घराना, डागर घराना आदि। अपने–अपने घरानों की ललक ने गवैयों को नये–नये स्वर–तालों को नये ढंग से प्रस्तुत करने हेतु प्रोत्साहित किया। इस समय के राजघरानों ने इस प्रवृत्ति की सामर्थ्य भर बल, सम्मान दिया। संगीत ही नहीं राजाश्रय में कविता, साहित्य, कला, इतिहास, मल्लविद्या, आयुर्वेद आदि को भी भरपूर प्रोत्साहन किया गया है।

लेद की उत्पत्ति :

घरानों की ललक ने दतिया के संगीतकारों को दतिया घराना नाम के शास्त्रीय संगीत को स्थापित करने के लिए नया सोच दिया। इसी सोच को स्थापित करने के लिए दतिया राजदरबार संगीतज्ञ कमला प्रसाद ने लेद गायकी को जन्म दिया। इनके साथ इनके अनुज कालका प्रसाद पखवजी एवं ललन्जू सारंगी वादक थे। इन तीनों के प्रयासों ने लेद को शास्त्रीय स्वरूप दिया और लेद को 'दतिया घराना की लेद' के नाम से स्थापित कर दिया। पूर्व दतिया राज्य के दतिया नरेश श्रीमन्त भवानी सिंह जू देव (1857–1907) के कार्यकाल में लेद अपने चरम उत्कर्ष पर पहुंची। पूर्व समथर (शमशेरगढ़) राज्य, झांसी, टीकमगढ़, पन्ना, ग्वालियर राज्यों में लेद ने धूम मचा रखी थी। लेद गायकी के सुप्रसिद्ध ध्रुपद गायक जानकी प्रसाद रावत, गंगा प्रसाद पाठक, उस्ताद मन्नूलाल, उस्ताद पन्ने, घन्नू उस्ताद, बाबू खाँ उस्ताद, पंडित हरि प्रसाद अवस्थी, नारायण लाल भट्ट, रामसेवक विलगैंयां इसके साथ ही उस्ताद जाफर खाँ, प्यारे खाँ, रज्जू खाँ, भीखन खाँ, दाऊ लालाराम, रामसेवक, सक्काबाई, के नाम भी उल्लेखनीय हैं। समथर राज्य में मास्टर रघुवर दयाल जी (जसौदी), गौसू मास्टर (जसौदी), मुलू मास्टर (ढीमर), संगीतकार गोविन्द तुकाराम भात कुलीकर के नाम लेद गायकी में सम्मान से लिये जाते हैं। वहीं झांसी के जनाब आदिल खाँ साहब का नाम कौन नहीं जानता? वे ऐसे एकल गवैये थे कि लेद के गाते समय ऐसा लगता था मानो जमी–आसमां के कुलावे मिला दिये हों।

अभी दतिया में लेद गायकी के दो दैदीप्यमान नक्षत्र श्री दौलतसिंह जी बुन्देला एवं पं. श्री महेश कुमार जी मिश्र 'मधुकर' हैं, जो दतिया घराने की लेद को जीवन दिये हैं – इस पाश्चात्यता के हड़कम्पी दौर में नई पीढ़ी से जुड़ रहे हैं, उन्हें कुछ देने हेतु संघर्ष कर रहे हैं। पं. श्री मधुकर जी संगीतज्ञ के साथ–साथ कवि एवं इतिहास जीवी योद्धा के रूप में स्थापित हैं। मैंने लेद पर कुछ लिखने से पूर्व विद्वान द्वय से मार्गदर्शन लिया है उनका ऋणी हूँ।

लेद गायकी :

लेद का शाब्दिक अर्थ झुकाव से है जैसे मेरुदण्ड में झुकाव आ जाये चाहे वह मानव का हो, पशु का उसे लेद ही कहते हैं। आप कह सकते हैं इससे गायकी का क्या सम्बन्ध? सम्बन्ध है। गायकी का हर राग का अपना स्वर–ताल हैं। जैसे कमला प्रसाद जी के एकांकि ध्रुपद–धमार गाते–गाते उसके स्वभाव के प्रतिकूल स्वर को अति कोमलता देकर और सुन्दरता और माधुर्य प्रदान कर दिया और तबला एवं सारंगी पर संगत कर रहे कालका प्रसाद और

ललन्जू अचकचा गये। इस अचकचाहट को कमला प्रसाद जी भी समझ गये उन्होंने गायन बन्द करके विद्वान द्वय से विचार विमर्श किया और फिर इसी गायकी को ख्याल और ठुमरी में भी प्रयोग किया। इस ध्रुपद, ख्याल और ठुमरी को मिलाकर स्वरों को कोमलता प्रदान की गई। गायन में इसी कोमलता का झुकाव को लेद कहते हैं। इसे राजदरबार में प्रस्तुत किया गया गुणज्ञों द्वारा इसकी बड़ी सराहना की गई। इस प्रकार लेद ने शास्त्रीय संगीत में अपना स्थाई स्थान बनाया। इस गायकी को ही दतिया घराना का नाम दिया गया। लेद को दतिया घराना के नाम से ही जाना जाता है और इसी राग से प्रसिद्ध है।

लेद काल रस :

लेद का मौसम बसन्त है होली के समानान्तर गाई जाती है। इसका रस श्रृंगार है वैसे लेद में संयोग–वियोग के साथ–साथ अन्य रसों का भी प्रयोग किया गया है। लेद के कई प्रकार हैं – शास्त्रीय लेद, झूला की लेद, लोक गायकी लेद आदि। लेद को गहराई से परखने के लिये किसी गुणज्ञ संगीतकार की आवश्यकता है। जो संगीत की बारीकियों से समझे और इसे लोकजीवी बनाये रखने के लिये शोध प्रबन्ध लिखें या कोई शास्त्रीय पुस्तक का स्वरूप प्रदान कर सकें तब लेद को और अच्छी तरह समझा जा सकेगा।

– गोविन्द निवास, दतिया □

बुन्देलखण्ड की धार्मिक परम्परा में प्रतीकों की रचना और प्रयोग

– डॉ. जयप्रकाश शाक्य

बुन्देलखण्ड की धार्मिक परम्परा में धार्मिक प्रतीकों का केन्द्रीय स्थान है। यहां की लोकसंस्कृति में धार्मिक परम्परायें रची बसी हैं। बुन्देली संस्कृति धार्मिक उत्सवों, तीज–त्यौहारों, व्रतों तथा मेलों की संस्कृति है। यहां की ध ार्मिक जनता में गनगौर का पूजन, नवदुर्गा पूजन, हरदौल का पूजन, अछरूमाता का पूजन, महालक्ष्मी –हाथी पूजा, सावित्री व्रत, वन–देवी, वन–देवता की पूजा, कुनघुंसू, सावन तीज, नागपंचमी, नवमी पूजन, हरितालिका व्रत, ऋषि पंचमी, संतान सप्तमी, अनन्त चतुर्दशी, करमदिन (पितृपक्ष) मामुलिया, नवरात्रि, सुअटा, दशहरा, दीपावली, भाई दौज, देवत्थानी, एकादशी, वैकुण्ठ चतुर्दशी, संकटा चतुर्दशी, मार्ग स्नान, मकर संक्रांति, भमरात, बड़े गणेश, सरस्वतीपूजन, शिवरात्रि, बरूलापांचे, होली इत्यादि का धार्मिक एवं सांस्कृति प्रभाव देखा जा सकता है। बुन्देलखण्ड की धार्मिक परम्परा में रामभक्ति, कृष्ण भक्ति, शिव भक्ति विष्णु भक्ति, शक्ति पूजा, सूर्योपासना, प्रकृति के विभिन्न तत्वों की पूजा, वृक्षों, पशु–पक्षियों की पूजा के अतिरिक्त लोक परम्परा में प्रचलित देवी–देवताओं के पूजन को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। बुन्देलखण्ड में हिन्दुओं के अतिरिक्त जैन, इस्लाम, ईसाई, सिख आदि धार्मिक परम्पराओं का प्रभाव है। बौद्ध धर्म मृतप्राय है। मूलतः हिन्दू और जैन संस्कृति का व्यापक प्रभाव इस क्षेत्र में है। धर्म यहां के जीवन में रचा बसा है। धर्मसंस्कृति का प्राणतत्व है।

"धार्मिक भावना अन्तरात्मा की पुकार है। धर्म आदर्शो का अवलम्बन चाहता है और साथ ही मर्यादाओं के अनुबंधों का संकल्पपूर्वक प्रतिपादन भी। धर्म जीवन का संविधान है जो व्यक्ति के व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक कर्तव्यों की व्याख्या करके कर्तव्य पालन के लिए प्रेरित करता है"[1] "धर्म में धार्मिक प्रतीकों का केन्द्रीय स्थान है। धर्म विषयक अनुभूतियों या विचारों की अभिव्यक्ति का प्रभावशील माध्यम प्रतीक है। धार्मिक प्रतीकों की रचना और प्रयोग मानव धार्मिक ज्ञान और धार्मिक चेतना के प्रारंभ से ही करता आया है। ऋषि मुनि, संत, महात्माओं ने अपने जीवन की साधना तथा आध्यात्मिक अनुभवों को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है।"[2] धार्मिक प्रतीकों की रचना और प्रयोग सभी देश कालों में अति प्राचीन काल से होता आया है। बुन्देलखण्ड में भी धार्मिक प्रतीकों की रचना और प्रयोग बुन्देली संस्कृति के प्रारम्भिक काल से ही लोकजीवन में प्रचलित रहे हैं।

प्रतीक शब्द दो शब्दों के योग से बना है प्रति+इक, प्रति का अर्थ अपनी ओर तथा इक का अर्थ झुका हुआ है अर्थात, अव्यक्त को अपनी ओर से व्यक्त करना प्रतीक है। प्रतीक शब्द को साहित्यकारों, दार्शनिकों एवं मनोवैज्ञानिकों ने अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया है। श्री परिपूर्णानंद वर्मा का कहना है कि "प्रतीकवाद धर्म की पौराणिकता का दार्शनिक विवेचन है।"[3] एडवर्ड स्पीयर मानते हैं कि "प्रतीक में बड़ी व्यापक शक्ति को संकलित कर संक्षिप्त रूप दे दिया जाता है।"[4] डॉ. पद्मा अग्रवाल मानती हैं कि "प्रतीकों में सोचना मनुष्य की बुद्धि की विशेषता है।"[5] वे यह भी स्वीकार करती है कि "हर एक प्रतीक के एक से अधिक अर्थ होते हैं।"[6]

"हर एक प्रतीक का अपना संचरणशील तथा शक्तिशाली अर्थ होता है[7] और अपने निजी वातावरण तथा परिस्थिति से उत्पन्न होता है।"[8] पी. गार्डनर की मान्यता है कि "प्रतीक उसे कहते हैं, जो देखने या सुनने में किसी विचार, भावना या अनुभव को व्यक्त करता है, जो केवल बुद्धि या कल्पना से ग्राहय हो, उसकी ऐसी ब्याख्या कर देना कि आंख के सामने आ जाये।"[9] श्री परिपूर्णानन्द वर्मा लिखते हैं "प्रतीक मन तथा बुद्धि की वस्तु है। प्रतीक उस चिरन्तन सत्य का प्रतीक है। प्रतीक से परमात्मा का बोध होता है।"[10] धार्मिक ज्ञान सदैव प्रतीकात्मक होता है। गेडेन का मानना है कि "प्रतीकोपासना का लक्ष्य होता है कि ऊँचे की उपासना तथा स्थान प्राप्त करना।"[11] डॉ. राधाकृष्णन् लिखते हैं कि "यथार्थ प्रतीक कोई स्वप्न या छाया नहीं है वह अनन्त का जीवन्त साक्षात्कार है।"[12] सिजु का कहना है कि "ऋषियों ने इन प्रतीकों की अपने अनुभव से रचना की है।"[13] यह निर्विवाद सत्य है कि मनुष्य ने धार्मिक ज्ञान, पूजा, प्रार्थना, आराधना, अर्चना, भक्ति तथा धार्मिक विधि–विधान में अगणित धार्मिक प्रतीकों की रचना की और उनका प्रयोग किया। धार्मिक प्रतीकों की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि एक तो प्रतीकों की ओट लेने से धर्मबाधा टल जाती है और दूसरे उनके उपयोग से उन बातों की अभिव्यक्ति भी खूब हो जाती है जिनके निदर्शन में वाणी असमर्थ या मूक होती है। "प्रतीक सभ्यता की सबसे बड़ी देन है।"[14] स्पीयर यहां तक मानते हैं कि "हर सभ्यता और संस्कृति प्रतीकों से ओत–प्रोत होती है, निजी व्यवहार भी, व्यक्तिगत व्यवहार भी प्रतीक से ओत–प्रोत होते हैं।"[15] मानव सदा से ही प्रतीकों का प्रयोग करता आया है।

धार्मिक प्रतीकों का प्रयोजन उसकी ओर संकेत करता है जो सीमातीत है। धार्मिक अनुभवों को ऋषियों ने मंत्र, तंत्र, यंत्र के रूप में व्यक्त किया है। चीन के प्राचीन धर्मग्रंथ भाषा में न होकर प्रतीकों में थे, चीन के नैतिक विधान के आधार भी यही प्रतीक थे, जिनमें 64 षठकोणों तथा 384 माओं अर्थात् वे पंक्तियां जिनसे षट्कोण बनते हैं।"[16] कुछ विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि ईश्वर संबंधी प्रतीक ही धार्मिक है। जबकि अधिकांश विद्वान यह मानते हैं कि पूजा, प्रार्थना, साधना, आराधना, उपासना, यंत्र, मंत्र, तंत्र, हवन, जप, तप इत्यादि सभी धार्मिक क्रियायें धार्मिक प्रतीकों में ही है। उपासना में काम आने वाले प्रतीक पांच प्रकार के होते हैं – वर्ण प्रतीक, अंक प्रतीक, चक्र प्रतीक, मुद्रा प्रतीक तथा पूजा प्रतीक। वर्ण प्रतीकों का प्रयोग अक्षरों को मंत्रों के रूप में स्थापित करके किया गया है जैसे परमेश्वर की तीन शक्तियां हैं – अनुंतर इच्छा और उन्मेष। अनुन्तर का "अ" इच्छा का "इ" उन्मेष का "उ" ये तीन वर्ण ही "ऊँ" है।"[18] भारतीय ऋषियों व मनीषियों ने "ऊँ" को परमब्रह्म का श्रेष्ठतम प्रतीक माना है। बुन्देली धार्मिक परम्परा में "ऊँ" का प्रयोग प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में ही नहीं बल्कि "ऊँ" का प्रयोग साधारण लेखक से लेकर महानतम् लेखकों ने अपने लेखन के प्रारंभ में किया है। प्रत्येक मंत्र ऊँ से शुरू होता है। अंक प्रतीकों का प्रयोग भी शुभकार्य विशेषकर लाभदायी कार्य के लिये पूरे बुन्देलखण्ड में किया जाता है। शून्य को ब्रम्ह का प्रतीक, एक को परम सत् का प्रतीक, दो जीव व ब्रह्म के लिए, तीन अंकों, को तीन शक्तियों ब्रह्मा, विष्णु और महेश के लिए प्रयोग किया गया। संभवतः संसार की समस्त भाषाओं में तीन के अंक का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। त्रिदेव, त्रिमूर्ति, तापत्रय, जैनों के त्रिरत्न, बौद्धों के रत्नत्रय, त्रिकाल, त्रिवेणी, त्रिधारा, त्रिशूल का उल्लेख बुन्देलखण्ड की धार्मिक परम्परा में खूब देखने को मिलता है। चार वर्ण, चार आश्रम, चारधाम, चतुरानन ब्रह्मा, चौक, चतुष्पदी, चौकड़िया आदि बुन्देली संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं। धार्मिक मान्यताओं में पंचमहाभूत, पंचतमात्राएं, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेद्रियां, पंचमकार, पंचपितृ, पंचमहाव्रत, पंचपल्लव, पंचवटी, पंचकन्या, पंचकोशों एवं पंच परमेश्वर आदि का प्रतीकात्मक प्रयोग यहां होता है। छः अंक के लिए षटकोणों द्वारा रेखांकन स्त्रियां करती हैं। सात समुद्र, सप्तऋषि तथा अष्ट छाप, अष्ट द्रव्यों का प्रयोग धार्मिक विधानों में एवं नवदुर्गा नवग्रह नवमी नवनिधि की नौ अंक के लिए प्रतीकात्मक अभिव्यंजना बुन्देली धार्मिक परम्पराओं में देखी जा सकती है। दस संख्या के लिए दशानन वध के रूप में दशहरा का धार्मिक आयोजन बुन्देलखण्ड में जगह–जगह देखा जा सकता है। अस्तु "अंकों से प्रतीक बनते हैं। मंत्र अंक से सहायता प्राप्त करते हैं।"

बुन्देलखण्ड की धार्मिक परम्परा में चक्र प्रतीकों का भी प्रयोग जैन मूर्तियों, हिन्दू मूर्तियों तथा बौद्ध मूर्तियों में किया गया है। मानव शरीर में सात चक्रों की कल्पना सात अंगों में की गई है जो क्रमशः गुदा में मूलाधार चक्र, लिंगमूल में स्वाधिष्ठान चक्र, नाभि में माणिपूर चक्र, हृदय में अनाहत चक्र, कण्ठ में विशुद्ध चक्र, भूमध्य में आज्ञाचक्र, मस्तिष्क में सहस्त्रार चक्र माने गये हैं जिनमें क्रमशः गणेश, ब्रह्मा, सावित्री, विष्णु, लक्ष्मी, शिव–शक्ति, जीव, ज्योति तथा सदाशिव का प्रतीकात्मक निवास माना गया है। बुन्देलखण्ड की धार्मिक मूर्तियों एवं धार्मिक साहित्य में इनका विस्तृत विवेचन देखने को मिलता है।

"शिव और शक्ति का प्रतीक बिन्दु माना जाता है। बिन्दु अविभक्तं होता है, जब मूल बिन्दु विभक्त होता है तो उससे त्रिकोण बनता है। परमबिन्दु शिव और त्रिकोण शक्ति का प्रतीक है। त्रिकोण से लेकर अनेक कोणात्मक यंत्र भगवान शिव के आधार हैं।[19] बुन्देलखण्ड में शिवभक्ति प्राचीन काल से ही रही है। खजुराहो के कन्दरिया महादेव मन्दिर, महादेव मन्दिर, विश्वनाथ मन्दिर, मृतंग मन्दिर, महोबा का नीलकण्ठ मन्दिर, ककरमठ मन्दिर, जतकरी का शिवमन्दिर, दौनी का शिव मन्दिर, जटाशंकर धाम, कुण्डेश्वर आदि शिव भक्ति के प्रमाण हैं। हजारों शिवलिंगों की पूजा शिव भक्ति के आधार बने हुए हैं। शिव का प्रतीकात्मक अंकल लिंग के रूप में हुआ है। सृष्टि का प्रतीक बीज है।"[20] शंख, चक्र, पद्म आदि धारण किये हुए विष्णु के उपासना केन्द्र भी बुन्देलखण्ड में कम नहीं है। खजुराहो का चतुर्भुज मन्दिर, वराह मन्दिर, वामन मन्दिर, जबरा मन्दिर, गदाधर मन्दिर, लक्ष्मीनाथ मन्दिर, जतकरी का चतुर्भुज मन्दिर, महोबा का मदनी मन्दिर, गौड़ का विष्णु मन्दिर तथा बिलहरिया का विष्णु मन्दिर उपासना के केन्द्र हैं, इन मन्दिरों में भी चक्र भी देखने को मिलते हैं। सौन्दर्यलहरी के अनुसार श्री चक्र नियत चक्र अर्थात समूची सृष्टि का प्रतीक श्री चक्र है। श्री यंत्र को परा शक्ति का प्रतीक माना गया है।"[21] बुन्देली धार्मिक परम्परा और मूर्तियों में मुद्रा प्रतीकों की भरमार है। उपनिषद में कहा गया है " देवता विशेष प्रीतिजन्निका अंगुली रचना मुद्रा" अर्थात् देवताओं की विशेष प्रसन्नता के लिए विशेष प्रकार की अंगुली रचना को मुद्रा कहा जाता है। नृत्य की शुरुआत मन्दिरों में देवी देवताओं के सामने इसी उद्देश्य से हुई। आज भी पूरे बुन्देलखण्ड में धार्मिक त्यौहारों में लोकनृत्य देखे जा सकते हैं। भक्ति और सौन्दर्य के रूपांकन में मूद्राओं का उपयोग निर्मित मूर्तियों में देखा जा सकता है। चौथी शताब्दी के बाद शरीर की विशेष अवस्था व आकृति को मुद्रा कहा जाने लगा। जैसे – अंकुश मुद्रा, अभयमुद्रा, कुम्भमुद्रा, वरमुद्रा, महामुद्रा आदि। घेरण्ड संहिता में 25 मुद्राओं का उल्लेख किया गया है। योग, भक्ति और

तंत्र साधना में विभिन्न मुद्राओं को साधना में प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति माना गया है।

पूजा प्रतीक की तो बुन्देलखण्ड में भरमार है। पूजा प्रतीकों में पूजा में प्रयुक्त वस्तुएं एवं पूजा के आराध्य दोनों ही प्रतीकात्मक होते हैं। हिन्दुओं में ब्रह्मा, विष्णु और महेश को क्रमशः उत्पत्ति, पालक एवं संहारक शक्तियों का प्रतीक माना गया है। सरस्वती को विद्या का प्रतीक, लक्ष्मी को सम्पदा और वैभव का प्रतीक, पार्वती को शक्ति का प्रतीक माना गया है। सूर्य को प्राणीमात्र की रक्षा के नियमों का प्रतीक माना गया है। विष्णु पूजा में भगवान विष्णु को साक्षात् परमब्रह्म का प्रतीक माना जाता है। विष्णु की मूर्ति में कौस्तुभमणि– निर्लेप निर्मल आत्मा का प्रतीक माना गया है। गदा बुद्धि का प्रतीक, शंख और शार्ड.धनुष तामस और राजस अहंकार के प्रतीक हैं। चक्र सात्विक अहंकार का, कमल सृष्टि का प्रतीक है। शिव उपासना में शिवलिंग पर जल चढ़ना सृष्टि–सर्जन का प्रतीक है, त्रिशूल शांति, वैराग्य और बोध का प्रतीक है। तांत्रिकों ने त्रिशूल को परा, अपरा और पराडपरा तीनों का प्रतीक माना है।[22] नीलकंठ पक्षी को शिव का प्रतीक माना गया है। नंदी को धर्म और नाद का प्रतीक माना है।

पूजा प्रतीकों में सर्वाधिक प्रयोग, त्रिकोणों, षठकोणों से देवी–देवताओं का आव्हान कर उन्हें प्रसन्न करने के लिए तंत्रों (रेखाचित्र या चौक) की रचना की जाती है। तंत्रों के अतिरिक्त सर्वाधिक प्रचलित प्रतीक स्वास्तिक चिन्ह है। हलायुध कोश में "स्वास्तिक को चौबिस चिन्हों में से एक विशेष चिन्ह माना गया है।"[23] इसी ग्रंथ में स्वास्तिक का अर्थ चतुष्पद या चौराहा बताया गया है। यजुर्वेद के अनुसार "सूर्यमण्डल के चारों ओर चार विद्युत केन्द्र हैं जिनमें पूर्व में वृद्धश्रवा इन्द्र, पश्चिम में पूषाविश्ववेदा इन्द्र, उत्तर में स्ताक्षप अरिष्टनेमि इन्द्र और दक्षिण में बृहस्पति इन्द्र हैं। इन चारों से घिरे, स्थान का नाम वेदों में कल्याणवाची स्वास्तिक मण्डल माना गया है।"[24] पं. रामचन्द्र शास्त्री वझे ने स्वास्तिक को प्रतीक मानते हुए लिखा है कि "स्वास्तिक कमल का पूर्व रूप है।"[25] ऐसा माना जाता है कि भगवान विष्णु के वक्षस्थल पर विराजमान कौस्तुभमणि स्वास्तिकाकार है। "गणपति के उपासक स्वास्तिक को बिन्दु रूप मानते हैं।"[26] बुन्देलखण्ड की धार्मिक परम्परा में, व्रत त्यौहार उत्सवों तथा धार्मिक विधि विधानों में स्वास्तिक का प्रयोग अनिवार्य रूप से होता है।

बुन्देलखण्ड की पूजा पद्धतियों में प्राकृतिक प्रतीकों की बहुतायत है। सूर्य को जीवन रक्षा का प्रतीक माना गया तो चन्द्रमा को शीतलता और शाश्वतता का प्रतीक। पूजा प्रतीकों में "वायु, वरुण और सूर्य का सम्मिलित प्रतीक मंगल कलश माना गया है। संसार के सभी वैभव, सभी देवी–देवता, सभी प्राकृतिक तत्व, कलश में निहित है। केवल कलश के पूजन से सभी का पूजन हो जाता है।"[27] वृक्षों की पूजा सम्पूर्ण विश्व की तरह बुन्देलखण्ड में भी प्रचलित है। यहां हिन्दुओं में नीम, पीपल, वटवृक्ष, तुलसी, बिल्व वृक्ष की विशेष पूजा होती है तो ईसाई क्रिस्मिस ट्री की पूजा करते हैं। नागपंचमी को नागदेवता की पूजा होती है। महालक्ष्मी के दिन हाथी की पूजा होती है। दीपावली के दूसरे दिन गाय–बैल की पूजा भी होती है।

जैनधर्म के चौबीस तीर्थकरों के चौबीस प्रतीक चिन्ह पशु–पक्षी ही है। जिनमें आदिनाथ का वृषभ, अजितनाथ का हाथी, संभवनाथ का घोड़ा, अभिनन्दननाथ का बन्दर, सुमतिनाथ का चकवा, पद्मप्रभु का श्वेतपदम्, सुपार्श्वनाथ का स्वास्तिक, चन्द्रप्रभु का चन्द्रमा, पुष्पदन्त का मगर, शीतलनाथ का कल्पवृक्ष, श्रेयांशनाथ का गेंडा, वासुपूज्य का भैंसा, विमलनाथ का बकरा, अहरनाथ का मच्छ, मल्लिनाथ का कलश, सुव्रतनाथ का कछुआ, नेमिनाथ का लालपद्म, पार्श्वनाथ का सर्प और भगवान महावीर का सिंह प्रतीक चिन्ह है।

देवालय पूजा केन्द्रों के प्रतीक हैं। बुन्देलखण्ड की धार्मिक परम्परा समन्वयवादी है। विभिन्न सम्प्रदायों का यहां प्रचलन रहा और समान रूप से फूले–फले। चन्देल युग में स्मार्त पूजा का प्रावल्य था। वैष्णव पंचदेवों (विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश) की पूजा करते हैं। विष्णु के अवतारों में वाराह, नृसिंह और राम की पूजा बुन्देलखण्ड में होती है, शैव सम्प्रदाय में धंगदेव ने प्रमथदेव नामक शिव मन्दिर का निर्माण किया और कोक्कल ने वैधनाथ मन्दिर बनवाया।[28] खजुराहो के कन्दरिया महादेव [29] विश्वनाथ [30] मृत्युंजय महादेव[31] नीलकंठ[32] शिव आराधना के केन्द्र हैं। इसके अतिरिक्त महोबा का नीलकंठ मन्दिर [33] कुंवरमठ [34] जतकरी का शिव मन्दिर [35] महोबा का ककरामठ या ककरा मन्दिर [36] दौनी का शिवमन्दिर [37] बुन्देलखण्ड में प्रमुख शिव उपासना के केन्द्र है।

वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी भगवान विष्णु की पूजा करते थे। चंदेल राज्य काल में विष्णु पूजा के साथ–साथ उसके अवतारों की भी पूजा का प्रचार हो चुका था। विष्णुभक्तों ने खजुराहो में देवी जगदम्बी मन्दिर [38] चतुर्भुज मन्दिर [39] वाराह मन्दिर [41] जबरा मन्दिर [42] गदाधर मन्दिर[43] लक्ष्मीनाथ मन्दिर[44] जतकरी का चतुर्भुज मन्दिर[45] महोबा का मदारि मन्दिर[46] गौड़ का विष्णु मन्दिर[47] बिलहरिया का विष्णु मन्दिर[48] बनवाये।

ब्रह्मा की पूजा भी बुन्देलखण्ड में प्रचलित रही। चन्देलकाल में खजुराहो का ब्रह्मा मन्दिर[49] तथा दुधई का ब्रह्मा मन्दिर[50] जो यशोवर्मन के पौत्र कृष्ण के पुत्र देवलब्धि

में बनवाया था। ब्रह्मा की पूजा के प्रमाण हैं।

बुन्देलखण्ड में शक्ति की पूजा की प्रथा प्राचीन काल से ही रही है। शक्ति पूजा के निर्देश मारकण्डेय पुराण में मिलता है।[51]

शक्ति पूजा के लिये खजुराहो का पार्वती मन्दिर[52] लक्ष्मी मन्दिर[53] जगदम्बी मन्दिर[54] दुर्गा मन्दिर[55] चौसठ योगिनी मन्दिर[56] मनियां देवी का मन्दिर, मैहर की शारदा देवी का मन्दिर[57] रसिन का चण्ड माहेश्वरी मन्दिर[58] बनवाये गये हैं। जिनमें, ब्राह्मणी, महेश्वरी, वाराही, इन्द्राणी, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, काली आदि की पूजा का विधान था। यहां नवरात्रि में बोये जाने वाले जवारों की पूजा भी की जाती है।

"बुन्देलखण्ड में प्रचलित जवारों का मेला आदिशक्ति भवानी की मान्यता का प्रतीक है जो इस क्षेत्र में प्राचीन काल से ही शक्तिदायक और सिद्धिदायक उत्सव के रूप में प्रचलित है। नवदुर्गा में जवारे प्रत्येक गांव में बोये जाते हैं।" (बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य – रामचरण हयारण मित्र, पृ. 273)

सूर्य की उपासना विश्व के हरदेश में होती है। श्रीमती मरे ऐसले ने सिद्ध किया कि "संसार के हर कोने में सूर्य उपासना प्रचलित थी।"[59]

सूर्योपासना बुन्देलखण्ड में प्रचलित रही। "बुन्देलखण्ड में कई सूर्य मन्दिर निर्मित हुए जिनमें चित्रगुप्त मन्दिर खजुराहो, उभरो तथा मड़खेरा जिला टीकमगढ़ रहलिया (हमीरपुर) रहली (सागर) आदि सूर्यमन्दिरों का उल्लेख किया जा सकता है।"[60] इसके अतिरिक्त बरुवासागर मन्दिर के पृष्ठभाग में, सप्त अश्वों से खचित रथ पर आरूढ़ सूर्य की मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है। कालपी में भी सूर्य मन्दिर है। सूर्य को प्रकाश का देवता माना गया है।[61]

गणेश पूजा का प्रचलन भी बुन्देलखण्ड में रहा है और आज भी देवगढ़ के दशावतार तथा नाहर घाटी, राजघाटी में सप्तमातृकाओं के गणेश है। नृत्य गणेश की भी प्रतिमायें मिली हैं। पिछले कुछ दशकों से बुन्देलखण्ड में गणेशोत्सव बड़ी धूम–धाम से मनाया जाने लगा है जिसमें हजारों जगह गणेश की प्रतिमायें स्थापित कर पूजा की जाती है। इनके अतिरिक्त अनेक देवी देवताओं की पूजा प्रार्थना समस्त बुन्देलखण्ड में देखी जा सकती हैं "बुन्देलखण्ड की लोक परम्परा में देवी देवताओं जैसे शिव, विष्णु, देवी, गणेश और सूर्य तक उपासना तथा पूजा हिन्दू धार्मिक जीवन की प्रमुख क्रिया बनी।[62] कृष्ण और विष्णु को एक माना जाने लगा। राम को भी विष्णु का अवतार माना गया।"[63] घरों में भी देवी–देवताओं की मूर्तियां रखी जाने लगी थीं।[64] डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त मानते हैं कि "यह सिद्ध हो चुका है कि मूर्तिपूजा और अवतार की कल्पना, द्रविड़ों से वृक्षपूजा और बलि, कोलो से तथा तंत्र मंत्र किरातों से आये हैं। इस जनपद में भक्ति का स्त्रोत गौंड़ों द्वारा प्रवाहित किया गया था।"[65] गौंड़ चंदा, सूरज, भूदेवी, अन्नदेवी, गंगामाई, शारदामाई, शीतलमाई, मरईमाता, रातमाई आदि की पूजा करते थे। "बुन्देलखण्ड में प्रकृतिपरक देवताओं में वृक्ष, भूमि, पर्वत, नदी, पवन, सूर्यचन्द्र, अनिष्टकारी देवताओं में अग्नि, सर्प भूतप्रेत, आंधी, मृत्यु, आदिवासियों के देवता, बड़ा देव, ठाकुरदेव, नारायणदेव, घमसेन देव, स्थल–परक देवताओं में गांव की देवी, खेरमाई, मिडोइया घटोइया, पौंरियाबाबा, जातिपरक देवताओं में कारसदेव, गवालबाबा, गुरैयादेव, मसानबाबा, भियाराने, गौड़बाबा, अति प्राकृतिक देवता – यक्ष, गंधर्व, भूत, राक्षस, दानव, नाग, स्वास्थ्यपरक देवताओं में शीतलामाता, मरईमाता, गंगामाई, समृद्धिपरक देवता – मणिभद्र, कुबेर, लक्ष्मी, नाग, विवाहपरक देवता – दूलादेव, हरदौल, पार्वती, गौरी, गणेश, शक्तिपरक देवता – शिव, दुर्गा, काली, हनुमान, चंडिका, भैरों देव, वरदायी देवता – शिव, इन्द्र, वासु, राम, शारदामाई, दशारानी, कुलदेवता के रूप में गोसाई बाबा, सप्तमातृकायें, खुरदेवबाबा, संतान रक्षक देवता, रक्कस बाबा, बीजासेन, षष्ठी देवी, बेइया माता तथा विघ्नहरण देवता के रूप में गणेश, पितृदेव, संकटादेवी की पूजा होती है।[66]

बुन्देलखण्ड के लोक देवी–देवता सुराती और सुरेता या सुराता है। सुराता और सुराती विष्णु और लक्ष्मी के प्रतीक हैं। रात के मांगलिक समय में चूने या गेरू से पुती दिवाल पर गेरू से सुराती लिखी जाती है। कुछ लोग सुराता भी लिखते हैं। इस लोग चित्र में ज्यामितिक प्रतीकों द्वारा सार्थक और जीवन्त रेखांकन मिलता है। "सुराती में ऊपर के दोनों सिरों पर सूरज–चंदा प्रकाश और जीवन की शाश्वता के प्रतीक हैं। दोनों और के स्वास्तिक कल्याण के बीज में सुराती–सुराता के चित्रों में मुख का चतुर्भुज या वर्ग शुभ फलदायक देवमण्डल का अथवा त्रिभुज शक्ति का तथा देहयष्टि ा घरा या खाने, समृद्धि के भंडार के प्रतीक हैं। सुराती के इस चित्र में एक ओर डबलियों, और दूसरी ओर दिये अंकित होते हैं जो धन–धान्य और ज्ञान के प्रतीक हैं।[67] लक्ष्मी पूजन में, कमल चौक कमलासन का प्रतीक है, पूजन में प्रयुक्त सोना, चांदी और आभूषण, सिक्के रत्नादि धन के, मजीठ अनुराग का, शमी शांति और आत्मसंयम और धन ध ान्य के प्रतीक हैं, पूजा की सामग्री में, हल्दी प्रेम, श्री, सौन्दर्य, अक्षत् कल्याण, दूब धैर्य का, कमल अनुराग का, सिंदूर सौभाग्य का, कमलगट्टा फल का, नारियल त्याग, खील बताशा, मोर कादि भोग के प्रतीक हैं।"[68]

"सुअटा या नौरता" कुमारी कन्याओं द्वारा खेला जाने वाला अनुष्ठानपरक खेल है। जो कि अश्विन शुक्ल प्रतिप्रदा से नौ दिन तक चलता रहता हैं सुअटा के पूजन

का उद्देश्य उन भयंकर ग्रहों से बचाना है जो 16 वर्ष तक के बच्चों को सताते हैं। स्कन्द (कुमार) घोर ग्रहों के समुच्चय के प्रतीक हैं। गौरा–पार्वती वर प्राप्ति और सुहाग की प्रतीक है। स्कन्द पूजा ग्रहों की अनिष्टकारी ग्रहों से रक्षा के प्रतीक हैं। सुअटा की नौ सीढ़ियां नौ दिनी अनुष्ठान की प्रतीक है।[69]

बुन्देलखण्ड के धार्मिक त्यौहार भी प्रतीकात्मक है जैसे संघर्ष और शक्ति का प्रतीक दिवारी, अन्याय पर न्याय की विजय का प्रतीक दशहरा, प्रेम और उल्लस का प्रतीक होली, भाई बहिन के अमरप्रेम का प्रतीक रक्षाबन्धन, शक्ति आराधना के प्रतीक नवरात्रि पूजन, शिवभक्ति का प्रतीक महाशिवरात्रि, नागपूजा का प्रतीक नागपंचमी इत्यादि है।

अंत में, मैं यह दृढ़तापूर्वक स्थापित करना चाहता हूं कि धार्मिक प्रतीकों के बिना धार्मिक विधि विधान एवं धार्मिक ज्ञान असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। प्रतीक धार्मिक चेतना के प्राण हैं, प्रतीक धार्मिक चेतना के मूलाधार है। इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। संपूर्ण बुन्देलखण्ड की धार्मिक परम्परा में वर्ण प्रतीक, अंक प्रतीक, चक्र प्रतीक, मुद्रा प्रतीक तथा पूजा प्रतीकों का प्रचलन था, है और भविष्य में तब तक बना रहेगा जब तक मानव मन में धर्म के प्रति आस्था व विश्वास रहेगा। अस्तु बुन्देलखण्ड की धार्मिक परम्परा में प्रतीकों का केन्द्रीय स्थान है।

संदर्भ सूची

1. धर्म दर्शन की भूमिका –डॉ. जयप्रकाश शाक्य पृ.1
2. धर्म दर्शन की भूमिका –डॉ. जयप्रकाश शाक्य, द्वितीय संस्करण 1995 पृ. 165
3. प्रतीक शास्त्र –श्री परिपूर्णानन्द, पृष्ठ 78
4. Edward Sapir - Artical in Encyclopedia of Social Science "Symbolism" Page 493
5. Science of Symbols - Dr. Ku. Padma Agrawal P.53
6. वही पृ. 57
7. वही पृ. 17
8. वही पृ. 11
9. Encyelopedia of Religion & EThies "Symbolism" Greek and Rome by P.Gardner Page 139
10. प्रतीकशास्त्र – श्री परिपूर्णानन्द वर्मा पृ. 418
11. Encyclopedia of Religion & Ethies Chapter Hindu A.S. Gardner Page 142
12. Religion & Society - Dr. Radhakrishanan Page 48
13. Sprit of Chinese Philosphy - Dr. Fung-Yu-Lan P.89
14. प्रतीकशास्त्र – परिपूर्णानन्द वर्मा पृ. 182
15. Edward Sapir "Symbolism" Encyclo- pedia of Social Science Page 44
16. प्रतीक शास्त्र – श्री परिपूर्णानन्द वर्मा पृ. 45
17. प्रतीक शास्त्र – श्री परिपूर्णानन्द वर्मा पृ. 57–58
18. वही पृष्ठ 242
19. प्रतीक शास्त्र – श्री परिपूर्णानन्द वर्मा पृ. 71–72
20. वही पृ. 76
21. नवधातु रूपो देहो, नवयोनि समुद्भवः। दशमोः योनिरेकैव पराशक्तिस्तदीश्वरी।।
22. प्रतीक शास्त्र – श्री परिपूर्णानन्द वर्मा पृ. 255
23. चतुर्विंशति चिन्हान्तर्गत चिन्ह विशेषः"
24. यास्कीय निरुक्त अध्याय 11 खण्ड 45
25. प्रतीक शास्त्र – श्री परिपूर्णानन्द वर्मा पृ. 22
26. प्रतीक शास्त्र – श्री परिपूर्णानन्द वर्मा पृ. 22
27. वही पृ. 84
28. इपीग्रेफिया इण्डिका भाग 1 पृ. 146–147
29. आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग 2, पृ. 419–20
30. वही पृ. 22–23
31. वही पृ. 427
32. वही पृ. 428
33. वही पृ. 427–28
34. वही पृ. 437
35. चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, डॉ. अयोध्या प्रसाद पाण्डेय पृ. 196
36. वही पृ. 196
37. आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग 7 पृ. 40
38. वही पृ. 421
39. वही पृ. 425
40. वही पृ. 427
41. वही पृ. 429–30
42. चंदेल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास – डॉ. अयोध्या प्रसाद पृ. 198
43. आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग 2 पृ. 436
44. वही भाग 10 पृ. 19–20
45. वही पृ. 22
46. वही भाग 2 पृष्ठ 422
47. वही भाग 21 पृ. 13–14
48. वही. पृ. 19–20
49. वही भाग 21 पृ. 57
50. वही भाग 10 पृ. 93–94
51. मारकण्डेय पुराण 91–410
52. आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग 2 पृ. 425
53. वही भाग 2. पृ. 421
54. आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग 2 पृ. 421
55. वही पृ. 424
56. आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग 2 पृ. 416
57. वही भाग 7 पृ. 51
58. वही भाग 21 पृ. 17
59. Mrs. Murray Aynsley, Symbolism East & West P.99
60. बुन्देलखण्ड का पुरातत्व – डॉ. एस.डी. त्रिवेदी पृ. 51
61. चंदेल और उनका राजत्वकाल – केशवचंद्र मिश्र पृ.208
62. अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो – डॉ. एस.के. मिश्र पृ.188–202
63. वही पृ. 237
64. बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास – डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त पृ. 214
65. वही पृ. 285
66. बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास – डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त पृ. 276
67. वही पृ. 382
68. वही पृ. 383
69. वही पृ. 394

– शास. महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर

बुन्देलखण्ड में जन्मे ब्रजभाषा के कवि

– श्री निवास शुक्ल

बुन्देलखण्ड के ब्रज भाषा के कवियों पर चर्चा करने के पूर्व बुन्देलखण्ड की भौगोलिक सीमाओं का मानचित्र हमारे मन में अंकित हो जाना आवश्यक है। इस दिशा में हमें भूगोल–इतिहास के न तो अधिक पन्ने पलटने की आवश्यकता है और न ही कोई शोध कसरत की। बुन्देलखण्ड की सीमा निर्धारण के लिये यह एक जनोक्ति ही पर्याप्त है–

"इत जमुना, उत नर्मदा, इत चम्बल, उत टौंस।
छत्रसाल सौ लरन की, रही न काहू हौंस।।"

उत्तर दिशा में यमुना, दक्षिण में नर्मदा, पूर्व में टमस और पश्चिम में चम्बल नदियां। इतिहास–पुरुष बुन्देलखण्ड केसरी महाराज छत्रसाल के समय से बुन्देलखण्ड की यही प्रामाणिक और सर्व मान्य सीमायें हैं। इसके अन्तर्गत वर्तमान मध्य प्रदेश के छतरपुर, पन्ना टीकमगढ़ दतिया, सागर, दमोह, जबलपुर, मण्डला, नरसिंहपुर, होशंगाबाद, ग्वालियर, भिण्ड, मुरैना और उत्तर प्रदेश के झांसी, ललितपुर, बांदा हमीरपुर, जालौन जिले आते हैं। इस क्षेत्र की बहु–आयामी साहित्य–परम्पराओं ने गुणवत्ता और प्राचुर्य की दृष्टि से हिन्दी–साहित्य को समृद्ध बनाया है।

ब्रज–भाषा और बुन्देली बोलियां हिन्दी की पश्चिम शाखा की प्रमुख बोलियां है। भाषा–विज्ञान की दृष्टि से इन दोनों की संरचना, प्रकृति और व्यक्तित्व में परस्पर उल्लेखनीय साम्य है। इसीलिये ये परस्पर बहिनें मानी जाती हैं। बुन्देली में ब्रज–भाषा के स्वभाव और प्रभाव का भरपूर संक्रमण हुआ है। भाषाओं या बोलियों के समागम में आदान प्रदान की प्रक्रिया, उनकी गतिशीलता तथा भाषा की यह संक्रमण यात्रा भाषा के स्वीकृति–परक स्वभाव के हेतु पर होती है और यही भाषा की जीवन्तता की परिचायक होती है। बृज भाषा के प्रति बुन्देली के इस आत्मीयता पूर्ण नाते के कारण ब्रज भाषा ने ही समग्र बुन्देलखण्ड की रचना–धार्मिता को विशिष्ट रूप से आर्षित किया है। बुन्देलखण्ड को ब्रजभाषा की प्रकृति और परिवेश भाया है। ब्रज–मण्डल में साहित्य की जब–जब, जिन–जिन परम्पराओं और विधाओं के स्वर ब्रज–भाषा में मुखर हुए हैं, बुन्देलखण्ड ने भी उन स्वरों में अपना स्वर लालित्य मिलाया है। ब्रज भाषा में सरस वर्ण्य–विषयों, काव्य–रूपों तथा रचना–शैलियों की विविध–परम्परायें और प्रवृतियां प्रचलित थीं। प्रायः वे सब की सब बुन्देलखण्ड के ब्रज–भाषा–काव्य में प्रतिध्वनित हुई है। यहां एक ओर भक्ति काव्य की निर्गुण धारा और सगुण धारा ज्ञानाश्रयी–प्रेमाश्रयी, राम–भक्ति कृष्ण–भक्ति सम्बन्धी रचनायें प्रचुर संख्या में उपलब्ध हैं वहीं दूसरी ओर रस–अलंकार, छंद–लक्षण–परक रीति–परम्परा की रचनायें न्यून नहीं हैं। बुन्देलखण्ड के कवियों ने बृजभाषा में वीर–रस प्रधान रचनायें भी की हैं और इस मान्यता को नकार दिया है कि ब्रज भाषा में ओज का अभाव है।

इस क्षेत्र में निर्गुण सगुण भक्ति धारा के कवि सोलहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक हुए है। निर्गुण धारा के कवियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाम है अक्षर अनन्य का, जिनकी रचनाओं में ज्ञानाश्रयी सिद्धान्तों का चरम विकास तथा कलात्मक–सौंदर्य की सफलतापूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। (निर्गुण–भक्ति का प्रथम सिद्धान्त है – निर्गुण–सगुण से परे अनादि अनंत, अनाम, अजात ब्रह्म का नाम–जप, द्वितीय सिद्धान्त आडम्बर–विहीन मानसिक–भक्ति, तृतीय है कर्म–काण्ड की दुरुहताओं से मुक्त प्रेमानुभूति, चतुर्थ और सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त है – ऐसे विश्व–धर्म की साधना जो जाति–वर्ग–वर्णादि भेदातीत प्रकृति में ढल कर समानता के धरातल पर मानव मात्र को विश्वात्मा की अनुभूति कराने में समर्थ हो और पांचवा सिद्धान्त है – सहज–साधना जो सहज आनंद और शांति से संयुक्त, कृतिमता–विहीन शुद्ध अन्तःकरण की अभिनव तथा क्रांतिकारी भक्ति प्रणाली है। अक्षर अनन्य के काव्य में इन पंच–सिद्धान्तों का सुंदर, कलापूर्ण और शास्त्रीय निरुपण हुआ है। ब्रह्मा–विष्णु और रुद्र की एकरूपता का एक नमूना देखिये–

"ब्रह्मा–विष्णु रुद्र तीनों रूप में त्रिगुण भेद
त्रिगुण कौ रूप एक निर्गुण निदान है,
अक्षर अनन्य ज्ञानवंत गति एक लहै
भिन्न भिन्न मानत ते मानत अजान है।"

वे भिन्न उपासना पद्धतियों में कोई भेद नहीं देखते थे–

"जौन पक्षधारी अन्य देवन की निंदा करै
तिनकौ अनन्य भाव कैसे ठहरात है,
एक ही कौ जानै सब एक ही कौ रूप मानें
अक्षर अनन्य सो अनन्यता की बात है"

निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप–निरूपण कितनी सहजता और तरलता से किया है। इन पंक्तियों में –

"व्योम समान अखंडित ईश्वर
जैसोई ऊपर तैसोई नीचें।")

महात्मा अक्षर अनन्य का जन्म सं. 1710 के लगभग ओरछा में कायस्थ कुल में हुआ था। आप सेंवढ़ा राज्य के

नरेश श्री पृथ्वीसिंह रसनिधि के गुरु और बुंदेल केसरी छत्रसाल के समकालीन थे। इनके द्वारा प्रणीत 31 ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है जिनमें से 25 प्राप्त है। (राज योग, विज्ञानयोग, ध्यान–योग, सिद्धान्त–बोध, विवेक दीपिका, ब्रह्म–ज्ञान, अनन्य प्रकाश, उत्तम चरित्र, अनुभव तरंग, प्रेम दीपिका, ज्ञान बोध, ज्ञान–पचासा, देव शक्ति पचीसी, भवानी–स्त्रोत्र, योग–शास्त्र, कविता–संग्रह, विज्ञान–बोध, अंक–बत्तीसी, विवेक–शतक, निरधार–शतक, विवेक–तरंग, वैराग्य– तरंग, उपासना–सार, प्रहलाद–चरित्र, अनन्य–योग, हर– सम्बाद, श्री सरस–मंजावली, योग–शास्त्र, ज्ञान–बोल, ज्ञान–योग और योग–शास्त्र, स्वरोदय अक्षर अनन्य द्वारा प्रणीत काव्य–ग्रन्थ हैं।) इनमें प्रेम–दीपिका वस्तुतः अनन्य है। अनन्य ग्रंथावली के चौदह अध्यायों में से चार नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित किये जा चुके हैं।

अक्षर अनन्य का समग्र काव्य–योग, दर्शन और शास्त्रीयता के अधिष्ठान पर खड़े होने के साथ कबीर जैसे निर्गुण संत कवि के काव्य के समान देश की राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों और प्रवृत्तियों से समन्वित सच्चे अर्थों में युग–बोध सम्पन्न संवेदनशील जन–काव्य है। उनकी काव्य–रचना आध्यात्मिक अनुभूतियों का आकलन मात्र न होकर जीवन के विविध संत्रास, उत्पीड़न और द्विविधाओं को निरस्त करने की दिशा में अचूक परिज्ञान–समाधान की मशाल है। उनकी रचना के केन्द्र–बिन्दु आस्था और विश्वास संस्थापित करने में सक्षम है, वाणी और क्रिया की संगति, आचरण की पवित्रता और लोक–मंगल के पावन श्लोक हैं। उन्होंने अंध–विश्वास और रूढ़ि–ग्रस्त समाज को डांटने फटकारने के बजाय उसको संवेदनशीलता और करुणा की बांह देकर ऐसे समस्त संतापों से उबारने की चेष्टा की है।

ज्ञानाश्रयी शाखा के मूर्धन्य कवि–कबीर के साथ ही अक्षर अनन्य के नाम की गौरव से लिया जा सकता है। जब बुन्देलखण्ड में ब्रज भाषा की सगुण वर्गीय राम और कृष्ण भक्ति काव्य की ओर हम दृष्टिपात करते हैं तो अनेक भास्वर कवियों के नाम उभरते हैं जिनमें उल्लेखनीय हैं महात्मा हरिराम व्यास, केशवदास, जुगल–प्रिया, घासीराम व्यास, दीवान बहादुर कैप्टन चंद्रभानुसिंह आदि।

मध्य काल के वैष्णव–भक्ति–सम्प्रदायों में राधावल्लभ सम्प्रदाय कृष्ण–भक्ति का प्रधान सम्प्रदाय है जिसका प्रवर्तन हित–हरिवंश गोस्वामी ने 1534 ई. में वृंदावन में किया। इस सम्प्रदाय के अनुसार प्रेम ही भक्ति का मूलाधार है। (अनन्त भावों और अनंत रूपों में नित्य क्रीड़ा करने वाला प्रेम ही परात्पर तत्व हैं रस रूप भगवान कृष्ण और राधा एवं परात्पर प्रेम तत्व तात्विक दृष्टि से समान है, इनमें कोई भेद नहीं। इसका उपासना केन्द्र रस है।) इस सम्प्रदाय के प्रबल प्रवक्ता के रूप में महात्मा हरिराम व्यास थे। वे ओरछा नरेश मधुकर शाह के राजगुरू और ब्रज मण्डल के प्रख्यात रसिक भक्त थे। वृंदावन की प्रसिद्ध हरित्रयी हित हरिवंश, हरिराम व्यास और स्वामी हरिदास में से वे एक थे। (वैष्णव भक्तों में व्यास विशाखा सखी के अवतार माने जाते हैं। विशाखा राधा–माधव–मिलन में सहयोग करने वाली राधा की सखी है। उसका स्वभाव प्रेम, ममता, करुणा और वात्सल्य से ओत–प्रोत हैं। ईर्ष्या, छल, कपट से वह कोसों दूर है।) इन्हीं उदात्त गुणों से परिपूर्ण व्यास जी का जीवन रहा है। परम भागवत हरिराम व्यास का जन्म सं. 1567 में ओरछा में हुआ। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे और ओरछा में ब्रज भाषा में माधुर्य–उपासना के कवि थे। व्यास–वाणी, राग–माला, नव–रत्न और स्वधर्म पद्धति इनकी रचनायें हैं। व्यास जी ने राधा–कृष्ण की ललित लीलाओं का वर्णन कोमलकांत पदावली में सरस रूप से किया है।

राम–भक्ति काव्य की श्रेणी में आचार्य केशव का नाम लिया जा सकता है। यद्यपि मुख्य रूप में उनका वर्गीकरण रीति–कालीन–परम्परा में किया जाता है किन्तु रामचंद्रिका जैसे प्रबंध–काव्य के कारण उन्हें इस परिवार में भी रखा गया है। हिन्दी में सूर और तुलसी के बाद यदि अन्य कोई कवि चर्चित हैं तो वह हैं केशवदास। महाकवि केशव का जन्म सं. 1612 में सनाढ्य कुल में हुआ था। (ओरछा की नींव रखने वाले नरेश थे राजा रुद्रप्रताप और रुद्र प्रताप के पुत्र मधुकर शाह। मधुकर शाह के पश्चात उनके पुत्र रामशाह को वृद्धावस्था में राज्यभार मिल सका जिससे उन्होंने अपने अनुज इन्द्रजीत सिंह को राज्य सौंप दिया।) केशवदास इन्द्रजीत सिंहं के राजकवि थे। उनकी रामचंद्रिका, हिन्दी के महाकाव्यों में एक अदभुत और मौलिक प्रयोग है। रस, छंद, अलंकार, पांडित्य के साथ सम्वादपटुता, वर्णन–सौन्दर्य, प्रकृति–चित्रण और चरित्रांकन आदि की दृष्टि से रामचंद्रिका हिन्दी के महाकाव्यों में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाये हुए हैं। (केशव की अन्य रचनायें हैं – वीरसिंह देव चरित, रतन वावनी, जहांगीर जस चंद्रिका, रसिक प्रिया, कवि प्रिया, नख–शिख और विज्ञान–गीता) महाराज इन्द्रजीत सिंह की प्रेयसी प्रवीण राय केशवदास की शिष्या थी और अच्छी कवियित्री भी थी। कहते हैं कविप्रिया की रचना इसी को आलम्बन बना कर की गई।

झांसी जिले के मऊरानीपुर में अनंत चतुर्दशी सं. 1960 को जन्मे एक ऐसे प्रतिभा–मंडित कवि का यहां उल्लेख करना प्रासंगिक होगा जिसने केवल 39 वर्ष की वय पाकर भी अपने कृतित्व से सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड को गौरव प्रदान किया। वह थे पं. घासीराम व्यास। उनके असामान्य व्यक्तित्व में अनेक व्यक्तित्व समाहित थे। वे एक गांधीवादी, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, खड़ी बोली और ब्रज

भाषा के यशस्वी कवि साथ ही उदात्त तथा संवेदनशील मानसिकता की मूर्ति थे। राष्ट्रवादी रचनाओं के साथ उनकी 'श्याम-संदेश' नामक रचना उनके प्रेम-परिपूरित भावुक हृदय की तस्वीर है। वानिगी में दो छंद देखिये – विरह-व्याकुलता, ब्रजांगनायें कलिंदजा-कूल पर बैठी श्याम की सुधियों में डुबकियां ले रही हैं –

कुलकलिदंजा के सुखमूल, वे फूल सी चैत की चांदनी रातें
कुंजन की मन-मोद मयी अभिराम घनी घनश्याम की छातें
प्यास न भूलत गोरस को रस जो रसना तें लहयो रस नातें
हाय हियो दहिवो को रहीं कहिवो कों रहीं वे सनेह की बातें

गोपियां हरि की प्रतीक्षा में थीं और आये ऊधव। उन ऊधव के समक्ष गोपियां अपने व्यथित मन को किस प्रकार उकेलती हैं – देखिये –

फिरि फिरि फेरि फेरि हरि मुख हेरि हेरि
हारी जिय सूखिगो वियोग जरि नैन नीर
प्रेम की पियासी इन ग्वारिन गवांरिन कों
योग उपदेसन पठायो भलो वल वीर
ऊधव जू कैसे कैं दिखावें उर चीर तुम्हें
तब तुम जानते हमारी ये विथा अधीर
हमरो सो हीय होतो हीय में जु नैन होते
नैनन में होतो हीय हीय में जु होती पीर।

जुगल प्रिया नाम से लिखने वाली तत्कालीन छतरपुर राज्य की महारानी इस क्षेत्र की मीरा थी जो अपनी भक्ति भावना और काव्य साधना के लिये प्रसिद्ध हैं।

बुन्देलखण्ड में रीति कालीन-परम्परा के अनेक यशस्वी कवि हुए हैं जिनमें आचार्य केशव दास जी का उल्लेख किया जा चुका है। बिजावर राज्य में सं. 1946 में जन्में श्री बिहारी लाल भट्ट अद्भुत प्रतिभा के धनी थे। बिजावर और टीकमगढ़ राज्य के इस राजकवि ने साहित्य-सागर नामक लक्षण-ग्रंथ लिखकर न केवल काव्य-जगत में अपने आचार्यत्व को स्थायी रूप से अंकित किया अपितु अपनी अनूठी भाव-पूर्ण रचनाओं से जन-मानस को प्रभावित भी किया। साथ ही ब्रज-साहित्य-कोष को समृद्ध किया। वे इस क्षेत्र के अति लोकप्रिय कवि हैं। उन्होंने 32 काव्य ग्रंथों की रचना की। सं. 1810 में सागर में जन्में पद्माकर जी रीति परम्परा के प्रख्यात कवि हैं। वे समस्या पूर्ति में बड़े पटु थे। वे सागर के शासक रघुनाथ राव के कृपा-पात्र थे तथा जयपुर नरेश सवाई महाराज प्रताप सिंह तत्पश्चात् उनके पुत्र जगतसिंह के राजकवि थे। उन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा से अपार धन अर्जित किया। जगद्विनोद और आलीजाह-प्रकाश नामक नायिका भेद के ग्रंथ लिखे। वे 32 ग्रंथों के प्रणेता कहे जाते हैं। उनकी श्रृंगार रस की रचनायें सुनकर कोई भी पुलकित हुए बिना नहीं रह सकता। झांसी के श्री नाथूराम माहौर और आचार्य सेवकेन्द्र त्रिपाठी ब्रज भाषा के अनूठे कवि थे। माहौर जी की वीर-वधू का वैशिष्ट्य यह है कि उसमें वर्णित नख-शिख वीर-रस प्रधान है जब कि नख शिख वर्णन में अन्य सभी कवियों ने श्रृंगार रस का आश्रय लिया है। आचार्य सेवकेन्द्र के मीरा सम्बन्धी छंद बेजोड़ हैं। रत्नाकर जी के पश्चात् ब्रजभाषा के जड़ाऊपन, उक्ति वैचित्र्य और भाव-भंगिमा के कुशल चितेरे की संज्ञा यदि किसी को दी जा सकती है तो वे हैं सेवकेन्द्र जी। छत्रसाल वावनी, मीरा मानस, विकास वीणा, श्रद्धा-सुमन, शांति के सपूत, ताज की आवाज़ बुन्देल-विभूति और ब्रज वर्तिका उनकी प्रसिद्ध रचनायें हैं। इस धारा में लाला वंशगोपाल छतरपुर, पन्ना के कवि बख्शी हंसराज, कविमणि पं. कृष्णदास सेवढ़ा दतिया के रसनिधि आदि के अतिरिक्त और भी अनेक कवि हुए हैं जिनका नामोल्लेख विस्तार भय से संभव नहीं है।

वीर-रस प्रधान रचनाकारों में महाराज छत्रसाल के आश्रय प्राप्त मऊ में सं. 1714 में जन्में लाल कवि सर्वोपरि हैं। उनका "छत्रप्रकाश" अमर वीर-काव्य की वस्तु होने के साथ छत्रसाल के जीवन का प्रामाणिक इतिहास ग्रंथ है। वे न केवल एक महाकवि थे बल्कि युद्ध स्थल में छत्रसाल के साथ कंधे से कंधा मिलाकर युद्ध करके सहायता करते थे। उनके युद्ध-वर्णन अप्रतिम हैं। भूषण की पालकी को कंधा देने वाले छत्रसाल कवियों का सम्मान तो करते ही थे, वे स्वयं भी अच्छे कवि थे। श्री वियोगी हरि की "वीर सतसई" इसी रस की उल्लेखनीय रचना है जिस पर उन्हें मंगलाप्रसाद पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। वियोगी हरि छतरपुर निवासी थे और गांधी जी के अनन्य सहयोगियों में रहे हैं। साहित्य सेवा, समाज-सेवा और हरिजन सेवा के लिये समर्पित उनका जीवन निष्काम और निष्ठापूर्ण सेवा का पावन गीत है। छतरपुर के ही श्री रामनाथ गुप्त हरिदेव की "करवाल-किरण" तथा उनकी अन्य रचनायें ब्रजभाषा के ओज-सामर्थ्य को मुखर करने वाली उदाहरण रूप में रचनायें हैं। मेरे पूज्य पिता जी स्व. पं. श्री राजाराम जी शुक्ल "रत्नेश" बुंदेली के साथ ही ब्रज-भाषा के स्मरणीय कवि थे। स्फुट रचनाकारों की तो यहां गणना करना भी असंभव प्रतीत होता है।

इस प्रकार अभी वर्णित उदाहरण इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि ब्रजभाषा ने बुन्देलखण्ड के अधिकांश कवियों को अपने आकर्षण पाश में बांधा है। इसा प्रधान कारण बुन्देली और ब्रजभाषा का साम्य है तथा अभिरुचियों और प्रवृत्तियों की समानता है। इस चर्चा में काल-क्रम पर ध्यान न देकर ब्रज-भाषा-साहित्य में रचना और रचनाकार के स्थान को प्राथमिकता दी गई है।

– अधिवक्ता, शुक्लाना, छतरपुर ☐

बिजावर के अप्रतिम कवि : देवीप्रसाद 'प्रीतम'

– श्याम बिहारी व्या

देवी प्रसाद 'प्रीतम' एक गुमनाम शख्सियत भले ही आज के साहित्य जगत में हो, परन्तु प्रथम दशक में उनके साहित्य का लोहा हर कोई मानता था। स्वयं बिजावर रियासत के महाराज सावंत सिंह को उनकी वास्तविक प्रतिभा का ज्ञान तब हुआ जब उन्हें बीमारी की दशा में एक प्रकाशक ने प्रीतम की ''गुलदस्त–ए–बिहारी'' भेंट की। बम्बई से ही उन्होंने तार द्वारा अपनी रियासत में सूचना भिजवाई कि देवीप्रसाद 'प्रीतम' की पेंशन राशि दुगनी कर दी जाए।

मुझे तो उनसे शिक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब मुझे यह दायित्व सौंपा गया कि आप देवी प्रसाद 'प्रीतम' पर लिखें। लगा कि क्या है जो न लिखा जा सके। देवी प्रसाद 'प्रीतम' बिजावर में एक शिक्षक (हेड मास्टर) मिडिल स्कूल के रूप में पहुंचे थे। उनकी साहित्यिक कृतियां आज भी अनेक अप्रकाशित हैं।

'प्रीतम' जी के जन्म काल और परिवार के सम्बन्ध में बिजावर में भी जानने वाले बहुत कम लोग हैं। जन्म कानपुर के कायस्थ परिवार में संवत् 1929 में मुंशी रामशरण के यहां हुआ था। उनका पालन छतरपुर में हुआ और यही से इन्ट्रेंस परीक्षा पास की।

विद्यार्थी जीवन से ही वे रचनायें लिखते थे। उर्दू शायरी, बृज, फारसी, के अलावा अंग्रेजी तथा उत्कृष्ट फागें उन्होंने रची। स्वयं न लिखने वाले प्रीतम जी सिर्फ बोला करते थे और उसके लिखने का काम मिर्जा सादिक अहमद किया करते थे। राम जानकी के अनन्य भक्त श्री प्रीतम जी के पास जब विनय पत्रिका की समालोचना लिखने हेतु जो श्रीयुत गणेश भट्ट आगरा में आई तो उन्होंने गजल रूप में इतनी सशक्त भाषा में लिखा जो अब तक कहीं देखने को नहीं मिला।

मुकुटमणि भक्त कुल भूषन, गुसाईं की विनय बानी,
मधुर–मंजुल, सरस सुन्दर, अनुपम प्रेम रस–ज्ञानी।।
छिपी शब्दों के पर्दे में झलक अपनी दिखाती थी।
छटा मुखचन्द्र की पूरन मगर पड़ने न पाती थी।।2।।
धनझर की सियाही में तड़ित द्युति सी दमकती थी।
प्रभा चष पुतरी उसकी, न खुलकर देख सकती थी।।3।।
ढकी फानूस में इक ज्योति अद्भुत झिलमिलाती थी।
सनही सन्त परवानों के दिल लुट–लुट लुभाती थी।।4।।
रसिक जन दूर से ही नूर आनन का निरखते थे।
स्वयं टपके हुए रसकन कोई बिरले ही चखते थे।।5।।
रसिकवर आगरावासी शिरीयुत भट्ट रामेश्वर।
कृपाकर हो गए उद्यत अनोखी छवि दिखाने पर।।6।।
सरस रसना से टीका कर बहाई गंग की धारा।
घटा घन घोर बरसा कर किया सरबोर जग सारा।।7।।
उठा कर शब्द का चिलमन दिखाई अर्थ की झांकी।
सलोनी मोहनी मूरत हंसन हेरत अदा बांकी।।8।।
जयति जय, हे दयामूरति, जयति जय हे सुयश सागर।
जयति भारत रतन, साहित्य भूषन, भट्ट गुन आगर।।9।।
गुसाईं की गिरा चमका रही थी चांदनी छनकर।
चुआया आपने ससिरस शरद की यामिनी बनकर।।10।।
गहन गंभीर आशय आपने इस रंग झलकाया।
मनोभावों का गोस्वामी के इक फोटो नजर आया।।11।।
अमल अनुवाद रूपी सैरबौं में देख गुलकारी।
सरल रंगीन रचना पर खिले यूरोपियन भारी।।12।।
प्रिया 'प्रीतम' शरन पुष्पांजली यह पेश करता है।
युगल सन्तों के पद पंकज की रज नीज सीस धरता है।

प्रीतम जी मृदुभाषी धीमे बोलने वाले व्यक्ति थे। वे बिजावर से छतरपुर अपने अनन्य मित्र लाला भगवानदीन से मिलने आया करते थे। भगवान राम के अनन्य भक्त प्रीतम जी लिखते हैं कि –

सन्तान को सोच नहीं कछु ''प्रीतम'' चाह नहीं मन में धन की।
जिन बालपने से सुधारी सदा सुधि लैहै वही वृद्धापनकी।।
धनि धन्य गोसाईजू डार गये हमें देहरी जानकी जीवन की।
अब तो रघुराज गरीब निवाज के हाथ है लाग दुखीजन की।।

उनकी 'गुलदस्त–ए–बिहारी' जिस पर स्वयं महाराज बिजावर सांवत सिंह को दुख हुआ कि अपनी रियासत के इतनी योग्य प्रतिभा को पहचानने में विलम्ब की–

जनाया जिसने ये आलम वो खुद जाना नहीं जाता।
है दीदे देखते सब, पर नही दीदा नजर आता।।

देवी प्रसाद जी ने गीता का पद्य में अनुवाद किया जो अब तक अप्रकाशित है। इसकी मूल प्रति स्वयं इनके परिजनों के पास नहीं है।

यद्यपि कृष्ण जन्मोत्सव में उनकी लिखी रचनाएं भक्ति भाव की ऐसी रचनायें हैं जो सोते भक्तों को भी उठा देती हैं।

खलकत पड़ी घरो में सुख चैन कर रही है।
किसको पड़ी है किस पर कैसी गुजर रही है।

वे अपने तत्कालीन संगी साहित्यकारों के साथ बिजावर नयाताल रोड पर एक विशाल शिला पर बैठा करते थे। इस शिला का नाम उन्होंने कंचन शिला रख दिया था। उस पर उन्होंने लिखा था –

ऐ मेरी प्यारी तू ऐ कंचन शिला
फिर कभी उन प्रेमियों से दे मिला।
रंग बरसाते थे जो सतसंग में
नित नये आनंद के शरबत पिला।।
जिनकी शोहबत कीमियां की थी बुटी
जो बना देते थे ताबे से तिला।।
कुमवः इज़नी जिनके थे अनमोल बोल
जो दिले मुर्दा को देते थे जिला।।
मण्डली दीनों की थी पारे की खाल
दिल के आइने को देते थे जिला
फिर रही है सूरतें आखों में वो,
याद से जाता कलेजा है छिला।।
चांदनी रातों में वहे रसखान तान
फिर फिरेंगे क्या कभी वो दिन दिला।।
दीन दुख भंजन विनय खुद सुन रहे
अब करें और किससे ये गिला।।
देखकर प्रीतम हिलोरें उठ रही
दिल की दी कटोरी तूने फिर हिला।।

यद्यपि उन्होंने कभी फागें नही लिखी थी किन्तु उनके पड़ोसी टाई सुनार जो कि सिर्फ फागे गाता था। एक दिन कहने लगा आपसे फांगे नहीं बन सकती–पर प्रीतम जी ने उसे तत्काल फाग सुना दी–

ऊधौ हमे कछून करने जीवन के दिन भरने,
मधुवन बैठ चांदनी रातन ध्यान हरी को धरने।
मुतिइयन माल बना अंसुअन की श्यामा श्याम सुमरने
चरण चिन्ह के बना गेड़ुआ रमन रेत में परने।
'प्रीतम' बना नाम की नौका जो भव सागर तरने।।

वैसे तो देवी प्रसाद की दिनचर्या थी कि महाराज सावंत सिंह को अंग्रेजी भाषा का अखबार पढ़ कर सुनाना। वे नियमित तौर पर उन्हें टाइम्स आफ इण्डिया पढ़कर सुनाया करते थे। पर उन्होंने पोयट्री भी लिखी है –

One Day I met a claver med.
and with full reverence to him I said.
Why the people love the world so much.
why they are ensmared in it as such.
at the time of departure why they greave.
why they are painted at the time of leave.
with sum smile on his lips he anserd.
are you not up to this age awared.
They no well that we are a drop of sea.
where we wear first there we must we.
He is our real source and we all his stream.
He is our enternity and we are only a dream.
a drof never come to reach the sea.
with his divine love attracts to him Him self he.
this transit word a never to meat again.
Hans they leaving it weap like a rain.
in worshiping why in man so cold.
his unpaid murshes made Him bold.

ऐसी बहुमुखी प्रतिभा की कुछेक पुस्तके ही प्रकाशित हुई है इनका बहुत सारा साहित्य इनके परिजनों, यारों, दोस्तों के परिजनों के पास मूल प्रति के रूप में रखा है परन्तु ये अप्रकाशित है।

ऐसे साहित्यकार जो जनता से जुड़े थे। उनके साहित्य पर चर्चा होना आज मुनासिब नहीं माना जाता। क्योंकि ये साहित्यकार किसी पन्थ, किसी विचार–धारा से जुड़े नहीं थे इनकी स्वतंत्र और मौजी विचारधारा ही रही है।

वैसे तो कहा यही जाता है शब्द कभी मरता नहीं है कागजों में लिखे ये शब्द जीवित सदैव रहेंगे।

– हनुमान टोरिया के नीचे, छतरपुर □

भारतीय राजनीति में बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक भूमिका

– डॉ. सी.एम. शुक्ल

कभी चेदि, कभी दशार्ण, कभी चन्द्रावती तो कभी जुझौति[1], या जेजाकभुक्ति के नाम से जाना जाने वाला बुन्देलखण्ड क्षेत्र आज भले ही भारत में विशिष्ट स्थान न रखता हो ऐतिहासिक काल में इसका महत्वपूर्ण स्थान रहा है, इतना ही नहीं यह लम्बे समय तक भारतीय राजनीति तथा कला का केन्द्र रहा है।

बुन्देलखण्ड की यमुना, टोंस वेतवा[2] धसान[3] केन तथा काली सिन्ध नदियों के किनारे प्राप्त पाषाण कालीन संस्कृति के अवशेष तथा बांदा[4] सागर[5] ललितपुर एवं छतरपुर जिले के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त शैल चित्र इस बात में प्रमाण हैं कि यह क्षेत्र सभ्यता के विकास के प्रारम्भिक काल से ही मानव को विकसित होने के अवसर प्रदान करता रहा है।

ऋग्वेद में चेदि का उल्लेख मिलता है। रामायण महाभारत, जातक कथाओं तथा सोलह महाजन पदों की सूची[6] में चेदि का वर्णन उस काल में इस क्षेत्र के महत्व को रेखांकित करता है। महाभारत काल में उपरिचर, शिशुपाल, धृष्टकेतु तथा सुबाहु जैसे राजाओं ने बुन्देलखण्ड को भारतीय राजनीति में उल्लेखनीय स्थान प्रदान किया था। महाभारत में उपरिचर की राजधानी के समीप से शुक्तिमती नदी के बहने की जानकारी मिलती है।[7] पार्जीटर ने शुक्तिमती की पहचान केन नदी से की है[8] इसकी राजधानी का भी नाम शुक्तिमती था ये केन नदी के किनारे स्थित आधुनिक बांदा नगर के समीप कहीं स्थित थी। महाभारत काल में चेदि राज्य (बुन्देलखण्ड) भारत के महत्वपूर्ण राज्यों में से एक था। श्रीकृष्ण की बुआ का पुत्र शिशुपाल यहां का प्रतापी राजा था, उसने अनेक महत्वपूर्ण विजयें प्राप्त की थीं। शिशुपाल श्रीकृष्ण से शत्रुता रखता था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय जब भीष्म के कहने पर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की अग्रपूजा की, तब शिशुपाल अत्यन्त क्रोधित हुआ और उनकी आलोचना करते हुये अपशब्द कहे परिणामतः श्रीकृष्ण ने उनकी वही वध कर दिया।

ई.पू. छठी शताब्दी में स्थित सोलह महाजन पदों में चेदि एक शक्तिशाली महाजनपद था। नन्दों तथा मौर्यो के समय बुन्देलखण्ड का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा, यह क्षेत्र इन साम्राज्यों के अधीन ही शासित रहा। टॉलमी ने सन्द्रावर्ताज (चन्द्रावती) नामक राज्य का वर्णन करते हुये उसकी जो सीमायें दी हैं वे बुन्देलखण्डं से मेल खाती है। उसने यहां के जिन चार नगरों तमसिस, करपोर्निया, इमलथ्रो तथा नन्दवग्दुर का उल्लेख किया है इनकी पहचान क्रमशः कालिंजर, खजुराहो, महोबा तथा नरवर से की गई है।[9] ये चारों नगर बुन्देलखण्ड के महत्वपूर्ण नगरों में रहे हैं। टॉलमी द्वारा इन नगरों का उल्लेख करना बुन्देलखण्ड के तत्कालीन भारत में महत्व को रेखांकित करता है। मौर्यों के बाद यह क्षेत्र शुंगों, सातवाहनों इण्डोग्रीक, भारशिव तथा गुप्त शासकों के अधीन रहा। गुप्तों के अधीन इस क्षेत्र में शासन करने वाले परिव्राजक राजाओं ने स्थापत्य तथा मूर्तिकला की दृष्टि से बुन्देलखण्ड को सम्पन्न किया।

व्हेनसांग ने बुन्देलखण्ड को चि–चि–टो कहा है।"[10] उसके अनुसार इस राज्य की राजधानी (खजुराहो) लगभग ढाई मील के घेरे में थी. तथा यहां लगभग एक हजार ब्राह्मण 10 मंदिरों में पूजा करते थे। यह राज्य अपनी उपज के लिये प्रसिद्ध था तथा भारत के सभी भागों के विद्वान यहां आते थे।"[11]

हर्ष की मृत्यु के बाद त्रिपुरी के कलचुरियों ने कालिंजर पर अधिकार कर बुन्देलखण्ड में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इस अधिकार से कलचुरियों के गौरव तथा प्रतिष्ठा में भारी बृद्धि हुयी तभी तो अनेक कलचुरि शासकों ने कालंजरपुर वराधीश्वर की उपाधि धारण करते हुये अपने आपको गौरान्वित महसूस किया।

कलचुरियों के बाद बुन्देलखण्ड क्षेत्र में प्रतिहारों का शासन स्थापित हुआ। प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल के समय तक प्रतिहारों की सत्ता इस क्षेत्र में दृढ़ रही। प्रतिहार शासक नागभट्ट।। के उत्तराधिकारी रामभद्र के समय इस क्षेत्र में प्रतिहारों का नियंत्रण[12] कुछ ढीला पड़ गया। इसकी जानकारी मिहिर भोज के बराह अभिलेख से मिलती है। इसमें कहा गया है "उसने (मिहिर भोज) कान्यकुब्ज भुक्ति के कालजंर मण्डल के उदुम्बर विषय में स्थित बलाकाग्रहार के उस दान को पुनः चालू किया जो सर्व प्रथम सर्ववर्मन द्वारा दिया गया था बाद में नागभट्ट द्वितीय के समय पुर्नस्वीकृत हुआ था किन्तु रामभद्र के समय व्यवहारिन नामक अधिकारी की अयोग्यता के कारण विहत हो गया था।"[13ए]

प्रतिहार शासक महीपाल प्रथम के समय बुन्देलखण्ड भारतीय राजनीति के रंगमंच में पहली बार निर्णायक भूमिका में उभरकर सामने आया। नागभट्ट द्वितीय के समय से ही चन्देल प्रतिहारों के अधीन शासन करते आ रहे थे। महीपाल के समय वे निर्णायक भूमिका में आ गये। राष्ट्रकूट आक्रमणकारी इन्द्र तृतीय के आक्रमण के कारण महीपाल

प्रथम को कुछ समय के लिये सिंहासन से हाथ धोना पड़ा इतना ही नहीं उसे अपनी राजधानी कन्नौज से भी भागना पड़ा। इस अवसर पर चन्देल शासक हर्ष ने उसे सिंहासन पर पुनः स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। धंग के खजुराहो अभिलेख में कहा गया है "हर्ष ने क्षितिपाल देव (महीपाल) को पुनः सिंहासन पर स्थापित किया।"[13अ] इस समय बुन्देलखण्ड उत्तर भारतीय राजनीति के केन्द्र में आ गया। सम्राट महीपाल प्रथम का अपने ही सामन्त हर्ष की सहायता से राजगद्दी पुनः प्राप्त करना जहां एक ओर प्रतिहारों की दुर्बलता को प्रकट करता है वहीं चन्देलों की राजनीतिक और सैनिक सत्ता के उत्कर्ष का भी सूचक है। इस कार्य ने चन्देलों की शक्ति तथा प्रतिष्ठा में भारी बृद्धि की। इसके बाद प्रतिहारों की सत्ता धीरे-धीरे कन्नौज के आसपास सिमट गई और उनका स्थान चन्देलों ने ग्रहण कर लिया।[14] यद्यपि इस घटना के बाद लम्बे समय तक चन्देल शासक प्रतीहारों की अधिसत्ता स्वीकार करते रहे किन्तु यह नाम मात्र के लिए ही था उन्होंने स्वतंत्र शासकों की ही भांति शासन किया।

तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का लाभ चन्देल शासक हर्ष के उत्तराधिकारी यशोवर्मा ने उठाया और साम्राज्यवादी नीति अपनाते हुये अपने राज्य को विशाल साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया। उसके सम्बन्ध में धंग के विक्रम संवत 1011 के खजुराहो अभिलेख में कहा गया है" यशोवर्मा गौड़ रूपी क्रीड़ालता के लिये तलवार था, उसने खसों की सेनाओं की बराबरी की, कोशलों को कोष लूटा, कश्मीर के वीर का नाश किया, मिथिला के राजा को शिथिल किया, वह मालवों के लिये काल के समान था, उसके सामने गर्हित कलचुरी राजा कांपने लगा, वह कुरू रूपी वृक्ष के लिए आंधी के समान और गुर्जरों के लिये दाहकारक था।[15] यशोवर्मा ने अपनी समकालीन लगभग सभी शक्तियों को पराजित किया तथा चन्देल राज्य को भारतीय राज्यों में सर्वप्रमुख राज्य बना दिया। यशोवर्मा ने चन्देल सत्ता को उत्तर भारतीय राजनीति में सिरमौर बना दिया था और उसकी सैनिक प्रतिष्ठा को चुनौती देने वाली कोई भी सत्ता शेष नहीं रही। महत्वपूर्ण बात यह है कि चन्देल शासक यशोवर्मा ने अपने शासन प्रबन्ध को जनकल्याणकारी बनाया। खजुराहो अभिलेख में कहा गया है" वह प्रजाओं के सन्तोष के लिये ही पैदा हुआ।"[16] यशोवर्मा ने राजनीतिक प्रथा प्रशासनिक क्षेत्र में ही सफलतायें अर्जित नहीं की अपितु कला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण निर्माण कार्य करवाये। खजुराहो का प्रसिद्ध लक्ष्मण मन्दिर उसी में समय निर्मित किया गया।

यशोवर्मा के उत्तराधिकारी धंगदेव के समय चन्देल साम्राज्य अपने उत्कर्ष के चरम शिखर पर पहुंचा।[17] धंगदेव भी अपने पिता की ही भांति साम्राज्यवादी था। उसकी सबसे बड़ी राजनीतिक उपलब्धि कन्नौज के प्रतिहार शासक को पराजित कर उससे साम्रज्य छीनना थी। मदन वर्मा के मऊ अभिलेख में कहा गया है" धंग ने कान्य कुब्ज नरेन्द्र को समरभूमि में जीतकर उसकी साम्राज्य श्री छीन ली।"[18] इसके बाद उसने प्रतिहारों की नाममात्र की अधीनता का बोझ उतार कर फेंक दिया और स्वतंत्र सम्राट की हैसियत से शासन प्रारम्भ किया। उसने चन्देलों के साम्राज्य तथा प्रभाव का और अधिक विस्तार किया। विक्रम संवत् 1059 के खजुराहो अभिलेख में कहा गया है" कोशल, क्रथ, सिंहल, और कुंतल के राजा झुककर उसकी आज्ञायें सुनते थे ...... कांची, आन्ध्र, राढ़ और अंग के राजाओं की रानियां उसके बन्धनागारों में सड़ती थीं।[19] ये उल्लेख धंग के शासन काल में बुन्देलखण्ड के प्रभाव विस्तार के सूचक हैं। धंग सैनिक तथा राजनीतिक दृष्टि से अपने समय का सर्वप्रमुख उत्तर भारतीय सम्राट था।[20] उसके ही शासन काल में उत्तर भारत का मन्दिर वास्तु अपने उत्कर्ष के चरम शिखर पर पहुंचा था।

धंग के उत्तराधिकारी गण्डदेव के शासन काल में चन्देल साम्राज्य की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ और उसने अपने उत्तराधिकारी विद्याधर के लिये सुरक्षित साम्राज्य विरासत रूप में छोड़ा। विद्याधर अपने पितामह की भांति साम्राज्यवादी था, उसने तत्कालीन भारतीय राजनीति में खुलकर हस्तक्षेप किया। उसके राज्यारोहण के समय महमूद गजनबी के आक्रमणों से उत्तर भारत के राज्य आक्रान्त थे। उसके आक्रमणों की विभीषिका के दुष्परिणामों का अनुमान विद्याधर के मस्तिष्क में स्पष्ट था साथ ही उसे राजपूतों गौरव का भी ध्यान था। वह चाहता था कि राजपूत शासक महमूद गजनवी के आक्रमणों का दृढ़ता से मुकाबला करे। यही कारण है कि जब उसने कन्नौज के प्रतिहार सम्राट राज्यपाल को महमूद गजनवी के आक्रमण के समय बिना युद्ध किये ही भागते देखा तो उसके क्रोध का ठिकाना नहीं रहा और उसने उसे दण्डित करने का निश्चय किया। इब्न उल अतहर के अनुसार "उसने कन्नौज के राजा राज्यपाल के पाल इस बात के लिये डांट लगाते हुये दूत भेजा कि उसने बिना युद्ध के ही अपना राज्य महमूद गजनवी को समर्पित कर दिया और स्वयं भाग गया।"[21] महोबा से प्राप्त एक अभिलेख के अनुसार विद्याधर ने राज्यपाल का वध कर दिया था उसके अनुसार "विद्याधर ने कान्यकुब्ज भूपाल को मार डाला।"[22] भगोड़े राज्यपाल को दण्डित करने से उसकी राजनीतिक प्रतिष्ठा में भारी वृद्धि हुई। इब्न उल अतहर के अनुसार "इस सफलता से विद्याधर और भी शरारती तथा मनमाना हो गया तथा उसकी कीर्ति समस्त उत्तर भारत में फैल

गयी।[23] इस घटना के बाद विद्याधर उत्तर भारत के प्रमुख सम्राट के रूप में उभर कर सामने आया और अनेक राज्यों के राजा उसकी ओर महमूद गजनवी के आक्रमणों से रक्षा के लिये आशा भरी नजरों देखने लगे। इब्न उल अतहर ने लिखा है "महमूद द्वारा विजित भारत के एक राजा ने विद्याधर की सेवा ग्रहण कर ली और उसने रक्षा की भीख मांगी।"[24] विद्याधर महमूद गजनवी के आक्रमणों से रक्षा के लिए उसके विरुद्ध भारतीय राजाओं का संघ बनाना चाहता था, इसके लिये उसने प्रयास भी प्रारम्भ कर दिये थे। महमूद को जब विद्याधर की इन गतिविधियों की सूचना मिली तो वह चिन्तित हो उठा। इब्न उल अतहर के अनुसार "वह (महमूद गजनवी) चिन्तित हो उठा और युद्ध की तैयारियां करने लगा।"[25] महमूद ने उस पर आक्रमण कर दिया। विद्याधर ने भी उसके आक्रमण का सामना करने के लिये विशाल सेना तैयार की थी उस सेना को देखकर महमूद गजनवी भी अपने आक्रमण के लिये पछताने लगा। निजामुद्दीन के अनुसार "सुल्तान (महमूद) उसकी सैन्य संख्या का अनुमान लगाने के लिये एक ऊँचे स्थान पर गया और विशालता (सेना की) देखकर अपने आने पर पछतावा करने लगा।"[26] यह आक्रमण निर्णायक नहीं रहा अतः महमूद गजनवी ने पुनः विद्याधर पर आक्रमण कर उसे कालिंजर के किले में घेर लिया, यह घेरा लम्बे समय तक चला लेकिन महमूद गजनवी उसे जीत नहीं सका। अन्त में दोनों पक्षों के मध्य समझौता हुआ और महमूद गजनवी वापस चला गया। निजामुद्दीन के अनुसार "महमूद गजनवी ने अपनी ओर से उसे अनेक उपहारों के साथ 15 किलों की किलेदारी प्रदान की।" स्पष्ट है महमूद गजनवी को बुन्देलखण्ड में चन्देलों के विरुद्ध निर्णायक सफलता नहीं मिली। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में महमूद गजनवी को वास्तव में रोका गया। विद्याधर ने इस क्षेत्र वह गौरव प्रदान किया जो उस समय भारत का अन्य कोई राज्य प्राप्त नहीं कर सका था। जहां महमूद गजनवी के आक्रमण रूपी तूफान में उत्तर भारत के अधिकांश राज टिक नहीं सके वहीं विद्याधर दृढ़ स्तम्भ की तरह खड़ा रहा। उस समय बुन्देलखण्ड की राजनीतिक प्रतिष्ठा अपने उत्कर्ष के चरम शिखर पर थी और यह क्षेत्र भारतीय राजनीति का केन्द्र बन गया था। महमूद गजनवी की आक्रमणकारी तलवार को कुण्ठित कर देने से विद्याधर की राजनीतिक प्रतिष्ठा समस्त भारत के राजाओं में स्थापित हो गयी और सही अर्थों में उत्तर भारत की राजनीति बुन्देलखण्ड से संचालित होने लगी। इस काल में इस क्षेत्र को जिस तरह से महत्व प्राप्त हुआ वैसा पुनः प्राप्त करने के अवसर कम ही आये। डॉ. वी.एन. पाठक लिखते हैं "विद्याधर अपने समय का सर्वप्रमुख उत्तर भारतीय शासक था जो प्रत्येक अर्थ में सम्राट कहलाने का पूर्ण अधिकारी था।"[27]

लगभग 1029 ई. में विद्याधर की मृत्यु के पश्चात चन्देलों का पतन शुरू हो गया और फिर उनके काल में बुन्देलखण्ड को पुनः पहले जैसा गौरव प्राप्त नहीं हो सका। कीर्तिवर्मा के शासन काल में उसके सेनापति गोपाल ने पुनः इस क्षेत्र का कुछ गौरव बढ़ाया लेकिन यह बुझते हुये दीपक की अन्तिम लौ के समान था। वैसे तो चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक यहां चन्देलों की सत्ता कुछ क्षेत्रों में स्थापित रही लेकिन इसके अधिकांश क्षेत्र में इस समय तक तुर्क सत्ता स्थापित हो चुकी थी और बुन्देलखण्ड का कुछ समय तक स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त रहा। फिर भी यदा कदा यह क्षेत्र कुछ घटनाओं के कारण चर्चित रहा।

तेरहवीं शताब्दी के मध्य में बुन्देलखण्ड में महोनी से बुन्देलों ने अपना राज्य प्रारम्भ किया और उनके नेतृत्व में एक बार पुनः यह क्षेत्र भारतीय राजनीति में उभर कर सामने आया। इस क्षेत्र का नाम बुन्देलों के कारण ही बुन्देलखण्ड हुआ।[28] इससे बुन्देलों का महत्व प्रमाणित होता है। इनका प्रारम्भिक केन्द्र महोनी ही रहा। राजा सोहन पाल ने गढ़ कुण्डार के खंगार राजा हुरमत सिंह को पराजित कर गढ़ कुण्डार पर अधिकार किया और उसे अपने राज्य का केन्द्र बनाया।[29] बुन्देला शासक रुद्र प्रताप ने 1531 ई. में गढ़कुण्डार के स्थान पर ओरछा को अपनी राजधानी बनाया।[30] मुगलकाल में एक बार पुनः बुन्देलखण्ड ने भारतीय राजनीति महत्वपूर्ण स्थान बनाया। प्रथम मुगल शासक बाबर को इस क्षेत्र के चन्देरी में शासन करने वाले मेदिनीराय ने चुनौती दी। उसने बाबर की अधीनता स्वीकार करने से इन्कार कर दिया।[31] उसने बाबर से लड़ते-लड़ते अपने प्राण त्याग दिये। किन्तु उसके आगे सिर नहीं झुकाया। बाबर के उत्तराधिकारी हुमायूं ने कालिंजर के शासक पर 1531 में आक्रमण किया[32] किन्तु वह सफल नहीं हो सका और उससे समझौता करके वापस चला गया। हुमायूं को पराजित कर मुगल सत्ता पर अधिकार करने वाले शेरशाह 32 सूरी को भी कालिंजर के राजा कीर्ति सिंह ने चुनौती दी। शेरशाह की मृत्यु कालिंजर युद्ध के समय ही हुई।[33] अकबर के शासन काल के अन्तिम दिनों में जहांगीर ने ओरछा के राजा वीर सिंह बुन्देला के द्वारा अकबर के मित्र अबुल फजल की हत्या करवा दी थी अकबर इससे बहुत दुखी हुआ। जहांगीर ने राज्यारोहण के बाद वीर सिंह को सम्मानित किया।

जहांगीर के उत्तराधिकारी शाहजहां के शासन काल में बुन्देलों ने मुगल साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष का झण्डा उठाया। जुझार सिंह के नेतृत्व में बुन्देलों ने मुगलों को कड़ी चुनौती दी।[34] जुझार सिंह की मृत्यु के बाद बुन्देला सरदार चम्पत राय ने मुगलों के विरुद्ध डटकर मोर्चा लिया।[35] चम्पत राय ने अनेक बार मुगल सैन्य टुकड़ियों के

दांत खट्टे किये।

चम्पतराय के यशस्वी पुत्र महाराज छत्रसाल ने बुन्देलखण्ड को एक बार पुनः भारतीय राजनीतिक रंगमंच पर प्रतिष्ठित किया। छत्रसाल ने अपने शौर्य से विशालराज्य स्थापित किया। अपने महान वीरपिता चम्पतराय की मृत्यु के बाद उन्होंने अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में भी हिम्मत नहीं हारी और कठिनाइयों का सामनां करते हुये निरन्तर प्रगति करते चले गये। औरंगजेब के शासनकाल में महाराज छत्रसाल द्वारा मुगलों को चुनौती देना उनके अद्भुत साहस का परिचायक है। उन्होंने अनेक युद्धों में मुगलों की सेना को पराजित ही नहीं किया अपितु उन्हें बुन्देलखण्ड की सीमाओं से खदेड़ा भी।

अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में भी बुन्देलखण्ड ने बढ़चढ़कर भाग लिया। महारानी लक्ष्मीबाई ने 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में बुन्देलखण्ड का झण्डा ऊँचा किया और कुछ ही दिनों में उन्होंने लगभग सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड को अंग्रेजों से छीन लिया।[36] महारानी लक्ष्मीबाई की वीरता ने बुन्देलखण्ड को भारतीय इतिहास में प्रतिष्ठित स्थान प्रदान किया। आज भी भारतवासी महारानी की वीरता को याद करके रोमांचित हो जाते हैं। इस स्वतंत्रता संग्राम में तात्या टोपे ने भी अपनी वीरता द्वारा अंग्रेजों के दांत खट्टे किये। महान क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद ओरछा में कुछ दिन रहकर क्रान्तिकारी गतिविधियों को संचालित किया और भी अनेक क्रान्तिकारियों ने इस क्षेत्र को गौरव प्रदान किया।

बुन्देलखण्ड के अधिकांश शासकों ने जहां इस क्षेत्र को राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बनाया वहीं कला तथा संस्कृति के क्षेत्र में भी नवीन ऊँचाइयों को स्पर्श किया, विशेषकर चन्देलों ने कला तथा संस्कृति के क्षेत्र में बुन्देलखण्ड को अत्यन्त सम्पन्न बनाया। चन्देलों द्वारा निर्मित करवाये गये निर्माण कार्य आज भी उनकी गौरवगाथा गाते हैं। चन्देलकालीन मन्दिरों, मूर्तियों तथा सरोवरों की भव्यता देखकर ऐसा लगता है कि चन्देलों ने अपने साम्राज्य में सुख समृद्धि तथा शान्ति का वातावरण तो निर्मित किया ही कलाकारों को अपनी कला की पूर्ण अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता भी प्रदान की थी। इस काल की कलाकृतियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कलाकारों ने अपनी सम्पूर्ण कला को उड़ेलकर रख दिया था उन्होंने अपने पास कुछ भी शेष नहीं रखा, कला के प्रति ऐसा समर्पण वही कलाकार कर सकता है जो अपनी स्थिति से पूर्ण सन्तुष्ट हो। जहां ऐसे निर्माण कार्यों के लिये धन की आवश्यकता होती है वहीं दूसरी ओर यह भी आवश्यक है कि भयमुक्त वातावरण भी हो तभी कलाकार अपनी कला का तन्मयता से प्रदर्शन कर सकता है। चन्देलों ने ऐसा ही वातावरण प्रदान किया यह उनकी राजनीतिक दृढ़ता के कारण ही संभव हो सका। बुन्देलखण्ड राजनीतिक दृष्टि से भारत में हमेशा ही महत्वपूर्ण रहा है।

संदर्भ सूची

1. अयोध्या प्रसाद पाण्डेय – चंदेल कालीन बुन्देलखण्ड पृ. 4–5
2. आर. सिंह – पैल्योलिथिक इण्डस्ट्रीज आफ नार्दन बुन्देलखण्ड
3. पी.सी.पन्त – प्रि हिस्टारिक उत्तरप्रदेश, दिल्ली (1962) पृष्ठ 39–44
4. जगदीश गुप्त – प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, दिल्ली (1967) पृष्ठ 86–87
5. इण्डियन आर्क्योलॉजी ए रिव्यू 1958–59
6. ऋगवेद सप्तम 5
7. महाभारत
8. जे.ए.एस.बी. (1985) पृ. 235
9. आ.सर्वे. रिर्पोटल भाग 2 पृ. 91–92
10. आयोध्या प्रसाद पाण्डेय – चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इति. पृ. 5
11. वाटर्स भाग 2 पृ. 251
12. दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज पृ. 7
13ए. वराह अभिलेख एड. जिल्लद 19 पृ. 15–19
13बी. एड. जिल्द पृं. 122
14 डॉ. बी.एन. पाठक उत्तर भारत का राजनीतिक इति. पृ. 383
15. एड. जिल्द
16. वही
17. डॉ. वी.एन.पाठक, उत्तर भारत का राजनीतिक इति. पृ. 393
18. मदन वर्मा का मऊ अभिलेख श्लोक 3 एड. जिल्द पृष्ठ 197 और 203
19. एड. जिल्द। पृष्ठ 145 श्लोक 45–46
20. डॉ. वी.एन. पाठक 'उत्तर भारत का राजनीतिक इति' पृ. 402
21. अल तारीख उल कामिल आफ इब्न उल अतहर बुलक 1874 जिल्द 9 पृष्ठ 115–116
22. एड. जिल्द। पृष्ठ 20 श्लोक 22
23. अल तारीख उल कमिल आफ इब्न उल अतहर बुलक 1874 जिल्द 9 पृष्ठ 115–116
24. वही
25. पूर्व निर्दिष्ट
26. वही
27. डॉ. बी.एन. पाठक ''उत्तर भारत का राजनीतिक इति. पृष्ठ 413
28. डॉ. एस.डी. त्रिवेदी
29. गोरेलाल तिवारी 'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इति. पृ. 121
30. ईस्टर्न स्टेट्स (बुन्देलखण्ड) गजेटियर पृ. 17
31. श्री नेत्र पाण्डेय 'भारत का सम्पूर्ण इतिहास' भाग2 पृ. 17
32. वही पृ. 29
33. पूर्व निर्दिष्ट पृ. 58
34. वही पृ. 181
35. पागसन, डब्लू आर. ए हिस्ट्री आफ दी बुन्देलाज पृ. 13,16,26,28
36. दीनानाथ वर्मा 'आधुनिक भारत' पृ. 184

– 4/1, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर □

लोकमहाकाव्य आल्हा और कन्नौज

– प्रो. नर्मदा प्रसाद गुप्त

ऐतिहासिक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि कन्नौज (कान्यकुब्ज) और महोबा (महोत्सव नगर) के संबंध बहुत घनिष्ठ रहे हैं। चंदेल शासक नन्नुक (831 ई.) से लेकर राहिल (890–910 ई.) तक चंदेल राज्य और उसकी राजधानी महोबा, दोनों कन्नौज के प्रतिहार नरेशों के संरक्षण में रहे। 910 ई. में चंदेल शासक हर्ष (910–30 ई.) ने कन्नौज की गृह–कलह में हस्तक्षेप करते हुए महिपालदेव या क्षितिपालदेव प्रतिहार नरेश को गद्दी पर बैठाया (इपी. इण्डि. भाग 1, पृ. 122, पंक्ति 10 में 'पुनर्येन श्रीक्षितिपालदेवः नृपतिसिंहासने स्थापितः' अंकित है) इससे स्पष्ट है कि प्रतिहारों का अस्तित्व चंदेलों पर निर्भर हो गया था। चंदेलनरेश धंगदेव (950–1002 ई.) ने प्रतिहारों को पराजितकर अपने को स्वाधीन घोषित किया। फिर कन्नौज पर गहड़वालों का अधिकार हुआ और गोविन्दचन्द के संरक्षण में अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। गोविन्दचन्द के उत्तराधिकारी विजयचन्द और उसके पुत्र जयचन्द चन्देलों के मित्र थे, क्योंकि पृथ्वीराज चौहान से उनके संबंध अच्छे न थे। खजुराहो से कन्नौज तक सड़क मार्ग भी था, जो 180 मील लम्बा था। *(हिस्टोरिकल एटलस ऑफ इण्डिया (चार्ल्स जापेन) एस.जे. पृ. 9)*

'आल्हा' लोकमहाकाव्य के प्रामाणिक पाठ का संकलन – सम्पादन मैंने किया है, जिसके अनुसार 'आल्हा–निकासी', 'लाखन कौ ब्याव', 'गाँजर की लड़ाई', आल्हा–मनौआ', 'कजरियन की लड़ाई', 'बेतवा कौ दरेरौ' और 'बैरागढ़ की लड़ाई', सभी सात लोकगाथाएँ कन्नौज से जुड़ी हैं। पहली चार में कन्नौज की कथा है, जिसमें बनाफरों की भूमिका प्रधान है, जबकि अंतिम तीन में कन्नौज के युवराज लाखन और उनकी सेना युद्धों में चंदेलों की ओर से वीरता का प्रदर्शन ही नहीं करते, वरन् युद्ध में जूझ तक जाते हैं। दो राज्यों की इतनी गहरी मित्रता का लोकसाक्ष्य है लोकमहाकाव्य आल्हा, जो पारम्परिक आल्हागायकी में आज तक जीवित है।

बनाफरों के निष्कासन का कारण परमर्दिदेव द्वारा बछेड़े माँगे जाने पर माता देवलदे की अस्वीकृति थी। दसपुरवा छोड़कर करियापाठा में आकर ऊदल आल्हा से पूछता है कि 'दादा, कौन देश (राज्य) को चलेंगे?' तब आल्हा का उत्तर है कि 'कई देशों के हम शत्रु हो चुके हैं। हमारा ठिकाना कहीं नहीं है। मुझे कन्नौज के राजा जयचंद का ही भरोसा है।' पंक्तियाँ देखें –

ऊदल पहुँचे करियापाठा, औ आल्हा से पूछो जाय।
कौना देसकों दादा चलिहौ, ओहि मारग माँ बढ़ा देंउ पांव?
देस देस के हम बैरी भे, हमकों कहूँ ठिकानो नाहिं।
एक भरोसा मुँहि भारी रयै, राजा जयचंद कनवज क्यार।

देवलदे को मातृभूमि छोड़ने का दुख तो था, पर साथ ही वेत्रवती और यमुना की पूजा में उनकी चिन्ता स्पष्ट है –

नदी बेतवै तोकों सुमरो, तू मोरे देसा की रीढ़।
देबै सुनवाँ औ फुलवा नें, करी आरती अर्घ चढ़ाय।
फल अर्पितकर फल सोइ माँगो, पानी पियो सो पानी राख।
करी प्रार्थना कालिन्दी सें, देबै हाथ जोड़ भै ठाँड़।
मात मोर विनती सुन लीजै, रखियो मातृभूम की लाज।
तुमरे भरोसे छोड़ो महोबा, अरिदल न रख पाबै पाँव।

लाखन और जयचन्द से भेंट तथा कनवज में आश्रय के पीछे भी एक घटना और राजनीतिक सोच है। घटना है गंगा में नहानेवाले हाथियों की। आल्हा के हाथी कन्नौज के हाथियों को पछाड़ देते हैं, जिससे कन्नौजनरेश जयचंद केहरि को हाथियों के स्वामी का पता लगाने भेजते हैं। केहरि और ऊदल के द्वन्द्व में केहरि पराजित हो जाता है, तब उसे आल्हा के आने की जानकारी होती है। इस सूचना से जयचन्द को हर्ष होता है और वे आल्हा को बुलवा लेते हैं। इस सूचना से जयचन्द को हर्ष होता है और वे आल्हा को बुलवा लेते हैं। वे सोचते हैं कि कन्नौज के शत्रु चौहान हैं और आल्हा–ऊदल के रहने से शत्रु को डर लगेगा। गढ़ गाँजर पर कर बकाया है और महोबा के नृप से मित्रता का व्यवहार है। इन तीनों से स्पष्ट है कि कन्नौज के राजा राजनीति में चतुर थे (इतनी राजधर्म की बातें, मन में राखै चतुर कहाय।') मदिरामत्त हाथियों को पछाड़ने की परीक्षा में सफल होने पर आल्हा–ऊदल को रिजगिरि के चन्द्रावती दुर्ग में रहने के लिए निश्चित हो गया और उन्हें भूमि लगा दी गयी।

'लाखन कौ ब्याव' (बूंदीगढ़ की लड़ाई) में बूँदी के राजा गंगाधर की बेटी कुसुमदे के विवाह की समस्या है, जिससे नेंगी को बुलवाकर किसी राजा को लगन चढ़ाने भेजा जाता है। सभी राजा टीका लेना अस्वीकार कर देते हैं, तब वे कन्नौज आते हैं और लाखन के हाथ पर टीका चढ़ाना चाहते हैं। राजा जयचंद मना करें कि ऊदल उन्हें राजपूती धर्म और जगहँसायी की बात कहकर स्वीकृति के लिए राजीकर लेता है और जयचंद जैसा कुशल राजनीतिज्ञ ऊदल पर ही पूरी जिम्मेदारी डाल देता है। (मनै तुम्हारे

जैसो आवै, सो तुम करो उदैसिंह राय)। तिलक में अपशकुन होने पर भी ऊदल वीरता की दुहाई देकर पूरी जिम्मेदारी मान लेता है –

अगुना सगुना के भल सोचें, बधिया लाद बनज को जाय।
जहँ लाखन को गिरै पसीना, वहँ बह चलै रक्त की धार।
मार सिरोहिन के चहलाकरों, सातउँ भँवरी देंउ डराय।

कन्नौज के वर्णन में तत्कालीन दरबारी प्रवृत्ति और नगरवर्णन की परम्परा, दोनों का समन्वय है। दरबार की शोभा सभासदों, राजसभा के ऐश्वर्य और राजा के राज्य–विस्तार से होती थी, जबकि नगर की शोभा नगरी के विस्तृत क्षेत्र, द्वार पर सोने के कलशों की समृद्धि, पनघट पर नारियों के सौन्दर्य, द्वारों पर केवड़े की गंध और गलियों में अनार के चू पड़ने से होती है। पहले दरबार या राजसभा की शोभा का वर्णन देखें –

खम्भ अठासी के बैठक रई, बारह खम्भ बनी दालान।
गरूओ राजा मध्यदेस को, जहँ पै बड़े सभासद आयँ।
उजरी बैठक नृप जयचंद की, ताकी सोभा न बरनी जाय।
रतन सिंहासन जयचंद सोहैं, जो कनवज के राजाधिराज।
हीरा दमकत रयै माथे माँ, कलगी माँ जड़े जवाहिर लाल।
अजैपाल कनवज में हुइगे, जिनको उदै अस्त लौं राज।
चार चक्कवै को नाती जो, लाखन राना जिनको नाँव।

इस ऐश्वर्य से जगमगाते वर्णन से सिद्ध है कि हर राजा के वर्णन में इसी तरह की उक्तियों की अधिकता है। सभासदों की नामावली और उनके हथियारों से राजसभा का वीरत्व भी टपकता है। नगर–वर्णन में विस्तृत क्षेत्र के लिए हाटों की माप होती थी। कन्नौज में 52 हाटें लगती थीं (भारी बस्ती कनवज गढ़ की, जहँ पै बावन लागें हाट) लाखन दूल्हा बनकर कानों में कुण्डल, हाथों में सोने के कड़ा और कंकर, पाँवों में तोड़ा और मोतियों का हार पहने थे। लाखन की पत्नी कुसुमा का श्रृंगार 'सोरह सिंगार बारह आभूषण' वाला था, कुछ पंक्तियाँ देखें –

माथे सोहै छोटी बूँदी, मानो किरन फोर दई भान।
बैंदा की सोभा ती न्यारी, उगो चंद्रमा कर सिंगार।

कानन माँ सोहैं करनफूल, जिनकै चमक कपोलन छाय।
तीन फाँद कै रहे नथुनिया, गलुवा चूम–चूम रहि जाय।
लटकै लटकन बा नथुनी माँ, ताला माँ कमल फूल उतरायँ।

पाहिरें पैजना चरखारी के, जिनके कँकरा काम जगायँ

कन्नौज–संबंधी लोकगाथाओं में कई विशेषताएँ ऐसी हैं, जो 'आल्हा' में अन्यत्र नहीं मिलतीं। 'आल्हा–मनौआ' में लाखन के महोबा जाने की तैयारी सुनकर कुसुमा की वेदनापरक पंक्तियों में जो भाव की तीव्रता, गहराई और व्यापकता है, वह अन्य वियोगपरक स्थलों में दुर्लभ है। कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं –

एड़िन महावर न मैलो भा, ना धोबी घर गओ पटोर।
लाज नैनवन कै छूटी ना, ना मिटगै काजर की कोर।
पियरी कलइयाँ मोरी सैयाँ, मोरे तन में उठै मरोर।
छोड़ चले परदेसै स्वामी, बैरी बिरहा जनाबै जोर।

बादर उमड़िहैं चारउँ दिसि माँ, निसि माँ रहैं अंधरिया छाय।
जब सुधि ऐहैं हमें तुम्हारी, तब हम करिहैं कौने उपाय।
झींगुर दादुर पपिहा बोलैं, लगिहैं हिये काम के बान।
बिरह ज्वाल जियरा झूलसैहैं, तब कैसैं हम रखिहैं प्रान।

कारी बदरिया तुमकों सुमिरों, कौंधा बीरन की बलि जावँ।
झमकि बरसि जा मोरे महलन पै, कंता आज रैन रहि जायँ।

वेदना की इस तीखी अनुभूति के बावजूद कुसुमा वीरता के आदर्श को नहीं भूलती और विदा की बेला में क्षात्र–धर्म का पालन करती है। कहती है –

लडियो ऐसें समरभूम में, जुग जुग साकौ चलै तुम्हार।
पाँव पिछारूँ ना धरियो तुम, नहिं छत्रीपन जाइ नसाय।
सो सुन पैहों भगे कनौजी, तो मैं पेट फारि मर जावँ।
समुहै रन में जो तुम जुझिहौ, लैकें संग सती हुइ जावँ।

और लाखन का शव कन्नौज आने पर कुसुमा सती हो जाती है–

कुसुमा पति सिर लै गोदी माँ, बैठी पिया मिलन के काज।
काजर पार हाँथ पै कुसुमा, पति के नैनन दीन लगाय।
रगड़ो मस्तक जब सतवंती, तुरतैं उठी अगिनि भहराय।
जै जैकार भई सत्ती की, पुर नर नारी पूजो जाय।

दूसरी विशेषता है लाखन की युद्धवीरता, जो 'नदी बेतवा को दरेरो' और 'बैरागढ़ की लड़ाई' में फलीभूत हुई है। 'नदी बेतवा को दरेरो' में लाखन को चारों ओर से घेरकर विवश कर दिया गया था। चारों ओर से सेल्ह, कटार और सीग की मार हो रही थी, लेकिन लाखन सभी के वारों को बचा रहा था। युद्ध में ऐसी परिस्थिति और उस परिस्थिति में इतनी वीरता तथा बचाव की इतनी कुशलता दुर्लभ है। कुछ पंक्तियाँ देखें –

चारउँ कोदी चारउँ दिसा सें, अब लाखन का लीन घिराय।
घिरगै हँथिनी अब लाखन कै, नदी बेतबै के मैदान।
बाइस हाँथी के घेरा माँ, अकिले घिरो कनौजीराम।
बाइस सेल्हा कै धानी रयै, ऊपर भई कटार कै मार।
अगल बगल और चहूँ ओर सें, इकदम होय सांग कै मार।
सब बारन के वार बचाबै, नाती वेनी चक्कवै क्यार।
पाँव पछाडूँ खाँ डारै ना, दोउ हाँथन सें करै तरवार।

लाखन की वीरता की प्रशंसा प्रबल शत्रु पृथ्वीराज चौहान तक करते हैं –

जहँ पै हाँथी दिल्लीपत कौ, भुरही टक्कर मारी जाय।
आँखें मिच गइँ दिल्लीपत की, हाँथी पछलो कर चिग्घाड़।
दाँतन अँगुरिया पृथिवी दाबै, औ लाखन सें लाग बतान।
धन–धन ऐसी महतारी खाँ, जिनकी कोख लये औतार।

जेहि जस लरका मोरे होते, होतो उदै अस्त लौं राज।

तीसरी विशेषता कन्नौज के संस्कारों और संस्कृति की है। लाखन के विवाह में मण्डप, नहछू, तेल चढ़ाना, खौर काढ़ना, मंगलाचार, ऐपनबारी, भाँवरें पड़ना, कलेवा, विदा, देवी–देवता पुजना, देवी फूलमती की पूजा, हौंते लगना, कंकन छूटना आदि संस्कारों का उल्लेख है। यदि लोकमहाकाव्य 'आल्हा' में वर्णित संस्कृति को युद्धपरक संस्कृति कहें, तो अत्युक्ति न होगी। विवाह जैसे महत्वपूर्ण लोकसंस्कार का आधार भी युद्ध ही है। लेकिन तत्कालीन युद्धपरक संस्कृति भी सत्य और नैतिकता पर आधारित थी। उसमें पशुता और अनीति के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।

बहुधा यह कहा जाता है कि 'आल्हा' की वस्तु में 'जोहि की बिटिया अच्छी देखें, जोरा जोरी करें बियाह' ही केन्द्रीय तत्व है अर्थात् सुंदर युवती देखकर उससे जबरन विवाह करना ही आल्हा के कथानक का अभिप्रेत है। लेकिन ऐसा वही कह सकता है, जिसने आल्हा न पढ़ा हो। 'लाखन कौ व्याव' में बूँदीगढ़ के राजा गंगाधर के सुपुत्र मोती अपनी बहिन कुसुमा की लग्न कन्नौज के युवराज लाखन को चढ़ा देता है, तब कन्नौज से बरात जाती है। आल्हा, मलखान, उदल आदि के विवाहों में पूर्वनिश्चित परिस्थिति होती है, केवल सुन्दरता का अपहरण नहीं। यह अवश्य है कि स्वयंवर जैसे प्रण हर राजा के होते थे, जो वीरता की कसौटी के लिए ही किये जाते थे। वर को कन्या का वरण करने में वीरता का साधन ही जरूरी था। वीरत्व का यह आख्यान सांस्कृति तत्वों से संबद्ध है नीतिपरक संस्कृति के कुछ साक्ष्य निम्नांकित पंक्तियों में मिलते हैं –

सरग मड़ैया सब काहू कै, कोउ आज मरै कोउ काल।
खटिया परकें जो मर जैहौं, तो मरघटा फूँक दओ जाय।
जो मरजैहों रनभूमि में, साका चलो अंगारूँ जाय।

(नदी बेतवा कौ दरेरौ)

लोभ दिखइयो उन सूरन खाँ, जिनका माया में बिसवास।
मिलकें धोखा दैहै जो कोऊ, रौरो नरक भोगिहै जाय।

(वही)

युद्धपरक संस्कृति में युद्ध मे लड़ने, विजय प्राप्त करने और पराजित को आश्रित बनाने का उद्देश्य प्रमुख था और युद्ध में जूझने पर पत्नी का सती होना भी सतीत्व धर्म का पालन था। युद्ध के चित्रों से जिस वीरत्व की जाग्रति होती है, वह आज भी सैनिकों के लिए तो उपयोगी है ही, आम आदमी भी उनसे उत्साह पाता है। राष्ट्रीयता के जागरण में 'आल्हा' और 'आल्हा' के इन चित्रों का योगदान महत्वपूर्ण है। कुछ साक्ष्य प्रस्तुत हैं –

मैनें प्रन कीन्हो मलहना सें, दैहों राज हित पूत कटाय।
छत्रानी माता को प्रन तुम, राखो दोउ पूत बलधाम।

(आल्हा मनौआ)

आवागमन लगो रत सबको, कौनौ आबै कौनौ जाय।
मरबो जीबो भारत करबो, औ रनखेत रोपबो पाँव।
छत्री हुइकें पाँव न टरिहौं, जो तन रहै चहै चलो जाय।

(बैरागढ़ की लड़ाई में लाखन का कथन)

आल्हा रोबैं ऊदल रोबैं, लै लै नाँव कनौजी क्यार।
हाय बिधाता जौ का कीन्हो, हमरो रतन छीन लओ आज।
कबहूँ न जानो लाखन राना, ऊदल दूजी मात का लाल।
ऊदल बोलो हमहूँ मरबे, जीकें का करब कनौजीराय।
बदला लैबे तुम्हरो लाखन, चाहे प्रान रहें चहै जायँ।
भली निभाई लाखन राना, जो तन तजो हमारे काज।

(बैरागढ़ की लड़ाई)

पहले उद्धरण में राजहित के लिए पुत्र का बलिदान उचित माना गया है। दूसरे में लाखन की दृढ़ता और वीरता का साक्ष्य है। तीसरे में लाखन के युद्ध में जूझने पर आल्हा–ऊदल तक रो पड़ते हैं और बदला लेने की प्रतिज्ञा करते हैं। 'आल्हा' के कथानक में महोबा और कन्नौज की यह मित्रता एकता का अनुपम उदाहरण है।

– मंगलम्, सर्किट हाउस मार्ग, छतरपुर □

बुन्देली कवितायें

– राघवेन्द्र सिंह

दमकें चन्दा घाँई मुइयाँ।
खोरन–खोरन रोज दिवारी, फैली राय जुँदइया।
छिती–बिती होवें सब आफत, खुशियाँ हौंय गुइयाँ।
विन्तवार हों मैं कर जोरें, सुनियो राम गुसईयाँ।
सबखौं होवे भौतई नोनी, नइ साल की छइयाँ।

जय जय बुन्देली मैया।
बब्बा से नाती के संग लो, पकरे चलीं उँगरिया।
फूलन से बोलो फूलन सी, काँटन देव मुँगरिया।।
छत्रसाल अर बखतबली ने, पूजी तोरी पुतरिया।
तोरे चरन की धूरा पूजत, गैल की हमई कँकरिया।।

दददा मोय फौज मे जाने।
ने हटको तुम मोरे लाने, जो मन अब न माने।
सबरे दे रय प्रान वतन खाँ, अब न पाछें राने।।
जो लौं बैरव खून ईतन में, देश को गाना गाने।
बगल में रै के घात जो कर रव, ऊको नाव मिटाने।।

कक्का, नव जमानो आ गव।
परदनिया की चाल चली गई, पेंट में सबई समा गव।
पाँव परत में क्रीज बिगर रई, 'हाय' में हिया हिरा रव।।
बुन्देली अब कोइ ने बोले, अंगरेजी पर आ रव।
अपने में सब मगन रमैया, को की खाँ समझा रव।।

– 13/10, बख्त बली शाहवार्ड, शाहगढ़, जिला सागर □

बुन्देलखण्ड की पुरा सम्पदा



– डॉ. हरिमोहन पुरवार

किसी भी समूह, समाज अथवा देश की पुरासम्पदा उसके अतीत की सांस्कृतिक चेतना का दर्पण होता है। इस दर्पण से जहां हमें संस्कृति के सूत्र मिलते हैं वहीं हमें आत्म निरीक्षण का अवसर भी प्राप्त होता है जिसके माध्यम से समाज में एकरसता प्रेम व सौहार्द की रसवन्ती बहायी जा सकती है।

चौदहवीं शताब्दी में वाराणसी के गहरवार वंशीय हेमकर्ण द्वितीय की रक्त बूँदों के नाम पर माँ विन्ध्यवासिनी की परम अनुकम्पा से निर्मित यह बुन्देली भू–भाग उत्तरी अक्षांस 230–45′ तथा 260–50′ और पूर्वी देशान्तर 770–52′ तथा 820 के मध्य है। इससे पूर्व सोलह महाजनपदों के समय, यह क्षेत्र 'चेदि' महाजनपद के अन्तर्गत था। ऋग्वेद सप्तम 5–37–39 में भी चेदि के लोगों का उल्लेख मिलता है। कनिघंम की आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग 2 पृष्ठ पर अंकित पृथ्वीराज चौहान के शिलालेख से यह स्पष्ट होता है कि बारहवीं शताब्दी में इस प्रदेश का नाम जेजाक मुक्ति था। इसकी सीमाओं के विषय में विद्वानों में मतभेद है परन्तु महाराज छत्रसाल के राज्य की सीमाओं से सम्बन्धित निम्न दोहे से बुन्देलखण्ड की सीमाओं के निर्धारण में सुगमता होगी –

इत यमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टौंस।
छत्रसाल सौं लरन की, रही न काहू हौंस।।

वर्तमान में उत्तर प्रदेश के झांसी, ललितपुर, जालौन, महोबा, बाँदा, हमीरपुर तथा मध्यप्रदेश के सागर, छतरपुर, टीकमगढ़, पन्ना, दमोह, के साथ साथ ग्वालियर की भाण्डेर तहसील, दतिया जिला, शिवपुरी की पिछोर तहसील, भिण्ड जिले की लहार तहसील तथा गुना जिले का चंदेरी का भाग इसी बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत माना जा सकता है।

बुन्देलखण्ड की पुरा–सम्पदा के अन्तर्गत प्रागैतिहासिक काल–ताम्रयुगीन अवशेषों के साथ–साथ, पुरालेखों, स्थापत्य, मूर्तिशिल्प तथा चित्रकला के विभिन्न पहलुओं से होकर पुरातात्विक स्थलों पर जब हम पहुंचते हैं तब उनकी भव्यता व सुन्दरता देखकर हमारे मन मयूर नृत्यरत हो उठते हैं।

प्रागैतिहासिक एवं ताम्रयुगीन पुरावशेष :–

पाषाण काल को ही प्रागैतिहासिक काल कहा गया है जिसकी समयावधि 50000 ई. पर्व से 2000 ई. पूर्व मानी गई है। ग्रेनाईट पत्थर की चिप्पड़े उतारकर जो पाषाण उपकरण बनाये जाते थे उनकी कई उद्योगशालायें डॉ. एच.डी. संकालिया ने ललितपुर क्षेत्र में खोज निकाली हैं। झांसी तथा छतरपुर के संगम स्थल लहचूरा से पुरापाषाणकालीन तमाम उपकरण प्राप्त हुए हैं। बांदा जिले में यमुना के तट पर बसे आठ कि.मी. के विस्तृत क्षेत्र में फैले बरियारी स्थान पर फ्लैक्स और कोरस के अलावा क्लीवर्स हस्तकुठार तथा स्क्रैपर्स बहुतायत में मिले हैं। कर्वी तहसील के सिद्धपुर स्थान से उच्च पुरापाषाण समय के क्रेस्टोक्रस्टलाइन पत्थर के नुकीले उपकरण मिले हैं।

जालौन जनपद के मुख्यालय उरई में एक मकान की नींव की खुदाई में ताम्रयुगीन उपकरणों की उद्योगशाला भी मिली है जिसमें ताम्रपिण्ड, ताम्र के हाथ के छल्ले, ताम्र चक्र, ताम्र कुठार, ताम्र फेरुल, ताम्र छेनी के साथ साथ अर्द्ध मानव की आकृति भी प्राप्त हुयी है। ये सभी उपकरण बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में संग्रहीत हैं।

पुरालेख :–

पुरालेखों के मनकों को एक सूत्र में पिरोकर एक सुस्पष्ट इतिहास ज्ञान की माला तैयार होती है। इसी कारण ये इतिहास ज्ञान के सूत्रधार कहलाते हैं। भवनों के द्वार पर, मन्दिरों के स्तम्भों पर, पाषाण की चट्टानों पर, मूर्तियों की पीठिका पर, ताम्रपत्रों पर, कागजों पर ये पुरालेख आज जब हमें मिलते हैं तो हम अपने अतीत के उन स्वर्णिम क्षणों को अपनी स्मृति में उतार कर आल्हादित हो उठते हैं।

बुन्देलखण्ड के सबसे प्राचीन अभिलेखों में दतिया जिले के गुर्जरा ग्राम में सिद्धों की टौरिया स्थान पर सम्राट अशोक के समय का एक शिलालेख है जिसमें पराक्रम के फल के विषय में बतलाया गया है। झांसी जिले के एरच ग्राम से ब्राह्मीलिपि में लिखी गई कई ईटें प्राप्त हुयीं हैं। डॉ. ओ.पी.एल. श्रीवास्तव ने इन ईटों पर अंकित पुरालेखों की सहायता से एरच की बारह नई डायनेस्टीज की खोज की है। ये ईटें ईसा से 220 वर्ष पूर्व से लेकर 230 वर्ष ईसा तक की हैं। सागर जिला के एरण स्थान से एक अति महत्वपूर्ण ब्राह्मीलिपि में उत्कीर्ण गुप्त काल का अभिलेख प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख को शिवलिंग में परिवर्तित कर दिया गया है। एरण में ही वराह मूर्ति पर खुदा हुआ अभिलेख भी बहुत महत्वपूर्ण है। इसका उल्लेख जेम्स प्रिन्सेप की पुस्तक जे.ए.एस.बी. भाग सप्तम के पृष्ठ संख्या

631 पर है। देवगढ़ के दशावतार मन्दिर से भी गुप्त कालीन अभिलेख मिले हैं। कनिंघम की आर्किलोजिकल सर्वे रिपोर्ट के भाग दस के पृष्ठ संख्या 102 पर देवगढ़ की राजघाटी से प्राप्त ब्राह्मी लिपि में अंकित एक अभिलेख बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें ब्राह्म लिपि के नीचे शंख लिपि में कुछ अंकित है। इण्डियन एन्टीक्यूटी के भाग 20 में श्री ई. हुल्स ने देवगढ़ की राजघाटी में उपलब्ध कीर्तिवर्मन के समय के अभिलेख का उल्लेख किया है।

बुन्देलखण्ड में अधिकांश अभिलेख चन्देलकालीन हैं। खजुराहो में श्री हनुमान जी की पाद पीठिका पर अंकित अभिलेख संवत 940 का है जिसपर प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा की तिथि लिखी हुयी है। हमीरपुर में ननयोरा गग्रम में बुन्देली राज धंग के शासनकाल का एक ताम्र पत्र प्राप्त हुआ है। महोबा, चांदपुर, मऊ (झांसी), औगसी, कालिन्जर, अजयगढ़ (पन्ना), खजुराहो आदि स्थानों से मदनवर्मा के कई अभिलखे मिले हैं।

फारसी में लिखे अभिलेख भी यहां पर मिलते हैं। कोंच (जालौन) में तकिया खुर्रमशाह से सम्बन्धित औरंगजेब आदि के कई फरमान श्री कौकब शाह के निजी संग्रह में संग्रहीत हैं। झांसी गजेटियर में एरच की जामा मसजिद की नींव रखने सम्बन्धी अभिलेख का उल्लेख है। यह अभिलेख 711 हिजरी का है।

स्थापत्य :–

भौगोलिक स्थिति के अनुरूप ही भवनों का निर्माण किया जाता है। अतः भिन्न–भिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में भवन निर्माण की शैली परिवर्तित हो जाती है। भवन निर्माण की यही शैलियां स्थापत्य कला के अन्तर्गत आतीं हैं।

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में मन्दिर एवं दुर्ग स्थापत्य दोनों ही प्रचुरता के साथ देखने को मिलते हैं। इस क्षेत्र में स्थापत्य का प्रारम्भ ईसवी सन् से पहले ही प्रारम्भ हो गया था। सांची एवं भरहुत के विशाल बौद्ध स्तूप, इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

गुप्तकाल में मन्दिर स्थापत्य पूर्णरूपेण विकसित हो चुका था। इन मन्दिरों को ऊँची जगती पर बनाया गया था जिनमें प्रवेश के लिये कई सोपानों का प्रयोग किया गया था। मन्दिरों की दीवारें सादगी के लिए होती थीं परन्तु द्वारों को मंगल कलश, पत्रवल्लरी आदि से सजाया जाता था। मन्दिर की चौखटें भी बेलबूटों से अलंकृत होती थीं व गर्भगृह की छत चपटी होती थी। श्री एम.एल. निगम ने अपनी पुस्तक कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड में पन्ना स्थित नचना कुठरा के पार्वती मन्दिर को गुप्तकालीन वास्तुकला की श्रेणी में ही रखा है। एरण के मन्दिर भी इसी स्थापत्य की कड़ी हैं। कनिंघम ने अपनी सर्वे रिपोर्ट के भाग 10 में एरण के वराह मन्दिर, विष्णु मन्दिर को भी इसी श्रृंखला में रखा है। देवगढ़ का वराह मन्दिर, दशावतार मन्दिर नचना का चतुर्मुखनाथ मन्दिर भी गुप्त कालीन स्थापत्य के अनुपम उदाहरण हैं।

प्रतिहारकालीन मन्दिरों में कुरैयावीर (ललितपुर) का मन्दिर सबसे प्राचीन है। बरुआसागर का 'जराय का मठ', टीकमगढ़ जिले में मड़खेरा गांव का सूर्यमन्दिर, देवगढ़ के जैन मन्दिरों में बारहंवा मन्दिर, गुना जिले के टप्पा का मन्दिर भी प्रतिहार कालीन है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में चन्देलकालीन मन्दिरों की बहुतायत है। खजुराहो के मन्दिर, महोबा, बानपुर, चांदपुर, दुधई, रहलिया, गैराहा आदि के मन्दिर चन्देलकालीन स्थापत्य की अप्रतिम धरोहरें हैं। खजुराहो के कुछ मन्दिर पंचायतन शैली के हैं। ओरछा का लक्ष्मी मन्दिर स्थापत्य एवं यन्त्र का अनुपम मिश्रित उदाहरण है। यह मन्दिर त्रिकोण आकार में बना है जो सिद्धक्षेत्र का परिचायक है तथा मन्दिर की आन्तरिक आकृति चतुर्भुज कमलदल की आकृति में गुम्फित 'श्रीयंत्र' का अनूठा उदाहरण है। कालपी की चौरासी गुम्बद यद्यपि मुसलिम भवन के रूप में अभिलेखों में दर्ज है परन्तु इसका स्थापत्य पूर्णरूपेण हिन्दू स्थापत्य कला का श्रेष्ठ उदाहरण है। चतुर्भुजी वर्गाकार आकृति में मन्दिर की बाह्य भित्ति पर चौरासी दरबाजे और प्रत्येक दरबाजे के ऊपर उल्टे कुम्भ की आकृति के कारण इसे चौरासी गुम्बद की संज्ञा दी गई।

इस क्षेत्र में कालिन्जर का दुर्ग, अजयगढ़ का दुर्ग गढ़कुण्डार का दुर्ग, भारतीय दुर्गों की पंक्ति में अग्रणी स्थान पर है। कालपी महोबा, देवगढ़, मनियागढ़ आदि स्थानों के चन्देलकालीन दुर्ग अजेय थे। यहां पर छोटे छोटे दुर्ग जिन्हें गढ़ियां कहा जाता है, बहुतायत में हैं। ओरछा, झांसी टीकमगढ़, समथर, बिजना आदि के दुर्ग अभी भी बहुत अच्छी स्थिति में हैं। बुन्देलखण्ड के अधिकांश दुर्ग गिरिदुर्ग की श्रेणी में आते हैं।

मूर्तिशिल्प :–

मन की भावनाओं को स्व साकार रूप प्रदान करना ही मूर्तिशिल्प है। मूर्तिशिल्प के क्षेत्र में बुन्देलखण्ड ने जो प्रयोग किये हैं वे आज हमारी विरासत बनकर हमारा मार्ग दर्शन कर रहे हैं। श्री वी.एस. अग्रवाल ने अपनी पुस्तक स्टडीज इन इण्डियन आर्ट में नचना कुठरा से प्राप्त मूर्तियों को विशुद्ध रूप से गुप्त कालीन माना है। इन मूर्तियों में शिवलिंग तथा शिवगण का अंकन एवं श्रीराम कथानक का चित्रण मिलता है। एरण से भी भगवान विष्णु, पशुवराह आदि की मूर्तियां पांचवी छठी शताब्दी की हैं। इन मूर्तियों

का शरीर छरहरा, झीने वस्त्र, सुन्दर केश विन्यास एवं सूक्ष्म अलंकरण हैं।

देवगढ़, सीरोन खुर्द आदि स्थानों से प्राप्त होने वाली मूर्तियां प्रतिहार काल की हैं क्योंकि इनका शरीर सौष्ठव सुन्दर हैं एवं मुख पर भाव की अभिव्यक्ति द्वारा जीवन्तता प्रदान की गई है।

इस क्षेत्र में चन्देलकालीन मूर्तियों का बाहुल्य है। कालिन्जर किले की शिव मूर्तियां, चांदपुर से प्राप्त शिवनृत्य प्रतिमा एवं उमा महेश्वर के साथ रावण अनुग्रह की अनेक प्रतिमायें प्राप्त हुयी हैं। जटामुकुट धारित शिवशीर्ष भी बहुतायत में जहां पर मिलते हैं। इस क्षेत्र में भगवान विष्णु की अनेक प्रकार की प्रतिमायें उपलब्ध हैं। कालपी के पाहूलाल मन्दिर में विष्णु की शयन मूर्तियां अत्यन्त सुन्दर हैं। दुधई, चांदपुर से केशव, नारायण, श्रीधर आदि की सुन्दर प्रतिमायें मिली हैं। चुर्खी, जालौन आदि स्थानों पर गरुण आसीन लक्ष्मी नारायण की मूर्तियां अत्यन्त आकर्षक हैं। पाहूलाल मन्दिर कालपी में दशावतार की मूर्तियां, उरई के रामलला मन्दिर में स्थित दशावतार मूर्तियां तथा एरण में वराह नृसिंह एवं वामन अवतार की मूर्तियां बड़ी लुभावनी है।

इस क्षेत्र में माँ जगदम्बा के विभिन्न स्वरूपों की सुन्दर-सुन्दर मूर्तियां प्राप्त हैं। देवगढ़ स्थित राजघाटी में सप्त मातृकाओं की मूर्ति गुप्त काल की हैं। पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती तथा दुर्गा देवी के साथ साथ पुत्र वत्सला माँ की अनेकानेक मूर्तियां यहां पर मिलती हैं।

पाहूलाल मन्दिर कालपी की नवग्रह मूर्तियां भव्य हैं। दिक्पालों अप्सराओं, यक्षों, गणों तथा विद्याधर आदि की मूर्तियाँ भी यहां पर देखने को मिलती हैं। बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में सूर्यदेव की प्रतिमा, लोक कला का सुन्दर नमूना है। गणेश की प्रतिमायें भी काफी मात्रा में यहां मिलती हैं। जगह जगह पर टेढ़ी टांग वाले हनुमान जी भी बहुतायत में मिलते हैं।

देवगढ़, बानपुर, पावागिरि, सीरोनखुर्द, चांदपुर, दुधई आदि स्थानों पर जैन मूर्तियां मिलती हैं। कालपी में भी जैन मूर्तियां हैं। करनखेड़ा जालौन में एक शिला पट्ट पर बाहुबली का स्थानक मुद्रा में सुन्दर अंकन हैं। जहां इनके शरीर बेल लिपटी है वहीं इनके दोनों ओर गज एवं अप्सराओं का भी अंकन है।

चित्रकला :-

चित्रों के माध्यम से भावों की साकार कल्पना का ताना बाना जब तूलिका एवं रंगों के माध्यम से बुना जाता है तब चित्रकला का प्रादुर्भाव होता है। बुन्देलखण्ड में प्रागैतिहासिक काल की गुफाओं में अंकित चित्रों से चित्रकला की मात्रा प्रारम्भ होकर दीवारों, कागज, कांच, हाथी दांत, वस्त्रों आदि पर रंगों के संयोजन से अनवरत रूप से चली आ रही है। आदि मानवों ने अपने खाली समय की रिक्तता को भरने के लिये अपनी रहने वाली गुफाओं की दीवारों पर जो चित्र अंकित किये हैं, वे समूची मानवजाति की अमूल्य धरोहर हैं।

बांदा जिले के मर्कड़ी तथा मझावन स्थानों से श्री काकबर्न ने गुफा चित्रों की खोज की थी। फिर सरहट, कुरियागढ़, आदि स्थानों पर श्री सिल्वेराड़ ने इन शैल गुहाचित्रों को खोज निकाला। मलवा की गुफाओं में मानव आकृतियों के साथ पशु आकृतियों का भी अंकन मिलता है। इसी भांति नरयावली (सागर) में पशु और मानव आकृतियों के अनेक शैल गुहाचित्र मिले हैं। यद्यपि प्रागैतिहासिक काल के पश्चात् एक लम्बे समय तक चित्रकला के अवशेष यहां पर नहीं मिलते हैं। यहां की चित्रकला पर राजस्थानी, मराठी एवं पहाड़ी शैली की कलम के मिश्रित प्रभाव से बुन्देली कलम का प्रादुर्भाव होता है। ओरछा का लक्ष्मी मन्दिर, जहांगीर महल, चतुर्भुज मन्दिर, दतिया की छतरियां, बानपुर का किला, बिजना का शिवमन्दिर, कुकरगांव (जालौन) का रोपणगुरु मन्दिर, जगम्मनपुर की समाधियां, पन्ना के मन्दिर, गुरसरांय, अभरागढ़, टहरौली का किला, तालबेहट का नृसिंह मन्दिर, मदनपुर के भित्ति चित्र मन को अनायास ही मोह लेते हैं।

महात्मा गांधी संग्रहालय कालपी में संकलित अनेक मुगलकालीन वस्त्र चित्र, भैंड (कोंच) का लाल जी साहब का मन्दिर तो कांच चित्रों से भरा पड़ा है। बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में श्रीगणेश के रेखा चित्र एवं यन्त्र चित्रों का विशाल संग्रह है। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर पूजित श्रीकृष्ण पर यहां की लोक चित्रकला का सुन्दर उदाहरण है।

बुन्देलखण्ड पुरासम्पदा से ओतप्रोत है। आवश्यकता है उस दृष्टि की, उस लगन की, उस भाव की, उस पाथेय की जो इस बिखरे कार्य को समग्र रूप में संजोकर उसके लिये जन अभिरुचि जागरण का वातावरण निर्मित करें।

– निदेशक, बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई

बुन्देलखण्ड में रामभक्त हनुमान के प्राचीन विग्रह एवं पूजा परम्परा

– हरिविष्णु अवस्थी

देशभर में बड़े–बड़े नगरों से लेकर दूरस्थ अंचलों में स्थित छोटे से छोटे ग्रामों तक श्री रामभक्त हनुमान के विभिन्न आकार–प्रकार के विग्रह प्रतिष्ठापित हैं। यह विग्रह ईंट, चूना एवं पत्थरों से सैकड़ों वर्ष पूर्व निर्मित छोटी–बड़ी मड़िया या सीमेण्ट–कांक्रीट से निर्मित किन्हीं नवीन आधुनिक देवालयों में ही विराजमान हो, यह कतई आवश्यक नहीं। इनका दर्शन तो किसी वट, पीपल अथवा किसी विशाल सघन वृक्ष की छाया में, वनाच्छादित भू–भाग, पर्वत शिखर, खोह, सर, सरिता अथवा कूप के तट पर, वाटिका, उपवन, किसी नगर अथवा दुर्ग के प्रवेश द्वार आदि पर भी किया जा सकता है।

श्री रामभक्त हनुमान की इस देश व्यापी प्रतिष्ठा, पूजा, साधना, आराधना के मूल में है माता सीता द्वारा उन्हें दिया गया वरदान –

ग्रामाराम पत्तनेषु व्रजखेटक सदमसु।
वन दुर्ग पर्वतेषु सर्व देवालयेषु च।।
नदीषु क्षेत्र तीर्थषु जलाशये पुरेषु च।
वाटिकोपवनाश्वत्थवटवृन्दा वनादिषु।।
त्वन्मूर्ति पूजयिष्यंति मानवो विघ्नशांतये।
भूतप्रेत पिशाचाद्या नश्यन्ति स्मरणान्तव।।

(आनंद रामायण 1, 12, 147–149 ई.)

श्री रामभक्त हनुमान के देशभर में प्रतिष्ठापित विग्रहों की संख्या दक्षिण भारत की तुलना में उत्तर भारत में अधिक है तथा उत्तर भारत के बुन्देलखण्ड नामक भू–भाग में और अधिक। गुप्तकाल के पूर्व कपि के रूप में अनेक विग्रह प्राप्त होते हैं किन्तु हनुमान के रूप में उनका कोई विग्रह अब तक प्राप्त नहीं हुआ है।

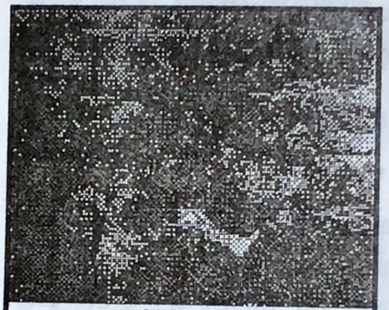
गुप्तकालीन दशावतार का एक मंदिर देवगढ़ (जिला ललितपुर उ.प्र.) में स्थित है। ''इस मन्दिर के तीन ओर सुन्दर फलक लगे हुए हैं जो भारतीय कला के अनूठे नमूने हैं। इस मंदिर की ऊँची जगती में फलकों की दो पंक्तियां थी जिनमें रामायण और कृष्ण लीला के दृश्य अंकित थे। सम्प्रति दो तीन फलकों को छोड़ कर शेष निकाल लिए गए हैं जो देवगढ़ स्कल्पचर शेड में सुरक्षित हैं और कुछ राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में प्रदर्शित हैं। रामायण दृश्यों में सीताहरण, अहिल्या उद्धार तथा शूर्पणखा प्रसंग तथा कृष्ण लीलाकनों में नन्द–यशोदा आदि उल्लेखनीय हैं।''[1]

देवगढ़ से प्राप्त पाषाण फलकों में से एक फलक पर सुग्रीव मदिरा पान करते हुए अंकित हैं। ये मस्त हो गए हैं तारा इनके पीछे खड़ी है और हनुमान इनको सच्चे सचिव के रूप में राम कार्य का स्मरण दिला रहे हैं जैसा कि बाल्मीकि रामायण में (किस्किन्धा काण्ड 29–8–27) वर्णन है। इनके मस्तक पर मुकुट कानों में कुण्डल तथा गले में हंसुली है। इस विग्रह में इनकी मुख– मुद्रा चिन्तित दिखाई गई है। कदाचित राम कार्य को सुग्रीव के द्वारा विसार देने से ये चिन्तामग्न हैं। (देखें चित्र क्र. 1)



चित्र क्र. 1
हनुमान सुग्रीव को समझाते हुए देवगढ़ (ललितपुर) गुप्तकाल

यहीं के एक दूसरे फलक पर ये दोनों हाथों से एक पहाड़ उठाए दिखाये गए हैं – जैसे यक्षों को दिखाया जाता है। यह पहाड़ द्रोणागिरि ही होना चाहिए। हनुमान की इस मूर्ति में इनकी दृष्टि अन्तर मुखी है। ये मस्तक पर मुकुट ध ारण किये हुए हैं। इनके कानों में कुण्डल हैं, गले में हँसुली तथा मणिबन्ध पर वलय है। एक चुना हुआ उत्तरीय इनके दोनों कंधों से लटक रहा है। यहां ये कार्यरत दिखाई दे रहे हैं। यह इनका संकटमोचन स्वरूप है तथा वाल्मीकि रामायण की कथा से सम्बन्धित है।''[2] (देखें चित्र क्र. 2)



चित्र क्र. 2
हनुमान द्रोणागिरि को दोनों को उठाये हुए देवगढ़ (ललितपुर) गुप्तकालीन

एक अन्य मूर्ति में वे श्रीराम से मिलते हुए दिखलाये गये हैं। ऐसे ही वाली–सुग्रीव के युद्ध के समय वे पीछे खड़े हैं। मध्यप्रदेश के नचना नामक स्थान (जिला पन्ना) से प्राप्त एक शिलाखण्ड पर श्री हनुमान सुग्रीव के साथ श्री राम के सामने खड़े हैं और श्रीराम के पीछे लक्ष्मण जी स्थित हैं।''[3] स्पष्ट है कि देवगढ़ एवं नचना से प्राप्त शिला खण्डों पर बाल्मीकि रामायण के विभिन्न कथा प्रसंगों का अंकन हुआ है। गुप्तकाल से ईसवी आठवीं शदी तक की



चित्र क्र. 3
हनुमान प्रतिहार कालीन ऊमरी (टीकमगढ़)

अवधि में श्रीरामभक्त हनुमान की कोई स्वतंत्र प्रतिमा बुन्देलखण्ड में कहीं भी प्राप्त नहीं हुई है।'' प्रतीहारकालीन मन्दिर मूर्तियाँ, अभिलेख तथा सिक्के इस क्षेत्र में प्राप्त हुए हैं जिनसे यहाँ उनके शासन होने की बात भली भांति सिद्ध हो जाती है। देवगढ़ अभिलेख में वणित भोज कलोज का गुर्जर– प्रतिहार राजा मिहिर भोज (सन 836–885 ई.) ही है। इसकी तिथि देवगढ़ अभिलेख में विक्रम संवत 919 तथा शक सं. 784 दी गई है जो ई. सन् 862 के समय में पड़ती है। यह भोज की पहली ज्ञात तिथि है। भोज के 'आदि वराह' प्रकार के सिक्के इस क्षेत्र में बहुतायत संख्या में मिले हैं। इस प्रकार यह निर्विवाद है कि 9 वीं शती ई. में भोज का साम्राज्य पूरे बुन्देलखण्ड में फैला था।[4] प्रतिहार– सम्राटों के शासनाल में भी हनुमान की पूजा के लिए अनेक पाषाण प्रतिमाओं का निर्माण किया गया था।''[5]

जिला टीकमगढ़ में स्थित ऊमरी एवं मड़खेरा नामक स्थानों पर प्रतिहार– कालीन सूर्य मंदिर विद्यमान हैं। ऊमरी के सूर्य मंदिर परिसर में ही श्री रामभक्त हनुमान का विशाल एवं भव्य विग्रह प्रतिष्ठापित है। (देखें चित्र क्र. 3) ऊमरी से दस किलोमीटर उत्तर में 'बड़ागांव धसान नाम का एक बड़ा कस्बा है जिसमें एक विशाल पीपल की सघन छाया में रामभक्त हनुमान की एक विशाल प्रतिमा प्रतिस्थापित है जो 9वीं शती ई. की प्रतीत होती है। नृवराह के विग्रह की भांति ही इनका शरीर मनुष्य का है और मुख कपि का। स्थानक शैली में निर्मित इस विग्रह का दायाँ हाथ मस्तक के ऊपर स्थित है जिसमें उन्हें कटार पकड़े हुए प्रहार मुद्रा में दर्शाया गया है। वायां हाथ वक्ष पर व्याख्यान जैसी मुद्रा में स्थित है। थूथन बाहर निकला हुआ है तथा नेत्र गोल हैं। बाहुओं पर कड़े के समान अंगद शोभित हैं। कटि पतली जिसमें मेखला में कटार का कवच बंधा हुआ है। अधोवस्त्र के रूप में चड्डी तथा दृष्टि सामने की ओर है। दोनों पैर अत्यंत सुदृढ़ प्रतीत होते हैं पाद–पीठ भूमिगत होने के कारण पंचों की स्थिति स्पष्ट नहीं है। लांगुर पृष्ट भाग में चक्राकार है। (देखें चित्र क्र. 4) डॉ. विश्वम्भर शरण पाठक के अनुसार ''हनुमान मूर्ति की शैली और विधान पर आदि वाराह का प्रभाव प्रतिहारों के माध्यम से आया होगा।[6] बुन्देलखण्ड में प्रतिष्ठापित श्री राम भक्त हनुमान का यह सबसे प्राचीन विग्रह है। हो सकता है कि पाद–पीठ पर विग्रह निर्माण सम्बन्धी कोई शिला–लेख अंकित हो किन्तु उसके भूमिगत होने के कारण ठीक–ठीक कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।



चित्र क्र. 4
हनुमान, बड़ागाव धसान (टीकमगढ़)

खजुराहो (जिला छतरपुर) में प्रतिष्ठापित श्री रामभक्त हनुमान के तीन प्राचीन विग्रहों का वर्णन प्रो. कृष्णदत्त बाजपेयी ने किया है। यथा – ''खजुराहो में श्री हनुमान जी की तीन उल्लेखनीय स्वतंत्र प्रतिमायें मिली हैं। पहली महाकाय मूर्ति खजुराहो के पश्चिमी मन्दिर–समूह से गाँव की ओर जाती हुई सड़क के किनारे बनी हुई मठिया में प्रतिष्ठापित है। यहाँ पहले श्री हनुमान का मंदिर रहा होगा। यह प्रतिमा विशेष महत्व की है। इसकी चरण–चौकी पर हर्ष–संवत 316 (922 ई.) का लेख उत्कीर्ण है। खजुराहो में उपलब्ध लेखों में यह सबसे अधिक प्राचीन माना जाता है। मूर्ति में वानरमुख श्री हनुमान का दाया पैर पाद पीठ पर रखा है। कुछ ऊपर उठा हुआ बायाँ चरण पदमपत्र पर टिका है। नीचे अपस्मार पुरुष दिखाया गया है। ऊपर उठा हुआ दायाँ हाथ सिर पर है, मुड़ा हुआ बायां हाथ वक्षः स्थल पर रखा है, लम्बी लांगुल ऊपर मुड़ी हुई दिखाई गयी है। उनके गले में लम्बी वनमाला सुशोभित है। उनकी दायीं ओर कटि के समीप अंजलि–मुद्रा में हाथ जोड़ कर बैठे हुए भक्त की लघु आकृति है।

खजुराहो में श्री हनुमान की दूसरी मूर्ति वर्तमान 'वनखण्डी महादेव' मंदिर के भीतर है। इस मूर्ति का निर्माण काल दसवीं शती है। पहली मूर्ति के समान यह भी वीरभाव में है। इसमें अपस्मार पुरुष सपत्नीक न होकर अकेला है। मूर्ति में लम्बी सांग्ल नहीं दिखायी गयी है। उनका मुख सामने की ओर है और पृष्ठ भाग नहीं दिखाया गया है। तीसरी प्राचीन मूर्ति खजुराहो गाँव के पास निनोरा ताल के किनारे पर बनी मठिया में सुरक्षित है। इसकी रचना पहली दोनों प्रतिमाओं जैसी ही है। इन तीनों प्रतिमाओं

की पूजा अभी भी होती है। उन पर चढ़ी हुई सिंदूर की परतों से इनकी प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है।

श्री हनुमान की इन स्वतन्त्र मूर्तियों के अतिरिक्त खजुराहो के शिलापट्ट पर श्रीराम तथा श्रीसीताजी के साथ हनुमान दिखाये गये हैं। यह शिलापट्ट, मड़िया के बहिर्भाग में लगा है। इसमें श्री राम के पार्श्व में श्री सीता खड़ी हैं। दायीं ओर खड़े हुए लक्ष्मण जी की लघुआकृति बनी है। वे करण्ड–मुकुट धारण किये हुए हैं। उनके मस्तक पर श्री राम अपना दक्षिण कर पालित मुद्रा में रखे हुए हैं। इस शिलापट्ट का निर्माण काल ई. दसवी शती है।[7]

प्रो. बाजपेयी ने खजुराहो में प्रतिष्ठापित श्री हनुमान की महाकाय मूर्ति जिसकी चरण चौकी पर हर्ष संवत् 316 (922 ई.) का लेख उत्कीर्ण है को खजुराहो में उपलब्ध लेखों में सबसे प्राचीन माना हैं। डॉ. ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा भी इसे ही महत्वपूर्ण मानते हुए लिखते हैं कि –"खजुराहो ग्राम में स्थित अनेक मंदिरों में भी हनुमान जी की प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण मूर्ति एक आधुनिक देवालय में है, जिसकी पीठिका पर हर्ष संवत् 316 (922 ई.) का लेख उत्कीर्ण है।"[8] किन्तु डॉ. एस.डी. त्रिवेदी ने खजुराहो में इससे भी पूर्व की एक श्री हनुमान मूर्ति के सम्बन्ध में लिखा है कि – "खजुराहो में ज्ञात सबसे प्राचीन तिथि युक्त अभिलेख एक विशाल हनुमान की पाद–पीठ पर खुदा हुआ है। इस पर तिथि सं. 940 कनिंघमने पढ़ी है। पाठ इस प्रकार है :

ॐ चौल्ला पाहीलपुत्रस्य गहिलस्य सुतः श्रीमान हनुमान्य
संवश्रे 940 माघ सुदि 9 वनात्मज श्री अकारोद्वर्म्मया
श्री हनुमन्तं गोल्लाकः प्रनमति लोक्या गोल्लाको प्राकृतं हरि।।

इसका भावाशय है कि गाहिल के पुत्र गोल्ल द्वारा सं. 940 माघ सुदी 9 को हनुमान की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गई और वह गोल्लक हनुमान को प्रणाम करता है। इस अभिलेख में किसी राजा का उल्लेख नहीं है।"[9] डॉ. त्रिवेदी के इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हर्ष–संवत् 316 (922 ई.) से भी पूर्व सं. 940 (883 ई.) में निर्मित श्री हनुमान का विग्रह ही खजुराहो में विद्यमान विग्रहों में सबसे प्राचीन है।

खजुराहो में प्रतिष्ठापित श्री हनुमान के चन्देलकालीन विग्रहों के अतिरिक्त रामायण की कथा प्रसंगों के आधार पर देवगढ़ के गुप्तकालीन फलकों की ही भांति कुछ फलक पार्श्वनाथ मंदिर में विद्यमान है। "पार्श्वनाथ के मंदिर में रामसीता के साथ हनुमान की मूर्ति है। इसमें राम को चतुर्भुज दिखाया है। यों मध्ययुग की मूर्तियों में राम को द्विभुज दिखाया गया है। यहाँ राम अपनी दो भुजाओं से एक तीर लिये हुए हैं तथा नीचे के दक्षिण कर से हनुमान के हाथ को पकड़े हुए हैं। राम की अपेक्षा हनुमान की बहुत छोटी प्रतिमा है। यह प्रायः राम के घुटने तक ऊँची है। इसमें हनुमान मुकुट तथा कुण्डल धारण किए हुए हैं बायाँ हाथ राम के हाथ में है और दाहिना वरद मुद्रा में है। इनकी पूँछ पीछे लटक रही है। इसी प्रकार की एक मूर्ति हनुमान की इसी मंदिर के एक फलक पर सीता के समक्ष खड़ी दिखाई देती है।"[10]



चित्र क्र. 5
हनुमान, पाटन, जिला जबलपुर

दसवीं शती के उत्तरार्द्ध में निर्मित श्री हनुमान का एक भव्य विग्रह पाटन (जिला जबलपुर) में विद्यमान है।" (देखें चित्र क्रं. 5) "इनका वानर मुख शरीर के अनुपात में बड़ा है। इनका वायाँ कर व्याख्यान मुद्रा में है। दाहिना कर टूटा हुआ है परन्तु बहुत सम्भव है कि यह उठा हुआ रहा हो जैसे तमाचा हनुमान की मूर्तियों में दिखाई देता है। इनकी ग्रीवा वाईं ओर मुडी हुई है। दृष्टि इनकी अधोमुखी तथा मुखमुद्रा शांत है आधे दांत दिखाई देते रहे हैं। मस्तक पर का मुकुट टूटा हुआ है। गले में दो ग्रैवेयक हैं। – एक मोटा जनेऊ की भांति का गोल लपेटा हुआ उत्तरीय वायें कंधे से होता हुआ वक्षस्थल पर नीचे से आया है। कमर में कमरबन्द तथा अलंकृत झालदार मेखला है इसमें दाहिनी ओर एक छुरा घुसा हुआ है नीचे अधोवस्त्र है।"[11] (देखें चित्र क्र. 5) ग्यारहवीं शती की एक और मूर्ति जबलपुर जिले के ही कूदन ग्राम में प्रतिष्ठित है। (देखें चित्र क्र. 6 ए) टीकमगढ़ नगर के निकट स्थित बौरी नामक हनुमान मंदिर में हूबहू इसी प्रकार का विग्रह विद्यमान है। (देखें चित्र क्र. 6 बी) प्राचीन मंदिर ध्वस्त हो जाने पर किन्ही चन्द्रभान प्रोहित ने मंदिर का पुनर्निमाण संवत् 1728 (सन् 1671 ई.) में कराया था जिसका शिलालेख मंदिर के द्वार के एक आले में लगा हुआ है।



चित्र क्र. 6 ए
हनुमान कूदन (जबलपुर)

इन्दौर जिला गुना में ग्यारहवीं शती की एक प्रतिमा (चित्र क्रमांक 7 देखें) जो पाटन की प्रतिमा से मिलती

जुलती है विद्यमान है। "इसमें ये एक राक्षस और राक्षसी को पददलित करते हुए दिखाये गये हैं – इनके मस्तक पर मुकुट के स्थान पर अलंकृत केश हैं पीठ तथा कन्धों तक लटकती हुई लटें हैं तथा मस्तक बाँयी ओर मुड़ा है इनकी दृष्टि सामने की ओर क्रोधपूर्ण है। मुख खुला हुआ है। बाँया हाथ व्याख्यान मुद्रा में है तथा दाहिना हाथ ऊपर उठा हुआ है परन्तु टूट जाने के कारण यह कहना कठिन है कि इस हाथ में क्या था। दाहिना पैर सीधा और बांया पैर उठा हुआ राक्षस के मस्तक पर है। जनेऊ की भांति गोल–लपेटा हुआ उत्तरीय बांये कधे से लटकता दाहिनी ओर जाँघ तक फैला हुआ है। बाहुओं में अंगद थे दक्षिण बाहू का अंगद तो अभी है। कटि में कमरबन्ध तथा झालरदार मेखला है और दाहिनी ओर छुरा खुसा हुआ है। घुटनों तक लटकता हुआ अधोवस्त्र है जिसका एक भाग दक्षिण पैर के पास लटक रहा है। पैर में साँकल तथा कडे हैं।"[12] इस विग्रह से मिलता–जुलता एक विग्रह ग्राम कुम्हैडी (मोहनगढ़) एवं एक ग्राम धामना (दिगौडा) जिला टीकमगढ़ में विद्यमान है। (चित्र क्र. 8 देखें)



चित्र क्र. 6 बी
हनुमान मंदिर बौरी (टीकमगढ़)



चित्र क्र. 7
हनुमान इन्दौर. जिला गुना



चित्र क्र. 8
हनुमान कुम्हैडी मोहनगढ़ (टीकमगढ़)

नौगांव के निकट स्थित शासकीय पुरातत्त्व संग्रहालय घुबेला (जिला छतरपुर) में भी रामभक्त हनुमान की तीन प्राचीन प्रतिमायें संग्रहीत हैं। (चित्र क्र. 9) एक विग्रह अतिभंग पाद में है। इनका बांया हाथ व्याख्यान मुद्रा में है और दाहिना हाथ खुला हुआ मस्तक के ऊपर है जैसे किसी को थप्पड़ से मारने को उद्यत हों पूंछ दाहिने ओर से मस्तक के पीछे होते हुए बांयी ओर चक्राकार हो गयी है। ऊपर का गोल उत्तरीय दक्षिण बाहू पर से होता हुआ दक्षिण जानु के ऊपर बांये कन्धे पर गया है। मस्तक के ऊपर बालों के जूड़े के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कानों में कुण्डल गले में ग्रैवेयक और हार, बाहू पर गोल कड़े की भांति का अंगद तथा मणिबन्ध पर कडे हैं। कमर में कमरबंध है जिसमें एक चौड़ी कटार खुसी हुई है। नीचे के अंग में धोती है।"[13]



चित्र क्र. 9
हनुमान शास पुरातत्व संग्रहालय धुबेला छतरपुर

दूसरी मूर्ति का नीचे का भाग टूटा हुआ है। इस विग्रह की विशेषता यह है कि इनके दक्षिण बाहु के नीचे एक योनी के आकार का मोखा बना हुआ है। कदाचित यह भोग लड्डू रखने को बनाया गया होगा। इसी मार्ग से लड्डू डाल दिया जाता होगा जो पीछे रेखे हुए पात्र में पहुँच जाता होगा। यह मूर्ति 13वीं शताब्दी की ज्ञात होती है। तीसरी मूर्ति के हाथ में पर्वत तथा दूसरे हाथ में गदा है। ऐसा ही एक विग्रह दुधइ (ललितपुर) में "बनिया की बारात" नामक स्थान पर विद्यमान है जो शीश रहित है। टीकमगढ़ नगर के मध्य विन्द्रावन बाग में भी भी ऐसा ही एक विग्रह प्रतिष्ठापित है।

ग्यारहवीं–बारहवीं शती में निर्मित हनुमान की अनेक मूर्तियाँ सीरोन खुर्द (ललितपुर) में मिली हैं। प्रायः ये विशालकाय आकृतियाँ है। इनमें हनुमान एक पैर से राक्षसी को दबाये हुए प्रदर्शित हैं। सीरोन खुर्द से प्राप्त एक मूर्ति में वे विस्फारित मुख के साथ वितर्क मुद्रा में अंकित किये गये हैं। उनकी कमर में छोटी कटार लगी हुई है। मूर्ति कोर कर बनायी गई है।"[15] (देखें चित्र क्र. 10)

"चन्देलों के समकालीन चेदी–सम्राटों के शासनकाल में बनी मूर्तियाँ विलहरी के लक्ष्मी–नारायण मंदिर एवं भेड़ाघाट के चौसठ–योगिनी–मंदिरों के अतिरिक्त जबलपुर जिले के बड़गांव नामक स्थान से भी प्राप्त हुई हैं। इन सभी मूर्तियों में उनका दाहिना हाथ सिर के ऊपर उठा है तथा वे एक पैर से मांस–रहित नारी को कुचलते दिखाये गये हैं, जिसे कुछ विद्वानों ने भ्रान्ति से कंकाली चामुण्डा माना है। परन्तु हमें पौराणिक कथाओं में कहीं भी इसका वर्णन नहीं प्राप्त होता। अतः उसे राक्षसी मानना अत्याधिक न्याय



चित्र क्र. 3
हनुमान सीरोनखुर्द जिला ललितपुर

संगत होगा। उपर्युक्त सभी मूर्तियाँ चेदि–कला (11वीं 12वीं शती) की बनी प्रतीत होती हैं।''[16] ठीक इसी प्रकार की एक मूर्ति खंडित स्थिति में वानपुर (ललितपुर) में विद्यमान हैं।

बुन्देलखण्ड के विभिन्न अंचलों में विद्यमान उक्त श्री हनुमान के अत्यंत प्राचीन विग्रहों के अतिरिक्त इतने ही प्राचीन विग्रह कालंजर दुर्ग (बांदा), पठवा के हनुमान महोबा, बूढ़े हनुमान चित्रकूट, कौंच (जालौन), ऐरच, घाट कोपरा (झांसी), उड़नू की टौरिया, खेडापति दतिया, कानगढ़–सागर, बांदकपुर–दमोह आदि स्थानों में प्रतिष्ठापित है जिनका विस्तृत वर्णन आलेख विस्तार के भय से नहीं किया जा रहा है।

प्रतिहार चेदि एवं चन्देल शासकों का शासन समाप्त होने पर, बुन्देलखण्ड में एक सशक्त एवं धर्मपरायण वैष्णव बुन्देला राजवंश का उदय हुआ। बुन्देला राज्य स्थापित होने के पश्चात् इस भू–भाग का नामकरण बुन्देलखण्ड के रूप में हुआ। बुन्देला शासकों के शासन काल में अगणित श्री हनुमान विग्रहों की प्रतिष्ठा हुई। आजादी के पचास वर्षों में भी यह क्रम जारी है। बुन्देला शासन काल में पाषाण के अतिरिक्त 'चूना' से भी श्री हनुमान विग्रहों का निर्माण होने लगा था। ऐसा एक विग्रह कुम्हैडी (मोहनगढ़) जिला–टीकमगढ़ में प्रतिष्ठापित है।

''हनुमान की पूजा कब से प्रारंभ हुई – यह कहना कठिन है''[17] यह कथन है पं. करुणापति जी त्रिपाठी का। किन्तु डॉ. ब्रजेन्द्रशरण शर्मा के अनुसार – भारतवर्ष में श्री हनुमान जी की पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से होती आ रही है। प्राचीन साहित्य एवं शिलालेखों में इनका उल्लेख मिलता है। साथ ही साथ स्थापत्य एवं मूर्तिकला सिक्कों एवं लघु चित्रों में भी इनके जीवन से सम्बन्धित ओकघटनाओं का अंकन प्राप्त है।''[18] सामान्यतः लोगों का विश्वास है कि बुन्देलखण्ड में गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरित मानस एवं केशवदास रचित राम चंद्रिका के प्रचार–प्रसार के पश्चात् ही श्री हनुमान पूजा का शुभारंभ हुआ जो सत्य से परे है। ऐसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि ई. सन् 883 एवं 922 में निर्मित श्री रामभक्त हनुमान के स्वतंत्र विग्रह खजुराहो में प्रतिष्ठापित है। सं. 940 (ई. 883) में खजुराहो में प्रतिष्ठापित मूर्ति के शिलालेखों में अंकित श्री हनुमन्तं गोल्लाकः प्रनमति'' पंक्ति से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि बुन्देलखण्ड में दशवीं शती के पूर्व से ही श्री रामभक्त हनुमान की पूजा परम्परा विद्यमान थी। डॉ. ब्रजेन्द्रशरण शर्मा के अनुसार ''खजुराहो के चंदेल–शासकों के राज्य–काल में श्री हनुमान को अधिक मान्यता प्राप्त थी और वे 'भुक्बकदेवं' के नाम से पूजे जाते थे।''[19]

श्री हनुमान जी का एक नाम महावीर भी है। अर्थात वीरों के वीर अथवा वीरों में महान। जन सामान्य का ऐसा दृढ़ विश्वास है कि इनके स्मरण मात्र से ही भूत–प्रेत पिशाच भाग जाते हैं। इस कारण हनुमान जन सामान्य के देवता हैं। वे किसी धर्म सम्प्रदाय अथवा जाति से बंधे नहीं है। जो भी सच्चे मन से उनका ध्यान करता है उसे संकटों से मुक्ति मिल जाती है। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर इन्हीं की सहायता से उनके प्राण बच सके थे। तब से श्री हनुमान की संकट मोचन रूप में पूजा होती है।

बुन्देलखण्ड में बाल्यावस्था से ही बच्चे श्री हनुमान जी के महावीर और संकट मोचन के स्वरूप से परिचित हो जाते हैं। शिशुवस्था में किसी भी तरह की कोई ब्याधि होने पर उन्हें हनुमान मंदिर में ही पुजारी के पास झाड़–फूंक करवाने हेतु ले जाया जाता है। मंदिर की भभूति (भस्म) पीड़ित अंग पर लगाने तथा पीड़ित को खिलाने से ही पीड़ा दूर हो जाती है। शनिवार एवं मंगलवार के दिन श्री हनुमान जी की सेवा–पूजा के विशेष दिन माने जाते हैं। बोलना (कामना) पूर्ण होने पर शनिवार या मंगलवार के दिन उन्हें सिंदूर का चोला चढ़ाया जाता है एवं विशेष रूप से शुद्ध घी से बने 'रोट' का प्रसाद चढ़ाया जाता है। श्री हनुमान के ब्रह्मचारी होने के कारण ऐसी लोक मान्यता है कि महिलायें उनके विग्रह का स्पर्श नहीं करती तथा विग्रह के ठीक सामने खड़े होकर दर्शन नहीं करती हैं। अन्य किसी को किसी भी प्रकार का कोई बन्धन नहीं है।

स्थान–स्थान पर सहज–सुलभ हनुमान मंदिरों के विषय में महंत श्री नृत्यगोपाल दास जी महाराज छावनी अयोध्या का कथन है – ''हनुमान जी अलग–अलग जगह अनेक रूपों में पूजे जाते हैं भगवान शिव और हनुमान ही ऐसे देवता हैं जो हवा पानी से ही संतोष कर लेते हैं। उन्हें वस्त्र या भोग की जरूरत नहीं है। यही वजह है कि हर जगह हनुमान मंदिरों की संख्या सबसे ज्यादा है।[20] ऐसे सहज–सुलभ कृपालु संकट–मोचन महावीर हम सबके लिए मंगलकारी हों।

'सिन्दूरपूररूचिरो वलवीर्यसिन्धुर्बुद्धिप्रवाहनिधिरदभुतवैभवश्रीः दीनार्तिदावदहनो वरदो वरेण्यः संकष्टमोचनविभुस्तनुतां शुभं नः।'

(संकष्टमोचनस्त्रोत्रम)

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. एस.डी. त्रिवेदी – बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, पृ.77
2. डॉ. राय गोविन्द चन्द्र – हनुमान के देवत्व तथा मूर्ति का विकास, पृ.320–21
3. डॉ. ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा – स्थापत्य एवं मूर्तिकला में श्री हनुमान, पृ. 404
4. डॉ. एस.डी. त्रिवेदी – बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, पृ. 15
5. डॉ. ब्रजेन्द्र नाथ शर्मा – स्थापत्य एवं मूर्तिकला में श्री हनुमान, पृ. 404
6. डॉ. विश्वम्भरशरण पाठक–राजमुद्राओं पर श्री हनुमदाकृति का अंकन, पृ 403
7. प्रो. कृष्णदत्त बाजपेयी – मूर्तिकला में श्री हनुमान संकटमोचन रूप, पृ 407
8. डॉ. ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा – स्थापत्य एवं मूर्तिकला मे श्री हनुमान, पृ 405
9. डॉ. एस.डी. त्रिवेदी – बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, पृ. 23

इतिहास के झरोखे में छतरपुर रियासत का अवलोकन

– योगेन्द्र प्रताप सिंह परमार

बुन्देलखण्ड के हृदय स्थल पर बसे नगर छतरपुर की नींव विक्रम सम्वत् 1764 में पुख्य नक्षत्र में दिन गुरुवार को महाराजा छत्रसाल द्वारा रखी गई थी उस समय महाराज छत्रसाल ने एक चबूतरा बनाकर उस पर घास–फूस का टपरा बना कर अपना छत्रसाली झण्डा फहराया था। बाद में उसी चबूतरे पर बाद में बंगला बनवाकर पुच्चला के धंधेरे ठाकुर साहब को गांव बसाने की आज्ञा दी थी। उस समय का छोटा सा गाँव लगभग 300 वर्ष बाद वर्तमान का छतरपुर शहर के रूप में विकसित हुआ। छतरपुर नगर के शिलान्यास के सम्बन्ध में हीरापुरी जिन्होंने दोहे के रूप में छत्रपुर का इतिहास लिखा है, उन्हीं दोहों में एक दोहा नीचे प्रमाण के रूप में दिया जा रहा है।

"सम्वत सत्तरहसौ कहे षोडसचार प्रभान
पुष्य नक्षत्र गुरुवार दिन कार्तिक नौमीजान।
ता दिन श्री महाराज ने, ग्रामन चक के जोर
नींव दई खुदवाय के शहर छत्रपुर कोर।।

महाराजा छत्रसाल के बाद उनका राज्य उनके दोनों राजकुमारों हृदय शाह एवं जगतराज के बटवारे में दो हिस्सों में बट गया हृदयशाह को पन्ना राज्य मिला तथा जगतराज को जैतपुर का राज्य प्राप्त हुआ। छत्रपुर, हृदय शाह के वंशज महाराज हिन्दूपत के समय तक पन्ना राज्य का हिस्सा था। महाराज हिन्दूपत ने अपने बड़े लडके सरनेत सिंह को गद्दी न देकर छोटे लड़के अनुरुद्ध सिंह को गद्दी पर बैठाया, तथा सरनेत सिंह को अंठकुआ की जागीर दी, जिसमें लौंडी, अठकौंहा, राजनगर, राजगढ़ मनियागढ़ शामिल थे। उक्त निर्णय से राजकुमार सरनेत सिंह एवं उनके समर्थकों ने असन्तोष एवं नाराजगी जाहिर की, उस समय राजकुमार सरनेत सिंह के प्रबल समर्थकों में कुंवर सोनेशाह थे, जिन्होंने हल पल उनका साथ दिया। इसी नाराजगी की वजह से राजकुमार सरनेत सिंह ने महाराज हिन्दूपत की मृत्यु के बाद नोने अर्जुन सिंह सुंगरहा को आमन्त्रित कर गठेवरा का युद्ध रचाया। जिसमें दोनों भाईयों की सेना का आमना सामना हुआ। पन्ना राज्य की तरफ से सेनापति वैनी हजूरी था और सरनेत सिंह की तरफ से कुंवर नोने अर्जुन सिंह सेनापति थे। इस युद्ध में गठेवरा के पास वैनी हजूरी मारा गया और पन्ना राज्य की हार हुई यह युद्ध सम्वत 1840 में हुआ था। जिससे पन्ना रियासत की शासन व्यवस्था डगमगा गई और पन्ना रियासत खण्ड–खण्ड होने लगी। गठेवरा के युद्ध के कुछ समय बाद राजकुमार सरनेत सिंह को अल्प आयु में ही निसन्तान मृत्यु हो गई। तब कुंवर सोने शाह ने राजकुमार सरनेत सिंह की जागीर की व्यवस्था सम्भाली, और उनकी व्यवस्था से प्रसन्न होकर राजकुमार सरनेत सिंह के समर्थकों ने कुंवर सोने शाह को अपना नेता मान कर उन्हें राजा बना दिया। उपरोक्त सन्दर्भ में हीरापुरी गुसाई द्वारा लिखा गया दोहा प्रमाण के रूप में लिखा जा रहा है।

"जब यहाँ गद्दी परी, सोने कुंवर सपूत,
जागीर जो सरनेत की, सो राखी रजपूत।
यह हीसा सरनेत को दाबो सोने शाह
धोकल सिंह न कर सके न कोऊ करी परवाह।।

और इस प्रकार कुंवर सोनेशाह परमार सन् 1885 के लगभग सरनेत सिंह के स्थान पर अठकोंहा जागीर के मालिक बन गये और उन्होंने अपनी जागीर की सीमायें बढ़ाना शुरू कर दिया। जिससे पन्ना रियासत से उनका लौंडी के पास झूमर नामक स्थान पर युद्ध हुआ, जिसमें उन्होंने पन्ना रियासत को हराकर अपनी राज्य की सीमायें बढ़ाई। उपरोक्त सन्दर्भ में हीरापुरी गुंसाई का लिखा दोहा प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत है।

"मौका सोने शाह को, मिली मसकें ऐंन,
पन्ना को धत्ता दयो, रहे समारत सैन।
दखल अठकुंवा में करो, झूमर वारी न्याव,
सवरें जाहर भयो, कुंवर साहब को नाव।।

और इस प्रकार पन्ना राज्य से अलग हुए छतरपुर रियासत के संस्थापक कुंवर सोनेशाह परमार प्रथम राजा हुये जहाँ से छतरपुर राज्य में परमार राजबंश की शुरुआत हुई।

कुंवर सोनेशाह परमार महाराजा पुन्यपाल परमार के

(पृष्ठ क्र. 52 का शेष)

10 डॉ. रायगोविन्द चन्द्र–श्री हनुमान के देवत्व एवं मूर्ति का विकास, पृ. 331
11 डॉ. रायगोविन्द चन्द्र – हनुमान के देवत्व एव मूर्ति का विकास, पृ. 332
12 वही, पृ. 332
13 वही, पृ. 334
14 वही, पृ. 336
15 डॉ. एस.डी. त्रिवेदी – बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, पृ. 49
16 डॉ. ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा – स्थापत्य एव मूर्तिकला में श्री हनुमान, पृ. 405
17 करुणापति त्रिपाठी – जन देवता श्री हनुमान, पृ. 77
18 डॉ. ब्रजेन्द्र नाथ शर्मा – स्थापत्य एवं मूर्तिकला में श्री हनुमान, पृ. 404
19 डॉ. ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा स्थापतत्य एव मूर्तिकला में श्री हनुमान, पृ. 405
20 महंत श्री नृत्यगोपालदास महाराज दैनिक भास्कर 21 जुलाई 00 पृ 6 कालम 1–2
21 जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री महेश्वरानद सरस्वती–संकटमोचन स्त्रोत्रम पृ 7

– अवस्थी चौक, किले का मैदान,
टीकमगढ़ (म.प्र.) ☐

वंशज थे। जो कैरुआ के जागीरदार के लड़के थे, जो किसी वजह से नाराज होकर घर छोड़कर जीविका उपार्जन हेतु निकल पड़े थे।

कुंवर सोनेशाह के सम्बन्ध में किवंदती है कि कुंवर सोनेशाह परमार अपनी जन्म भूमि कैरुआ छोड़कर एक व्यापारियों के काफिले के साथ चल दिये थे और बाद में काफिला की सुरक्षा का काम भी व्यापारियों से ले लिया था। यह व्यापारियों का काफिला घूमता फिरता छतरपुर होता हुआ केन नदी के उस पार मण्डला के पड़ाव पर पहुँचा तो पन्ना राज्य के सिपाहियों और व्यापारियों के काफिले के बीच महसूल की चुकती पर विवाद होने लगा। इस पर सिपाहियों ने व्यापारियों को बंदी बनाना चाहा तो कुंवर सोने शाह ने सभी सिपाहियों को मार भगाया। उसी दौरान पन्ना रियासत के राजा हिन्दूपत भी शिकार हेतु अपना पड़ाव मण्डला में डाले थे। जब उन्हें खबर लगी तो वह मौके पर सैन्य बल के साथ पहुंचे और जो सिपाही कुंवर सोने शाह से पिटकर गये थे, कुंवर सोने शाह को ललकारने लगे। सिपाहियों की ललकार सुन कुंवर सोने शाह का क्षत्रिय खून खौल उठा और वह अकेले नंगी तलवार लेकर महाराज हिन्दूपत की सेना के सामने छिटक कर खड़े हो गये। महाराज हिन्दूपत की निगाह जब इस तेजस्वी सिपाही पर गई तो उन्होंने अपना घोड़ा बढ़ाकर कुंवर सोने शाह से पूँछा कि सिपाही तुम कौन हो, और क्यों इस काफिले के पीछे जाने देने पर तुले हो। क्या तुम नहीं जानते हो कि तुम एक राज्य की सेना के मुकाबले खड़े हो। इस पर कुंवर सोने शाह ने जवाब दिया कि मैं एक परमार वंशीय क्षत्री हूँ जो इस समय इस काफिले का सिपाही हूँ। और इस काफिले का सिपाही होने के नाते इसकी रक्षा करना मेरा क्षत्रिय धर्म है, और रहा युद्ध में मरने–मारने की बात यह तो क्षत्रिय धर्म है।

कुंवर सोने शाह की बात से प्रभावित होकर महाराज हिन्दूपत ने काफिला का पूरा मसूल माफ कर दिया और कुंवर सोने शाह को अपने अंगरक्षक के रूप में काम दे दिया। महाराज हिन्दूपत के शिकार के पड़ाव के दौरान शिकार खेलने में महाराज हिन्दूपत से एक जंगली रीछ घायल हो गया, जिसने महाराज पर हमला कर दिया, उस समय कुंवर सोने शाह ने अपना घोड़ा बढ़ा कर रीछ को भाले से मार गिराया। जिससे महाराज हिन्दूपत कुंवर सोने शाह पर बहुत प्रसन्न हुये और इस प्रकार सोने शाह अपनी बहादुरी एवं बफादारी के बलबूते पर कुछ समय बाद एक काफिले के सिपाही से महाराज हिन्दूपत के तीन मुख्य सेनापतियों में से एक के पद पर पहुँच गये।

महाराजा हिन्दूपत द्वारा अपने राज्य का उत्तराधिकारी छोटे लड़के अनुरुद्ध सिंह को बनाने के फैसले से वह खुश नहीं हुये क्योंकि उनका मानना था कि नीति के अनुसार बड़े लड़के को गद्दी मिलना चाहिये और यही कारण था कि वह बड़े राजकुमार सरनेत सिंह के साथ उनकी जागीर अठकोंहा चले आये थे। और जब तक सरनेत सिंह जिंदा रहे, उनके वफादार बनकर रहे। और गठेवरा के युद्ध के बाद जब सरनेत सिंह की मृत्यु हो गई तो उनकी जागीर अठकोंहा के मालिक बने और बाद में जागीर की सीमायें बढ़ा कर छतरपुर रियासत से संस्थापक बने। कुंवर सोने शाह ने अपनी जीवनकाल में विन्द्रावन में एक कुंज का निर्माण कराया। कुंवर सोने शाह के चार पुत्र थे। जिनमें महाराज प्रताप सिंह सबसे बड़े थे। उनसे छोटे महाराज कुमार पृथ्वी सिंह, महाराज कुमार हिन्दूपत तथा सबसे छोटे महाराज कुमार वखत सिंह थे। कुंवर सोनेशाह ने अपने जीवनकाल में अपनी सम्पत्ति का बँटवारा कर चारों पुत्रों को हिस्सा दे दिया था। महाराज प्रताप सिंह को 182 गांव और राजनगर की गढ़ी रहने को दी थी। शेष 178 गांव पृथ्वी सिंह, हिन्दूपत तथा वखत सिंह को दिये थे। हिस्सा तसदीक की फर्द के अनुसार पृथ्वी सिंह को रहने के लिये राजगढ़ (चन्द्रनगर) की गढ़ी दी थी तथा हिन्दूपत को (लौडी) अठकौंहा की गढी तथा बखत सिंह को देवरा की गढ़ी (किशनगढ) रहने के लिये दी थी।

ब्रिटिश सरकार की नीति यह थी कि वह कुंवर सोने शाह की रियासत को विखण्डित नहीं होना देना चाहती थी। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने महाराज प्रताप सिंह तथा उनके भाइयों के पास एक प्रस्ताव भेजा कि यदि महाराज प्रताप सिंह के तीनों भाई अपना हिस्सा महाराजा प्रताप सिंह के हक में छोड़ दें। तो वह महाराजा प्रताप सिंह को राजा की उपाधि दे देंगे। इस प्रस्ताव को अपने भाई वखत सिंह ने तत्काल स्वीकार कर अपना हिस्सा एवं देवरा की गढी महाराज प्रताप सिंह को सौंप दी। पृथ्वी सिंह एवं हिन्दूपत ने इसका विरोध किया और झगड़ों के बाद उनका भी समझौता हो गया और उन्होंने भी अपने–अपने हिस्से महाराजा प्रताप सिंह के हक में छोड़ दिये। और इस प्रकार 18 जनवरी सन् 1827 में महाराजा प्रताप सिंह को राजसी नियम के अनुसार छतरपुर रियासत के राजा को पदवी ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गई। महाराज प्रताप सिंह ने छतरपुर रियासत पर सन् 1854 तक राज्य किया। महाराजा प्रताप सिंह शिव भगवान के अखण्ड भक्त थे। उन्होंने खजुराहो के प्रसिद्ध मंदिर मतंगेश्वर का जीर्णोद्धार करवाया। तथा वहां शिव रात्रि का मेला प्रारम्भ कराया, जो परम्परा के अनुसार वर्तमान में भी लगता चला आ रहा है तथा उन्होंने अपने कर्मचारियों को निर्देश दिया था कि उनकी मृत्यु के बाद उनका मकवरा खजुराहो में मतंगेश्वर मंदिर के सामने बनवाया जावे। जो उनकी इच्छानुसार खजुराहो की पश्चिमी ग्रुप के सामने

आज भी प्रताप सिंह का मकबरा है जो शिल्पकला का एक बेहतरीन नमूना है। महाराज प्रताप सिंह के तीन विवाह हुये थे। जिनसे केवल एक पुत्र कम्मोदसिंह हुये जो अल्प आयु में ही स्वर्गवासी हो गये थे। 1854 में तब महाराजा प्रताप सिंह ने अपने छोटे भाई बखत सिंह के नाती जगत राज को सन् 1852 में गोद ले लिया था और अपने छोटे भाई बखत सिंह को देवरा की गढ़ी में निवास करते थे, उन्हें मऊसहानियाँ की गढ़ी में निवास करते थे, उन्हें मऊ सहानियाँ की गढ़ी रहने को दे दी थी।

महाराजा प्रताप सिंह के छोटे भाई बखत सिंह ने छतरपुर रियासत के बनने में तथा बड़े भाई प्रताप सिंह को राजा बनाने में बहुत मदद की थी तथा बटवारे में प्राप्त हिस्सा एवं देवरा की गढ़ी भी प्रताप सिंह को सौंप दी थी, जिससे महाराजा प्रताप सिंह अपने छोटे भाई बखत सिंह का पूरा विश्वास एवं स्नेह करते थे। और उनके राज्य का कोई उत्तराधिकारी न रहा तो उन्होंने बखत सिंह के नाती जगतराज को 1852 में सहानियाँ से गोद ले लिया था। और इस प्रकार जगतराज 8 वर्ष की आयु में छतरपुर रियासत में गोद आये। महाराजा जगतराज के पिता जीत सिंह थे। जीत सिंह के छः (6) पुत्र थे जिनमें सबसे बड़े जगत राज थे। जगतराज के बाद माधौसिंह थे। जगतराज के नाम से मऊ सहानियाँ में जगत सागर तालाब है तथा माधौसिंह के नाम से माधौपुर गांव वर्तमान में मौजूद है। जगतराज के बंशज महाराज भवानी सिंह जू देव हैं, जो वर्तमान में नारायण बाग छतरपुर में निवास करते हैं तथा माधौ सिंह के वंशज ग्राम माधौपुर में निवास करते हैं। जगतराज के अन्य भाइयों के बंशज सहानियाँ एवं देवपुर में निवास करते हैं।

महाराजा जगतराज 8 वर्ष की आयु में छतरपुर रियासत के राजा हुये उनकी तरफ से रियासत का प्रशासन महाराजा प्रताप सिंह की मझली महारानी साहिब ने सम्भाला था तथा सन् 1867 में महाराजा जगत राज को शासन के अधिकार दिये गये थे। लेकिन राज्य प्राप्त करने के एक वर्ष के अन्दर ही अपने नाबालिग राजकुमार विश्वनाथ सिंह को छोड़ कर महाराजा जगतराज स्वर्गवासी हो गये थे।

सन् 1867 में नाबालिग महाराजा विश्वनाथ सिंह जू देव छतरपुर रियासत के राजा बने तथा ब्रिटिस सरकार ने रियासत का प्रशासन सम्भालने के लिये सन् 1878 में मुंशी चंदी प्रसाद को छतरपुर रियासत में नियुक्त किया। महाराजा विश्वनाथ सिंह जू देव को सन् 1887 में शासन अधिकार प्रदान किये गये। महाराजा विश्वनाथ प्रताप सिंह ने पंडित श्याम बिहारी मिश्र को अपना दीवान नियुक्त किया। महाराजा विश्वनाथ सिंह का विवाह टीकमगढ़ महाराजा महेन्द्र की राजकुमारी के साथ हुआ था। जिन्होंने विवाह के तत्काल बाद की अज्ञात कारणों से सन्यास ले लिया था, और तीर्थ स्थल पर रहकर भजन पूजन करने लगीं। हिन्दी जगत के प्रसिद्ध लेखक वियोगी हरि पर महारानी साहिब की विशेष कृपा रही और वियोगी हरि भी उन्हें मातुवत आदर करते थे उनकी शिक्षा–दीक्षा का प्रबंध महारानी साहिब ने ही किया था।

महारानी साहब द्वारा सन्यास लेने के कुछ समय पश्चात् महाराजा साहब ने अपनी दूसरी शादी पाय के जागीरदारों के यहाँ की थी। जिनसे वर्तमान में मौजूद महाराजा भवानी सिंह हुये। जो महाराजा विश्वनाथ सिंह जू देव के पश्चात छतरपुर रियासत के राजा हुये। जो देश आजाद होने तक छतरपुर रियासत के राजा रहे। देश आजाद होने पर छतरपुर रियासत का विलय भारत सरकार में होगया और इस प्रकार छतरपुर रियासत भारत देश का हिस्सा बन गई।

– हनुमान टौरिया के पीछे, छतरपुर □

बुन्देली में ग्राम्य-शब्दावली : एक झलक

– डॉ. आर.एस. दांगी

किसी भी क्षेत्र की ग्राम्य–शब्दावली उस क्षेत्र के भौगोलिक वातावरण, जन–जीवन, आचार–विचार, संस्कृति और परम्पराओं से ओत–प्रोत होती है। शब्दों की संरचना ग्रामवासी अपनी सुविधानुसार करते हैं। ग्रामीणजन इन शब्दों के जनक होते हैं। हिन्दी के बहुत से तत्सम् शब्द आज जो दिखाई देते हैं, वे मूलतः टूट–फूट कर या विकृत होकर ग्राम्य–जनों के साथ मिलकर बिना किसी खास मात्राओं की ओर अत्यंत आकर्षक रूप से मनोभावों को व्यक्त करते हुए ग्रामीण जीवन से रस लेते हुए प्रयुक्त हो रहे हैं। ऐसे कई शब्द हैं जो नगर के कूप और गांव में कुआं बन जाते हैं। भाई को भइया, बैल को बैला, गाय को गइया, भाभी को भौजाई, गागर को गगरिया, पत्थर को पथरा, बहिन को बिन्नू, माता को मताई और मामा को मम्मा अपनी सुविधानुसार अभिव्यक्त किया जाता है। भाषा की यह विशेषता होती है कि उसकी विकास–यात्रा कठिनता से सरलता की ओर अग्रसर होती है। *भाषा का विकार, भाषा को बोली बना देता है और बोली का परिष्कार बोली को भाषा बना देता है।*

इस आलेख में, मेरा सोच यह है कि बुन्देली के उन शब्दों का स्वरूप–विवेचन करूँ, जो आज की युवा पीढ़ी से लगभग दूर होते जा रहे हैं और अब वह समय आने वाला है कि एक दिन बुन्देली की शब्द–सम्पदा लगभग लुप्त हो जाएगी। बुन्देली की ग्राम–शब्दावली का अध्ययन करते समय मेरे समक्ष कृषकीय–जीवन का आचार–विचार रहा है। जो अपने जीवन में सुबह से शाम तक न जाने कितने शब्दों को अपनी बोली से अभिव्यक्त करता हैं ग्राम–शब्दावली की विस्तृत सूची इस प्रकार है –

अजूका – सुन्दर–सलोने का सूचक।
अबेर – देरी या विलम्ब में अर्थ में, बिना बेला के।
अदन – चूल्हे पर दाल बनाने हेतु पानी कुनकुना करना।
अदबान – एक रस्सी विशेष जिससे चारपाई का पैरदाना कसा जाता है।
अकताँ – आगे से, अचानक आगे आ जाना।
अरौ – व्याधि, परेशानी, व्यवधान के अर्थ में।
आटक – अवरोधक, बाधा।
आजी – माँ की माँ
आँसना/आँसत – चुभना, दुःख देना, कष्ट देना।
आखी – छाननी, चलनी।
आल पताल–सब कुछ खाने के अर्थ में।
इक्कर – एक तरफ झुका हुआ।
इदाँर – कुएँ का ऊपरी गोल भाग।
कनक – महीन आटा – मैदा विशेष
कौंचा/कहुँचा – हाथ का निचला भाग।
कलेउ/कलेवा – सुबह का नाश्ता
कटोरा/कटोरी – अल्मोनियम से बना एक पात्र विशेष
ककोरा – जंगली परवल/कांटेदार जंगली फल

करूला – कुल्ला का विकृत रूप
कक्का – चाचा के लिए/चाचा का सूचक
कुठिया – मिट्टी से बना एक पात्र, जिसमें अनाज रखा जाता है।
कलुरिया – गाभिन होने के लिए तैयार गाय
कथई – कथरी/चारपाई पर बिछाने का वस्त्र विशेष।
कुरइयाँ – घर पर छाने के लिए लकड़ी विशेष।
करोरीं/करोरियाँ – घमौरी/घमौरियाँ
कनूका – अनाज/अनाज के दाने
कोद – ओर/तरफ
कुकरे/कुकरना – सिकुड़कर बैठना
कुपरा/कोपर – आटा सानने का पात्र विशेष
कलींदो – तरबूज
कटठों – कड़क, गीले से कमतर
खटका – चिंता/भय के अर्थ में भी
खरयान – खलिहान का विकृत
खदेरना – खदेड़ना
खाजर – अरहर की सूखी डन्ठल
खुकेना – खोदना/हाथ से मिट्टी निकालना
खोलुआ – हाँफने के लिए/हँकनी विशेष

खैंला – हल में जोतने के लिए तैयार बैल
खड़ेरौ – झाड़ू विशेष
गुइँया – साथी/सहेली/मित्र
गैंवड़ौ – गांव के पास पड़ती जमीन
गुल्हार – सिर के बल लुड़कने की क्रिया
गोड़ौ – पैर
गाड़र – भेड़
गड़ई – लोटा
गकरिया – बिना तवा के अंगारे पर सिकी रोटी
गतरा – टुकड़ा
गुथना – पक्षी मारक सुतली से बना अस्त्र
गुरा – अंग – अवयव
गिरमा – भैंस बाँधने की रस्सी
गदरा – अधपका
गड़वांत – बैलगाडी का बना रास्ता
गमको/गमका – घूंसा/मुक्का
घुल्ला – दीवार पर कपडे टांगने के लिए खूंटा विशेष
घाम – धूप
घिनैटा – घृणास्पद/गंदा
घिनौंची – पानी के बर्तन रखने का स्थान

घोकना – सोचना / चिन्तन करना
घूरौं – गोबर / मल–मूत्र डालने का स्थान
घैला – डबला / मिट्टी से बना छोटा बर्तन
घाई – समान / बराबर / तरह
घेंसुआ – घोंसला का विकृत
चिताना – चितवन / देखना
चैंथिरी – सिर का पिछला भाग
चीला – आटे का मीठा डोसा
चिमाना / चिमानौ – गुम–सुम / चुपचाप / बनावटी नींद
चरखटो – बूड़ा बैल / भैंस
चंगेर – बांस का बना एक पात्र जिसमें नवजात शिशुओं को सुलाया जाता है।
चांटा – थप्पड़
च्यौंटा – गोबर का ढेर
चीकट – विवाह के समय भाई के द्वारा बहिन को दी जाने वाली साड़ी
चोकर – गैंहू / चनै के छिलके
छैंकना – रोकना / बंद करना
जोरा – रस्सी / पानी कुए से निकालने के लिए
जाँतौ – हाथ से गेहूँ पीसने की चक्की
झाँकना – छिपकर देखना
झकरा – काँटेदार सूखे डन्टल
झाड़ैं – शौचादि क्रिया
झाँई – धुधली छाया / परछाई
टलवा / टल्ला – बूढ़ा बैल
टाठी – थाली / काँसे का बर्तन
टेरना – बुलाना / पुकारना
टटेरौ – ज्वार का सूखा डन्ठल
टौंका – छिद्र / छेद
टक – आहत / लत
टंटा / टंटौ – झगड़ा / लड़ाई
टेंटुआ – गरदन / गला
ठड़ेल – ज्वार के हरे डन्टल
ठठरी – जनाज़ा / अर्थी
ठाँड़े – खड़े होना
ठुवाकरी – बछड़े द्वारा दूध छोड़ देने के बाद दूध देने वाली गाय।
ठिया – स्थान / ठौर
ठेंकर – जानबूझकर
ठौर – ठिकाना

ठलुआ – बेकार / फालतू
ठनगन – बनावटी रूठना
ठूंसना – बलपूर्वक अन्दर करना
ठबरत – जानते हुए अनजान बनना।
डीमा – मिट्टी का पत्थर / मिट्टी का ढेला
डुबरी – महुऐ की खीर / खिचड़ी
डुकरा / डुकर / डुकरिया – बूढ़ा व्यक्ति
ढोर – चोपे / पशु / जानवर
तदेरना – भगाना / दूर करना
तेलू / तेली – आसन्न व्याही गाय / भैंस का दूध
थेंतो – चमटा / करछुल
थोवरा / थोबरो – मुँह विशेष
दालुद्दर – राक्षसी प्रवृत्ति वाला
दूनर – दुहरा / अत्यधिक झुकना
ददौरा – छोटी–छोटी फुंसिया
दुगई – मकान का कमरा विशेष
धमैया – भीड़ / जन–समूह
धौंस – दबदबा / प्रवाह / आतंक
नाकना – फांदना / कूंदना / पार करना
नुकना / नुकाना – गेंहू साफ करने की क्रिया
नेक – थोड़ा / अल्प
नैंग – दस्तूरी / औपचारिक पारिश्रमिक
नुकटा – अंगूठा
पटकी – छोटी तौलिया
पिछौरा – ओड़ने का चादर विशेष
पन्हा / पनहइयाँ – चमड़े की देहाती जूते
पाँहुने – अतिथि / मेहमान
पटका – कपड़े का टुकड़ा
पब्बी – लापरवाह / आबारा
पौंद – चूतड़
पड़ा / पड़िया – भैंस का बच्चा / बच्ची
पन्चा – छोटी धोती
पसर – सूर्योदय के पूर्व पशुओं को चराने वाला
फुलका – बड़ी और फूली रोटी बही
फींचना – कपड़े साफ करने की क्रिया
बियारी / बियारू – रात्रि का भोजन
बागौ – विवाह के समय दूल्हे की पोशाक
बाट हेरना – प्रतीक्षा करना
बिलौंटा – बिल्ली का बच्चा

बट्लोई – डेल्ची / दहेड़िया / पात्र विशेष
बछेउ / बछड़ा – गाय का बच्चा
बिलात – बहुत / अत्यधिक
भड़या – चोर / डाकू आदि
भुकभुकौ – अत्यंत सुबह / सूर्योदय से पहले
भोर – सुबह / सूर्योदय के बाद
महेंरी – छाछ से पका दलिया
मौड़ा / मौंड़ी – बच्चा / बच्ची
रड़ुआ / रड़ुआ – विधुर व्यक्ति
रांड़ – विधवा स्त्री
रद्दौ – विपत्ति / भार विशेष
लबरा – झूठ बोलने वाला
लैंड़ा – कुत्ते के लिए सम्बोधन
लबेरू / लबेरूआ – नाजायज संतान
लांक – उन्हारी की सूखी फसल
लौलइयाँ – गोधूलि बेला
लोउ / लोहू – खून / रक्त
लम्ढ़ेंका – लम्बा और दुबला लड़का
लौंदा – मक्खन का पिण्ड / गोला
सलूंका – देहाती बनियान
सपरना – नहाना / स्नान करना
हरैं–हरैं – धीरे–धीरे
हिराना / हिरानों – खो जाना / गुम हो जाना
दचका – झटका / धक्का
नोंनों / नोंनी – अच्छा / सुन्दर
नीचट – ठोस / मजबूत
नीछर – पानी की कच्ची होदी / कुआं की मुंडेर
नैनूं – नवनीत / मक्खन
पिरात / पिरातौ –दर्द / कष्ट के अर्थ में
लुचई – पूड़ी
बिजूकौ – कृत्रिम / बनावटी आदमी / आदमीनुमा
मलीदा – गुड़युक्त पूड़ी का बारीक रूप
मस्कऊँ – चुपचाप / खामोश
मुचन्डा – मोटा और विकराल रूप के अर्थ में
लौंरा / लौंरी – छोटा / छोटी
लगोदा – जानवरों के भय दिखाने की लकड़ी
लांच – घूंस / रिश्वत / उत्कोच
सूटऊँ –चुपचाप / बिना किसी बहस के

बुन्देली कविता–

ऐंसो ऊँसो – समझत हैं

– माधव शुक्ल 'मनोज'

मोय, बँधी–गांठ सो छोरत हैं।
वे दही–मही सो बिलोरत हैं।
मोय, आम सरीखो चोंखत हैं।
मोय, छुई सरीखी–घोरत हैं।

मोय होरा ज़ैसो भूँजत – हैं।
गारे–माटी सो गूँथत – हैं।
मोय लगी चोट पे सूजत हैं।
मोय फुकना जैसो फूँकत हैं।

मोय, बेसन जैसो–फेंटत हैं।
गुर के चींटा से चेंटत हैं।
मोय, पथरा जैसो–फेंकत हैं।
लम्बे–लम्पा से – ऐंठत – हैं।

मोय, भरे घड़ा सो फोरत हैं।
कच्ची अमिया सी टोरत हैं।
मोय, दूध सरीखो औंटत हैं।
हर–दिन भाजी सी खोंटत हैं।

मोय, बासो–बूसो सूँघत हैं।
पी कें–शराब सी झूमत हैं।
दिन चढ़े लौ लेटे–ऊँघत हैं।
फिर बजे हैं कितने–पूंछत हैं।

मोय, बात–बात पे टोंकत हैं।
सब्जी–जीरा सो – छोंकत हैं।
मोय, घूँट सरीखों – गुटकत हैं।
हरदी – चांवर सो – छिटकत हैं।

मोय, फसल सरीखी काटत हैं।
बीड़ी–कट्टा सो–छाँटत – हैं।
मोय धान सरीखी–कूटत हैं।
छिन–छिन में ऊँसई रूठत हैं।

मोय, चंदन जैसो गारत हैं।
सुन, ऐरी रोज पुकारत – हैं।
मोय, लौकी जैसो छोलत हैं।
भूरे–कुमड़ा सो–फोरत – हैं।

वे जरे पे नोंन – लगाऊत – हैं।
पीवे खों धोंन – पियाऊत – हैं।
मोय, जान–चिरपिरी चींखत हैं।
का समझ कें आँखें–मींचत हैं।

वे डार हिडोला – मलकत – हैं।
वे सॉंड – सरीखे–दलकत – हैं।
आगी–धूआँ–धुँधकाऊत – हैं।
धूआँ में लट्ठ – घुमाऊत – हैं।

वे पकर गदेली खों रगड़त।
चूना–तम्बाखू सो–समझत।
मोय, चकरी जैसो गन्नाऊत।
इकतारा जैसो – टन्नाऊत।

मोय, रस्सी जैसी–भाजत हैं।
माटी में रेता – सानत – हैं।
मोय, रबर सरीखी तानत हैं।
पहिया–पंचर–सो जानत–हैं।

दिन–दुपरें–सपनों देखत हैं।
पानी पे–रेखा–खोंचत हैं।
बैठे–बैठे वे – घुरकत – हैं।
सूखे–पत्ता से चुरकत – हैं।

मोय, चिलम सरीखी धोंकत हैं,
जय–महादेव की बोलत – हैं।
छल–बल की भुजा–उठाऊत हैं।
सुरसा जैसो मों – बाऊत – हैं।

पइसा से उनकी – यारी – है।
हर जगह पे चलती आरी हैं।
मोय, ठेला जैसो – ठेलत – हैं।
मोय, रोटी जैसो – बेलत – हैं।

वे जनम जात के – खटकीरा।
का जानें – कैसी है – पीरा।
वे लूला – जैसे – लॉंकत हैं।
पीवे – जलजीरा – माँगत हैं।

वे सांप–सरीखे–सरकत–हैं।
वे बाँयी–आंख सी फरकत–हैं।
ई – जी में सुई सी टोंचत–हैं।
फिर पकर के कोंने–दोंचत–हैं।

मोय, वनबिलवा से घूरत – हैं।
मूछों पे हत्था – फेरत – हैं।
मोय, कड़ी सरीखी–टारत हैं।
खा–खा कें खूब–डकारत हैं।

गहरी–कुईया–खुदवाऊत – हैं।
धर गिल्ली सी – उचकाऊत है।
मोय, ढोर – सरीखो–गेरत– हैं।
रमतिली–सरीखो–पेरत – हैं।

वे भरी जलेबी – सीरा – से।
भजनों में पूरे – मीरा से।
कहबे खों दास कबीरा से।
बजने खों टन्न – मँजीरा से।

वे वैद–हकीम बनें–हीरा।
पुट्ठे पे दागत हैं–चीरा।
पूँछों ने हालत कैसी है।
अपनी तौ ऐंसी – तैंसी– है।

– ए/98, हाऊसिंग बोर्ड कॉलोनी,
कोहेफिज़ा – भोपाल (म.प्र.)

(पृष्ठ क्र. 57 का शेष)

सुरत – याद/स्मरण/स्मृति
सकसा – चने की सूखी भाजी
सोदन – शुभ दिन का विकृत
हाँड़ – हड़डा का बिगड़ा रूप
मुन्डा – जूता
चंट – होशियार/चतुर/कुशल

बुन्देली की यह शब्द संपदा अननंतिम है। आगे मेरा यह प्रयास होगा कि मैं, आप सभी के सहयोग से एक बुन्देली–शब्द–कोश तैयार करूँ। इस दिशा में, मैंने अपने प्रयास प्रारम्भ कर दिये हैं और आशा करता हूं कि अतिशीघ्र आपके सामने दो–तीन हजार बुन्देली शब्दों वाला शब्दकोष पुस्तकाकार आपके हाथों में होगा।

– 4/3 प्रोफेसर्स कॉलोनी
पुलिस लाइन के पास, छतरपुर

बुन्देली लोकनाट्य स्वांग में निहित व्यंग विधान

– डॉ. सुश्री शरद सिंह

हास्य–विनोद, व्यंग–कटाक्ष आदि मानव में मौजूद वे संवेग हैं जो अवसर की अनुकूलता के साथ जागृत होते हैं और उतनी ही त्वरित गति से संचरित होते हैं। हास्य, व्यंग, विनोद आदि के लिए दूसरों की चेष्टाओं की नकल करना, दूसरों का रूप–रंग धारण करना एक सहज क्रिया के रूप में प्रागैतिहासिक काल से चला आ रहा है। रायसेन, आजमगढ़ के भित्तिचित्रों में प्राक्‌मानवों को पशुओं की आकृति वाले मुखौटे लगाए हुए दिखाया गया है। बुन्देलखण्ड में प्रचलित लोकनाट्य ''स्वांग'' भी एक ऐसी ही विधा है जिसमें स्वांग करने वाला व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के पहनावे, आचरण अथवा कार्यों की नकल करता है। स्वांग का अर्थ होता है ''नकल'' अथवा ''अनुकृति''। अवध क्षेत्र में स्वांग करने वाले ''स्वांगी'', ''सवांगी'' अथवा ''नकलची'' के नाम से पुकारे जाते हैं। उत्तरप्रदेश के पूर्वांचल में स्वांग करने वालों को ''भांड'' कहा जाता है। राजस्थान में इन्हें ''बहुरूपिये'' कहा जाता है।

स्वांग करने वाले कलाकार मात्र अभिनेता नहीं वरन् अभिनेता के साथ–साथ प्रत्युत्पन्नमति, वाक्‌पटु तथा व्यवस्थाओं–अव्यवस्थाओं के सूक्ष्म विश्लेषक होते हैं। एक ''जोकर'' भी स्वांग रखता है किन्तु स्वांगियों का दायरा जोकर से कहीं बहुत अधिक होना है। ''जोकर'' का कार्य मनोविनोद तक सीमित होता है जबकि स्वांगी व्यंग–कटाक्ष को अपनाकर चलता है। ''माईम'' के कलाकारों को भी स्क्रिप्ट की आवश्यकता पड़ती है किन्तु स्वांगी बिना स्क्रिप्ट के ही संवाद, कथानक एवं दृश्य प्रस्तुत करते चले जाते हैं। दरअसल एक स्वांगी के स्वांग का दायरा असीमित होता है। इसीलिये स्वांग हर समय, हर युग में प्रचलन में रहे हैं। आज भी यह परम्परा जीवित है। वैसे स्वांग का प्रयोग बुन्देली लोकनृत्य राई के सम्बद्ध करके बहुतायत किया जाता है। राई करने वाली नर्त्तकी को विश्राम देने के लिये स्वांगिए स्वांग करने हैं जिसमें कभी–कभी स्वयं राई नर्त्तकी भी शामिल हो जाती है। बुन्देलखण्ड में प्रचलित कुछ प्रमुख स्वांग है – माहुलिया, कचरिया, बोने–लौंगबोने, मांगबोने, तेली के रे तेली के, बाबूलाल–बाबूलाल, अब्बक–दब्बक, कौड़ी के रे कौड़ी के, थाथपरी गपई समुद्र, अल्ल में गई गल्ल में गई, पोसम्पा भई पोसम्पा, अटकन–चटकन दई चटाकन, तुआतुतकार, लाहोरिया, सुनार दाउज, धतूराखान, सूरा लुवाउनों, भूरी भैंस, मरघट के मसान, लुवाओनो–पोंचा एनो, कुचबंदिया नवाब आदि–आदि।

स्वांग के मूल में कोई न कोई विशेष प्रसंग, समस्या अथवा सामाजिक–सांस्कृतिक विसंगति मौजूद होती है। स्वांगी अपने स्वांग की प्रस्तुति के समय सौंदर्य–प्रसाधन, विशिष्ट–प्रसाधन वेश–भूषा, प्रकाश व्यवस्था आदि की औपचारिकता में न पड़ते हुए अपनी प्रस्तुति को महत्व देते हैं। यदि वे किसी सेठ का अभिनव कर रहे हैं तो इसके लिए आवश्यक नहीं है कि स्वांगी सेठ के समान वेशभूषा धारण की हो। वह सिर्फ सेठ के समान अभिनय करता है, उसी के समान संवाद बोलता है और सेठ की भूमिका निबाहता हैं इन्हें किसी विशेष निमन्त्रण की आवश्यकता भी नहीं होती है। पारिश्रमिक का लेन–देन बाद में ''बक्शीश'' के रूप में भी तय होता रहता है। सवांगी अथवा स्वांगियों की जो सबसे बड़ी खूबी है, वह है, व्यंग–विधान।

कोई भी स्वांग ऐसा नहीं है जिसमें व्यंग का पुट न पाया जाता हो। प्रत्येक स्वांगी बात–बात पर व्यंग करने की पटुता रखता है। उदाहरण के लिए, यदि स्वांगी ''लुवाअनो–पोंचाएनो'' का स्वांग कर रहे हैं और जजमानों के बीच गांव का पटवारी भी बैठा हुआ है तो पति का स्वांग रखे हुए स्वांगी को यह व्यंग करते देर नहीं लगेगी कि ''काए? तुमने हमें पटवारी समझ रखो है का? हमें कौन ऊपर की कमाई मिल रई के तुमाए लाने रोज नये हुन्ना–कपड़ा लावें।''

या फिर – ''जे जो तुम इत्ती पटर–पटर कर्र रई हो, जो हम पटवारी होते न, सो मंगतू की जमीन घई दबा के चुप्पई करा देते, हां। ओ जमीन दबाए में कन्ने का पड़त है, बा नक्सा में लकीरें तनक इते के उते करीं, ओ लेओ हो गई जमीन सोई इते के उते।''

इसी प्रकार अगर जजमानों के बीच कोई थानेदार बैठा है तो स्वांगी उस पर भी व्यंग करने से नहीं चूकते हैं। यह व्यंग उसी कार्यप्रणाली पर चोट करने वाला होता है। जैसे –

''अब ठनगन न दिखाओ। तुमें पतो नईयां के इते थानेदार साब सोई बैठे हैं। बे सुन लेहें सो बड़ी सल्ल बिधहे... काए से के बे जे न कहन लगें के तुमसे नई सधती से हम पकरवा के मंगवा लेत है थाने... फेर तुमई जानो के थाने में का गत बनहे तुमाई...।''

''आई बाई, घुंघटा काढ़ ले, थानेदार साब बैठे हैं इते, कहूं उनखीं नज़र पड़ गई सो बे मसक देहें।''

जिस व्यक्ति पर कटाक्ष किया जाता है उसकी कार्यप्रणाली एवं चरित्र को ध्यान में रखते हुए संवाद में अश्लीलता से भी परहेज नहीं किया जाता है। अपनी पत्नी को लेने पहुंचे हुए पति का स्वांग करने वाला व्यक्ति पत्नी बनी बेड़नी (नर्तकी) से यहां तक कह देता है कि – "काए, इते कोनउ दरोगा साब से कांटों भिड़ गओ का? जो तुम हमें बिसार बैठीं। बे चार दिनां तुमाए संगे सोहें फेर पलट के न देखहें, समझीं। हमई तुमाए काम आबी।"

कहने का तात्पर्य ये है कि स्वांगी का प्रयास यही रहता है कि जितना भी संभव हो वह संबंधित व्यक्ति के बारे में कटाक्ष कर सके ताकि उपस्थित जनसमुदाय उसकी कार्यप्रणाली और उसके चरित्र से परिचित हो सके। स्वांग में व्यंग की मात्रा परिस्थिति, समय और उपस्थित जनसमुदाय के आधार पर तत्काल निर्धारित होती जाती है। यदि दर्शकों के पास शालीनता की कोई सीमारेखा नहीं है तो स्वांगी भी किसी किसी भी सीमा तक अश्लील संवाद एवं अभिनय–चेष्टाओं का उन्मुक्त प्रदर्शन कर सकता है किन्तु यदि दर्शक शालीनता की सीमा में बंध कर रहना चाहते हैं तो स्वांगी उस सीमा का पूरा–पूरा ध्यान रखता है। वह इस बात को जता भी देता है कि चूंकि यहां सभ्य लोग बैठे हैं अतः कोई ऐसी–वैसी बात नहीं कही जाएगी। उदाहरणार्थ – "हौ, हमें सब पतो है। तुम ओरे जाए के लाने ठें दये जा रये के हमाये जजमान नियम–धरमवारे आयें। औ जे मारे हम कछु ऐसी–वैसी बोल न पा रये... बाद में मिलियो सो बतैंहे।"

व्यंग–विधान का आधारतत्व होती है कथ्य–सामग्री। व्यंग की यह विशेषता होती है कि वह अपने भीतर समसामयिकता को समेटे हुए होता है तथा उन सभी श्रोताओं, पाठकों एवं दर्शकों को भी अभिव्यक्ति प्रदान करता हैं जो स्वयं अपने मन की बात नहीं कह पाते हैं। जैसे गांव के वातावरण में थानेदार, पटवारी, सरपंच आदि की कार्यप्रणाली से असंतुष्ट होने पर भी उनके विरुद्ध कुछ भी कह पाने का साहस ग्रामीणजन में नहीं होता है। ऐसी स्थिति में स्वांगी के उनके प्रति खुले कटाक्ष ग्रामीणों को भी संतुष्टि प्रदान करते हैं। उन्हें प्रतीत होता है कि जो वे नहीं कह पा रहे थे वह इस स्वांगी ने कह दिया। इस अनुभूति से उनके मन का बोझ हल्का हो जाता है। किसी थोथी कल्पना के बदले कटु यथार्थ को स्वयं के रूप में प्रस्तुत किए जाने से वातावरण में सकारात्मक असर पड़ता है। जहां पीड़ित व्यक्ति की कुंठा दूर होती है वहीं दूसरी ओर दोषी व्यक्ति को अपने आकलन का एक अवसर मिलता है। दो पल के लिए ही किन्तु उसे लज्जा का सामना करना पड़ता है।

स्वांग के अंतर्गत सामाजिक एवं पारिवारिक विसंगतियों पर भी व्यंग किया जाता है। जैसे किसी व्यक्ति की परस्त्री पर आसक्ति पर व्यंग करने वाले अंश को देखिए –

"काए का हो गओ?"

"का बताएं बैदजी, हमें कुल्ल दिना से नींद नई आ रई।"

"काए? एसो का करत रहत हो? कोनऊ चिन्ता–फिर लिगी हूहे?"

"अरे बैदजी, इनसे का पूछत हो?" पति और वैद्य के संवाद के बीच पत्नी बना स्वांगी बेड़नी की ओर इशारा कर के बोल उठता है, – "हमसे पूछो, इने नींद आये कहां से, आंखन में तो जे बाई बसीं हैं।"

समसामयिकता के गुण ने स्वांग के कलेवर को लगातार नया कथ्य प्रदान किया है। इसीलिए समाजसुधार एवं जागरूकता लाने के लिए भी स्वांग विधा का खुल कर प्रयोग किया जा रहा है। नुक्कड़ नाट्य के रूप में प्रस्तुत किये जाने वाले स्वांग में मद्य–निषेध, मलेरिया उन्मूलन, परिवार नियोजन, साक्षरता, धूम्रपान आदि नशा विरोध जैसे विषयों को समाहित किया जाने लगा है। स्वांग में निहित व्यंग विधान के कारण शुष्क लगने वाले इन विषयों को भी पर्याप्त सरसतापूर्वक प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के लिए साक्षरता विषयक स्वांग का एक अंश –

"काए का हो गओ? ऐसे काए कूंद रये?"

"जो चिट्ठी आई है।"

"का लिखो है चिट्ठी में?"

"अब हमें का पतो?"

"का पतो? अरे नास मिटे, जोई लाने तो हम कहत हैं के खेल–कूंद छोड़ के कछु पड़ा–वड़ा करें।"

"पड़ा करें? औ कित्ते पड़ा चाउंने? हमाए इते दो करिया पड़ा (भैंस के बच्चे) पेलई से हैं?"

"हे परमेसर, पड़ा माने भैंस को पड़ा नाय, किताबें पड़ा परे, किताबें, समझीं के नईं?"

"अच्छा किताबें। का करहें किताबें पढ कें? किताबें सो मोटी–मोटी होत हैं, जे चिट्ठी तो इत्ती पतरी आए। पतरी के लाने मोटी खों का काम?"

इस प्रकार संवाद का विस्तार अपनी पूर्ण रोचकता के साथ प्रस्तुति के मूल उद्देश्य को प्राप्त करता है। किसी भी प्रस्तुति में दर्शक, श्रोता अथवा पाठक को "हुकअप" कर लेने की क्षमता सबसे अधिक मायने रखती है। स्वांग में यह "हुकअप" की क्रिया व्यंग से ही शुरू होती है। स्वांगी स्वांग प्रारम्भ करते ही कोई ऐसा संवाद बोलता है अथवा कोई ऐसी चेष्टा करता है जिसमें व्यंग का पुट होता है। कुछ नहीं तो व्यंगात्मक ढंग से "आए हाय हाय" कह कर हाथ मटका देता है कि देखने वाले उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना न रह सकें।

स्वांग चाहे त्यौहार का हो अथवा राई के मध्य का हो उसमें सामयिकता, चुटीलापन और संवाद का पैनापन अवश्य पाया जाता है स्वांग बुन्देली नाट्य साहित्य की वह प्रस्तुति है जो अपने प्रत्येक पक्ष से व्यंग विधान से ओतप्रोत है। सामंती युग में भी स्वांग के माध्यम से बड़ी पैनी व्यंग प्रस्तुतियां की गई हैं। उस समय स्वांगी राजाओं, सामंतों की शरण में जीवनयापन करते चूकते थे। ये हंसी–मजाक करते हुए प्रजा पर होने वाले अत्याचार, धर्माधिकारियों के ढकोसलों, अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले शोषण का खुलासा तो कर ही देते थे साथ ही अपने संरक्षक राजा अथवा सामंत की विलासिता को उजागर करने से भी नहीं चूकते थे। वर्तमान समय में सागर के कनेरा देव में निवास करने वाले सुप्रसिद्ध स्वांगी रामसहाय पाण्डे के द्वारा प्राप्त जानकारी के अनुसार शिवगढ़ के राजा शिवदत्त के विरुद्ध किसान आन्दोलन में स्वांग को विरोध प्रदर्शन का माध्यम बनाया गया था। स्वांग के अंत में हजारों किसानों ने एक साथ स्वांग गीत गाते हुए जता दिया था कि वे अब राजा का अत्याचार और नहीं सहेंगे –

राजा तोरी राजा सहिया मिठाई देवै न,
तोह के काली माय धनवां चढ़ाय देवै न।।

वस्तुतः स्वांग में पाखंडी, कंजूस, अंधविश्वासी, ढोंगी, असंस्कारी, विधुर, लंगड़ा, काना आदि कोई भी और कुछ भी विषय के रूप में प्रयुक्त हो सकता है। स्वांग के संवाद सहज, सरल और स्वतः जन्मे होते हैं अतः उनमें क्लीष्टता अथवा बनावटीपन का प्रश्न ही नहीं होता है। इसमें जनमानस के विचारों को पिरोया जाता है तथा हास्य–विनोद में लपेट कर प्रस्तुत किया जाता है। इसीलिए स्वांग का संपूर्ण स्वरूप अभिव्यंजनात्मक है और इसीलिए यह विधा कालजयी है।

– एम/111, शांतिविहार, रजाखेड़ी, सागर ☐

पटवारी का स्वांग : मूल पाठ (संशोधित)

संकलन : डॉ. सुश्री शरद सिंह द्वारा

नोट : दो लोगों के बीच जमीन के बंटवारे को लेकर विवाद पर आधारित है यह स्वांग।

पात्र –
भगुंता – प्रथम किसान
पंचू – द्वितीय किसान
पटवारी
मुखिया

(नाचते–नाचते थककर बेड़नी जमीन पर लेट जाती है और सुस्ताने लगती है। बाद में विवादित जमीन के रूप में स्वांग में शामिल हो जाती है।)

भगुंता और पंचू का आपस में विवाद करते हुए प्रवेश।

भगुंता – आज तुमाई गइया हमाए खेंत में काए पेंड़ दई? काय तुमाए बाप को खेत आए का? काल से दिखानी तो हमसे बुरऔ कोऊ न हुइये। तुमें और गइया को, हम दोई खों निपटा देहें।

पंचू – (ताव खाते हुए) काए, कैसो निपटा देहो? काए तुमाए बाप की जांगा आए? हमाई गइया हमाए मेंड पे चर रई थी, उतई चरहे। ओ कान खोल के सुन लो, जो तुम आज एक के लाने जे दोंदरा देरये हो न, देख लइयो काल पूरी गोंखर न चराई तो हम काए के? तुमसे जो जो बने सो कर लइयो।

भगुंता – देखो पंचू, गोंखर तो बौत बड़ी बात है, अब की बार तुम तक हमाई मेंड़ पे खड़े हो के देखियो, दोई टांगें न काट दईं तो हम असल बाप के न कहाए।

पंचू – काय बे, बौत बोल रओ?

(दोनों इसी प्रकार मेंड़ पर अपना–अपना दावा बताते, झगड़ते रहते हैं उसी समय उधर से मुखिया गुजरता है। वह दोनों की बातें सुनकर दोनों को सलाह देता है)

मुखिया – काय रे, काय लड़ रये हो? हमाई कही मानो तौ पटवारी को बुला लो औ खेत नपवा लो। कोन की कित्ती मेड है समझ में आ जेहे।

भगुंता – हओ मुखिया जी, हमतो जो भी कराबे तैयार हैं। पटवारी जी खों अबई बुलवाए लेत हैं।

पंचू – अरे, तू का बुलेहे, बे आ रये सामने पटवारी जी।

(पटवारी भगुंता और पंचू के पास से गुजरने लगता है तो पंचू पटवारी से कहता है।)

पंचू – पटवारी जी, हम औरों के जे खेत नाप दो और बिल्कुल ठीक–ठीक मेंड़ें बता दो। जो ठठरी को बरो भगुंता हमाई मेंड़ खों अपनी बता रओ है।

पटवारी – (झुंझलाते हुए) हमाओ दिमाग ने चाटो। हमाए पास उसई टेम नइयां। हम बौत जल्दी में हैं। हमाओ कुत्ता बीमार है।

(तब तक बेड़नी जमीन के रूप में भगुंता और पंचू के बीच लेट जाती है)

मुखिया – अरे, पटवारी जी, इन ओरन में मरबे–मारबे की परी है, पैले इन ओरन की सल्ल निपटा देओ। तुमाए कुत्ता खों कछु हो गओ तो हम दूसरो दे देहें।

पटवारी – अच्छा बताओ कौन–सी जमीन आए?

(जमीन के रूप में बेड़नी को दिखा दिया जाता है।)

पटवारी – अच्छा–अच्छा, जा आए। तुम औरों के पास पैले के कछु कागज–मागज आए?

भगुंता – कागज? कहूं डरे हूंहे। हम तो जे जानत हैं के जो नीचे को हींसा हमाओ और जो ऊपर को जे पंचुआ को। (भगुंता बेड़नी की कमर से ऊपर और नीचे के भाग की ओर इशारा करता हुआ कहता है।)

पंचू – हौ सो, पर और नीचे को तुमाओ आए। इते से नई, जे इते से।

(पंचू बना स्वांगिया अश्लील संकेत करता है)

पटवारी – मों ऐ कए से कछु न हूहे, जाओ औ जा के तुम ओरें कागज–मागज लै के आओ। तनक जे तो देखो के हमें इते बिधा के मुखिया जी दूर ठाड़े हो गए। खैर, तुम ओरे भाग के जाओ और कागज ले आओ। (स्वगत कथन) जान दो दोई बेवकूफन खों फेर जा जमीन भई हमाई।

(भगुंता और पंचू पटवारी के कहने पर कागज लेने चल देते हैं। उनके जाते ही पटवारी बेड़नी को हाथ पकड़ कर उठाता है और अपने साथ लेकर चल देता है)

इसी के साथ स्वांग का गायन होता है –

"पटवारी बेइमान, भड़ुआ ने नापे, भरका नाप दैए।"

– समाप्त –

बुन्देली कहावतें : एक अमूल्य धरोहर

– किशोरी लाल गुप्त

कहावतें, यथार्थ अनुभव का नतीजा हैं या किये हुए कार्यों का निचोड़ कहें तो अतिश्योक्ति न होगी। ये शत–प्रतिशत जाँची, समझी व परखीं होती हैं। लोकाचार में, अपने जीवन में, पग–पग पर काम आने वाली बातों में ये समाहित होती हैं। कहावतें, मौखिक शिक्षा का एक सुन्दर नमूना भी होती हैं। कुछ कहावतों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से तीव्र व्यंग भी छिपा रहता है जिसे सुनकर लोग – 'तिलमिला' जाते हैं, सहम जाते हैं और कहीं–कहीं तो निरुत्तर भी हो जाते हैं। कहावतें, अपनी 'ताकत' के ही आधार पर आज तक चल रही हैं और अपनी 'शान' व 'साख' बनाये हुये हैं। जीवन के हर मोड़ पर ये 'जीवन्त' हैं और उपयोगी हैं। वैसे तो ये, हर भाषा बोली व क्षेत्र विशेष की पहचान हैं पर हमारी 'बुन्देली–कहावतें' तो लोगों के दिलोदिमाग पर छायी रहती हैं या रची–बसी हैं। इन्हें चाहे जब बड़ी आसानी से छोटे–बड़ों की जुवां पर सुनीं जा सकती हैं। जो हमारे 'बुन्देलखण्ड' की अमूल्य धरोहर है।

जैसे ज्यादा दिखावा करने वालों का या 'बनावटी' लोगों को हमारी कहावत झकझोर देती है और लोग कहते हैं – *'वैराग में ठिकानो नैयां, भभूत के मारें आँखें फूटी जात।'* जो व्यक्ति अपनी औकात से बाहर जाता है या अपनी सामर्थ्य से ज्यादा खर्च करता है तो इसे भी कहावत मौजूद है – *'सावन के अंधरे खों, हरौ–हरौ दिखात।'* जो घर में अकेला है या जिसके बाल–बच्चे नहीं है तो वह कहता है कि हमें क्या – *'आगे नाथ न पीछे पगा।'* जिस घर में बहू अकेली है और मनमौजी से खाती–बनाती है तो मुहल्ले–पड़ोस की औरतें कह देती हैं – *'सासरे नंदा अकेलो मनमंदा।'* या *'अपनो हाथ जगन्नाथ'* जिस चीज की जरूरत हो वह न मिले या उससे घटिया स्तर की चीज मिले तो लोग कहते हैं कि ठीक है – *'काजर न होय तो लुअर आँज लो'।* इसी तरह लोगों को सचेत करने के लिये कितनी सुंदर व सटीक कहावत प्रयुक्त होती है – *'ने बात विरानी कैये न ऐचकतानी सैये'।* या *'ने एक कब ने दो कुआव'* लेनदेन पर भी एक कहावत प्रचलित है – *'लेना करकें देना करौ और मौन ने होय तो ऊसई मरौ।'* आलसहीन होकर तुरन्त काम करने को प्रेरित करती हुयी कहावत दृष्टव्य है – *'तुर्त दान–महाकल्यान'* जो दूसरों की गल्तियां निकालता है और अपनी छुपाता है उसे भी नहीं छोड़ा यहा की कहावतों ने – यथा – *'कानी अपनों टेंट तो निहारत नैयां दूसरे की फुली–परैं–परैं देखत'।* इसी तरह किसी से कोई असलियत का पता लगाना हो तो या लोकशिक्षा के लिये बोलने का ढंग बताना हो तो कहा गया है कि – *'काने से काना कहौ तो तुरतई जैंठे रूठ और धीरे–धीरे पूंछ लो कैसे गई थी फूट।'* रिश्तेदारी में जाने और वहाँ रुकने तथा वहां के आवभगत के सम्बन्ध में एक समय–सीमा बतायी गयी है जो यथार्थता को छूती है जैसे – *'एक दिना के पावने दूसरे दिना के पई और तीसरे दिना ने गए तो हरामजादे कई'।*

लोगों के स्वभाव (प्रकृति) पर भी यहाँ कहावत प्रसिद्ध है कि स्वभाव बदलता नहीं है। कहा है – *'जाको जौन सुभाव जाय न जी से' नीम न मीठी होय खाव गुड़ –घी से।'* दुहरा नुकसान होने पर लोग कहते हैं – *'बहु की बहु गई और तौलनया पैसा।'* जिसमें योग्यता होती है वह किसी के कहलवाने या प्रशंसा के लिये मोहताज नहीं और यदि कहलवाता है तो वह योग्य नहीं जैसे – *'हांके से ट्ट चलै, सूंघे अतर बसाय।'* जहां अव्यवस्था ज्यादा होती है लोग कह देते हैं – *'ब्याव कैसो भर्रो, चाय जां पर्रो।'*

इसी तरह दान देने वाली वस्तु के गुण–दोष नहीं देखे जाते। कहावत है – *'दान की बिछया के कान न होत'।* आनंद के दिनों में लोग अपना कर्त्तव्य भी भूल जाते हैं यथा – *'खान लगे दूध भात, भूल गए मताई–बाप।'* जो धन का सदुपयोग नहीं करते या जो लोभी हैं, धन जमा करते–रहते हैं उसका परिणाम कहावत में है – *'लोभी को धन लाबर खाय और बचै सरकारे जाय।'*

शिक्षित बेरोजगारों की ओर इंगित करती ये कहावत कितनी समीचीन है – *'पढें फारसी, बैंचें तेल जे देखो करमन के खेल'।* काम के महत्व या कर्त्तव्य बोध को दर्शाती ये कहावत – *'पढौ, नई तो पिंजरा खाली करौ'* इसी तरह जो कमाई करते हैं उनकी कितनी महत्ता है यथा – *'दुधारू गाय की लातैं भलीं।'* किसी का जी जलाना है या हैरान व्यक्ति को और परेशान करने को कहते हैं – *जरै पै नोन डारवो।* कम करते–करते भी यदि कर्त्तव्य निर्वाह में भी एक से बढ़कर एक रोडे अटकते हैं तो लोग कहते हैं ठीक है – *'ऊखरी में मूड दओ तो मूसर कौ का डर।'* यानी संघर्षमय जीवन से क्या करना?

ले–देकर या प्रशंसा अथवा सेवा करके अपना काम बनाना हो तो कहावत मौजूद है – *'ओंगन लगाव तो चक नईं चेंकत।'* पढ़ाई (शिक्षा) के महत्व को दर्शाती ये कहावत कितनी सटीक है – यथा – *पढ़ ले बेरा आप खों, का मा खों, का बाप खों।'* यदि अपनी खुद की कमी है तो कहावत

है– 'अपनो दाम खोटौ, परखैये का दोष'।

इसी तरह घर में, किसी आदमी की मृत्यु होने पर सम्बन्धीजन शोक संवेदना हेतु घर में बैठने को आते हैं तो घर के लोगों को उनके खाने–पीने की व्यवस्था भी करनी पड़ती है और 'रोना' भी पड़ता है तो कहावत है – *'लुटे और लोड़न पिटें'*

कुल लोग सब कुछ खाते–पीते हुए भी अपनी विशिष्टता बनाये रखने के लिए विशेष हिदायते देते हैं उनको कहावत है *'गुर खायें, गुलगुलन से परेज करें।'* इसी तरह जिस चीज को बनाने में हम जितना श्रम करेंगे या लागत लगायेंगे वह चीज उतनी ही अच्छी बनेंगी कहावत है – *'जित्तो गुर डारौ उत्तई गुरीरो हुइये।'* कोई छोटा आदमी बड़ा बन जाये या प्रतिष्ठित पद पर पहुंच जाये तो लोग कहेंगे – *'गुरू गुरई बने रये चेला शक्कर हो गये।'* जो पढे–लिखे नहीं हैं कहते हैं – *'ऊना मासी धम, बाप पढ़े न हम'*। आज की शिक्षा पर किया गया व्यंग कितना अचूक है इस कहावत में –

पढ–पढ के पड़ा भये और लिख–लिख के भए ठाट।
पंडत जी ने घर पूंछी सो सोला दूनी आठ।।

कम महत्व के लोगों को कहावत है – *'ऐरा, गेरा, नत्थूखैरा'* सामाजिक विकृति पैदा करने वालों को भी यहाँ की कहावतों ने नहीं बक्शा है यथा – *'दोई पलीता दे दओ तेल, तुम नाचौ हम देखें खेंल'*

इसी तरह किसी के यहाँ कोई चीज बमुश्किल आ पाई तो उसे लगता है कि हम इसे अपने गांव, मुहल्ला वालों को भी बता दें कि हमारे पास भी कोई चीज है। कहावत बड़ी सटीक है – *'नंगू के गड़ई भई, बेर–बेर हगन गई'* ऐसे थोड़े काम से ही काम बन जाए तो बड़ा कार्य न करना पड़े एतदर्थ कहावत है – *पादें सटै तो हगन काय खों जाएं?* इसी तरह अकेले में तो कोई करता रहता है अपना काम और यदि कार्य करते समय कोई घर आ जाये तो *'अैया देखें बैयां दुखन लगी'* अर्थात वह कहता है कि काम करते–करते हम कितने थक गए हैं? या हम सब से ज्यादा काम करते हैं? बहाना बनाना हो तो कहावत प्रचलित है कि – *'नाच न आवै, आंगन टेढ़ौ'*। जिससे जितना मिल सके एतदर्थ कहावत है – *'भागते भूत की लंगोटी भली'* जो खुद की इज्जत चाहे उसे दूसरे की भी इज्जत रखनी पड़ेगी कहावत है – *'राखपत सौ रखापत'*। निरक्षरता का अभिशाप अभी भी कायम है लोग कहते हैं *'करिया अक्षर भैंस बिरोबर'* समर्थ से ज्यादा काम फैलाना या ज्यादा लोभी बनना – *'कड़ी मुरत नैयां, बरी पै – हाथ पसारें।'* आलसी लोगों की कहावत है – *'बर, मोरे मौं में पर।'* बेशरम लोगों की भी खबर ली है यहां की कहावतों ने – *'सूपा हंसे सो हंसे, चल्लीं भी हंसे जी में बहत्तर छेद।'* बुन्देली कहावतों ने जीवन के हर क्षेत्र को छुआ है, झकझोरा और सोचने को विवश भी किया है। इसी तरह एक पति पर स्त्री से अनैतिक सम्बंध स्थापित कर लेता है तो इसकी पत्नी को पता चल जाता है तो वह अपने पति से कहती है और फटकारती है इस कहावत में – *'काय, काँ गए ते, राक खान'; काय! घर को घूरो काँ गव तो?'* पति निरुत्तर रह जाता है। इसी तरह यर्थाथता से कोई बढ़ता है या गप्प मारना चाहता है तो लोग 'टोंक' देते हैं – *'मामा के आगें, ममयारे की ने छाँटो।'*

चीज पास में होते हुए भी बाहर 'हल्ला' करना या प्रचार–प्रसार करना एतदर्थ भी कहावत है – *'कांख में लरका, गांव में टेर'* अपनी फजीहत या अपना अपमान होने पर लाभ भी मिले तो इसे अनुचित बताया है इस कहावत में – *'बरै ऊ सोनो जी में, नाक–कान फटैं।'* रूढ़ि तोड़ने के लिये कहावत है – *'जनम भर सेई काशी, मरवे आए मगर की पाटी।'* बगुले भक्त को भी नहीं छोड़ कहावत नें – *'मौं में राम, कसाई के दाम।'* अपनी–अपनी बघारने वाले की भी खबर ली कहावत ने – *'बैरा खोदे काँदी, बैर गिने न आँदी।'*

यदि लाभ न हुआ और हानि ज्यादा हुई तो कहावत कितनी 'खरी' उतर रही है – *'जितने के भगत नैयां उतने के मजीरा फूटे जात।'* निरर्थक प्रयास में कोई न फिरे एतदर्थ कहावत है – *'मर गई, किल्ली – काजर खों।'* प्रफुल्लार्थ कहावत है – *'मन चंगा तो कठौती में गंगा'* जहां बेहद खर्च हो रहा हो वहां छोटी–छोटी बातों में लड़ना–झगड़ना व्यर्थ है जैसे – *'गाँज में आग लगी पूरन को लेखो करत।'* अनाथ लोगों की भी खबर ली कहावत ने – *'माई ने जाने मायको, लरका कत के ममयावरों काँ?'* बेशर्म लोगों की भी हद होती है। इस कहावत जैसी नहीं यथा– *'बेशरम की नाक पै रूख जमों वो कत मोय छांयरोई भव।'* सबको अपनी–अपनी पड़ी है एतदर्थ कहावतें क्या कहती हैं – *'सबरो गांव भगत जात– बौरू अपनो बिछौना करत जात।'* इसी तरह *'कोऊ कय कऊँ की, मदन कय–मऊ की।'* एक और बानगी देखिए – *'घर कौ परसैया, अंधियारी रात'*। अच्छे काम करने वालों को पूछने की क्या जरूरत – *नेकी और पूंछ–पूंछ?* अपना कर्तव्य निर्वाह करने पर कोई हानि नहीं यथा – *''देवी दर्शन ने देय तौ घरैं तो आँऊन देय।'* बेईमानी ज्यादा समय तक टिकाऊ नहीं रहती नतीजा – *'पानी को धन पानी में, नाक कटी बेईमानी में।'* किसी एक के रोकने पर काम नहीं रुकता जैसे – *'कुकरा ने बोले तो कय भुन्सरा ने हुयिये?'* इसी तरह *'एक बानिया ने आए तो कय बाजार ने लगे।'* कोई, दिखाने को तो काम खूब करता है पर काम होता बहुत कम है या न के बराबर तो

कहावत है – *रात भर पीसो, पारे के उठाव।*

इसी तरह स्वार्थपरक लोगों की भी खबर ली कहावतों ने, यथा – *'खीर खों सोंज, महेरे खों न्यारे।* *खात को अपनो, अचेऊत खों पराव।' काम परै पै कक्का, नई तो रमचंदा हैंई हैं।' ओई पतरी में खाव, ओई में छेद करौ।* इसी तरह कर्मफल तुरंत नहीं मिलता कहावत है – *हर्र बाएं टर्र नाईं बोलत।'* जिसके कोई सगे सम्बंधी नहीं सिर्फ अकेला है तो उसे कहीं भी जाने में कोई फर्क नहीं पड़ता यथा – *'जैसा घर ऊँसई बरिया को तर।'* पोल (यथार्थता का पता लगने पर) खुलने पर कहावत है – *'नाव बड़े और दर्शन छोटे'*

इन तमाम कहावतों के होते हुए कुछ स्वास्थ्य सम्बधी भी कहावतें प्रचलन में हैं यदि इन पर गौर किया जाये और अमल किया जाये तो व्यक्ति स्वस्थ जीवन जी सकता है। संयम व खान–पान में परहेज रखकर अपने को सुखी बना सकता है। कहावतें दृष्टव्य हैं – *'निन्ने पियो जो पियें और भूंजी हर्र खांय उनके घरै वेद ने जाये।' 'खाये चेऊवा चढ़ी ताप, का करै मताई–बाप'।* कहावतों में बारह महिनों का परहेज कुछ इस तरह बताया है –

'चैते गुड, बैशाखे तेल – जैठे लटा अषाढ़े बेल
सावन नीबू, भादौ मई – क्वांर करेला कातक दई
अगन आंवरे पूषैं धना – माव मिश्री फागुन चना
जै चीजें जौ बंध के खैहे – बुना बुलाएँ सुर्ग सौं जैहें।

यानि ऊपर लिखी चीजें उस माह में न खाएँ। नहीं तो बहु नुकसान हो सकता है और व्यक्ति मर भी सकता इसलिये ऊपर लिखी चीजों का परहेज अवश्य करें।

इस तरह हम देखते हैं कि हमारे बुन्देलखण्ड व प्रचलित कहावतें जीवन के हर मोड़ पर उपलब्ध हैं। यद्यपि कहावतें किसी क्षेत्र विशेष या भाषा क्षेत्र की नहीं होत इनका क्षेत्र व्यापक होता है तथापि जो कहावतें जहाँ औ जिस भाग या बोली में प्रयुक्त होती हैं वहाँ उपयोगी हैं औ हमेशा साथ देती हैं। 'हरि अनंत हरि कथा अनंता' इनक कोई आर–पार नहीं?

कहावतें वास्तव में शिक्षाप्रद, रोचक व हितकारी हैं

– पचौर वार्ड, शाहगढ़, सागर □

कविताएँ

– श्रीमती विजयश्री बुन्देला

बेटा–बेटी

बेटी के ब्याह की समस्या, आज आम है,
हर मध्यमवर्गीय जिस बात से, परेशान है,
इसीलिये– मां–बाप के लिए बेटी एक 'कर्ज' है,
जिसे पढ़ाना–लिखाना, फिर ससुराल भेजना,
वो समझते हैं, उनका फर्ज है।
किन्तु –
बेटियां कहां कम हैं, किसी भी नजरिये में बेटों से,
आप नाहक ही 'फर्क' किया करते हो,
पालना–पोसना एक ही तरह से पड़ता है दोनों को,
फिर क्यों आप 'नर' और 'मादा' का 'भेद' किया करते हो?
आप तो –
समभाव से शिक्षा–दीक्षा की,
बेटा–बेटी की व्यवस्था कीजिये,
इनके मन में लड़का–लड़की का
भेदभाव न पनपने दीजिये,
अपनी माली हालत से, उन्हें अवगत कीजिये,
बढ़ते बच्चों को जिम्मेवारियों का 'अहसास' दीजिये।
ऐसा नहीं – आज का बच्चा इन सबसे अंजान हो,
पर जरूरी है, जिम्मेवारियां उसकी 'अपनी' है,
ऐसा भी उसे 'भान' हो।

जीवन तब सार्थक होगा

औरों की पीड़ा, उनके दुःखों को,
समझने की कामना हो,
परमार्थ के अर्थ को समझकर,
कार्य करने की भावना हो,
मानव जीवन तब ही सार्थक हो पायेगा,
अन्यथा –
हम भाषण देते, व्यर्थ के आयोजन करते,
जहां से परमार्थ की कामना लेकर, चले थे,
वहीं वापस लौट आयेंगे,
बेबस, बेसहारा, परित्यक्ता, दुखियों को,
कुछ कहाँ दे पायेंगे.........?

नवजागरण तब हो पायेगा

केवल बातों से ही,
'नव जागरण' नहीं है, होने वाला,
भाषण, सेमीनारों से भी,
काम नहीं है, चलने वाला,
'नारी जागृति' के लिए जरूरी
करे आत्मचिंतन स्वयं अब नारी,
'पुत्र जन्म' पर हर्ष विभोर,
'पुत्री जन्म' पर खिन्न मन,
क्यों होती है , अब भी नारी.....?
स्वय नारी को ही, यह 'भेद' मिटाना होगा,
'नारी'–'नारी' की शत्रु नहीं,
समझाना होगा।

–महल परिसर, छतरपुर □

बुन्देलखण्ड की परम्परागत वेशभूषा

– कु. रामकिशोरी गुप्ता

किसी भी जनपद या क्षेत्र विशेष की पहचान उसकी भौगोलिक स्थिति भाषा–बोली, यहां के निवासियों का रहन–सहन, खान–पान एवं वस्त्राभूषण आदि से होती है। बुन्देलखण्डवासियों का पारम्परिक पहनावा अर्थात वस्त्र एवं आभूषण अब लगभग समाप्तप्राय हैं। दूरस्थ अंचलों में यदा–कदा यह वस्त्र आभूषण दिखाई दे जाते हैं। एक कहावत है – *"लिपैं घर नौनों, पैरें ओड़े बऊ नौनी।"* जिससे महिलाओं के वस्त्राभूषणों की अनिवार्यता प्रतिपादित होती है।

बुन्देलखण्ड में महिलाओं की मुख्य पोशाक घंघरा, पोलका और नुंगरों थी। पहनावे को देखकर उनके बुन्देलखण्डी होने का सहज में अनुमान लगाया जा सकता था।

अधोवस्त्र के रूप में घंगरा के अतिरिक्त लहंगा अथवा जोरौ भी पहना जाता था। लहंगा सूती कपड़े का, छींट का, रेशमी या साटन का बनता था। छींट के बने लहंगे को छींट, छिमरिया कहा जाता था। यह कम दाम का होता था, 12 हाथ के घेर वाले घंघरा को लहंगा कहते थे। इससे कम घेर वाले को घंघरा/लहंगा या जोरौ के लिए विशेष रूप से बने वस्त्र को बांड कहते थे।

शादी विवाह के अवसर पर चढ़ाने के लिए विशेष रूप से लहंगा बनवाया जाता था, जो बनारसी, जड़तारी, रेशमी, कमखाब अथवा तीन खाब नामक वस्त्र से बनता था। सामान्य स्थिति के लोग लाल पीले हरे रंग के कपड़े का लहंगा सिलवाकर उसमें गोटा किनारी लगवाते थे और सलमा सितारे जड़वा लिया करते थे। विवाह के लिए इस प्रकार विशेष रूप से तैयार कराये गये अधोवस्त्र को सोगी या गस्ता कहते थे। छोटी–छोटी बच्चियों के अधोवस्त्र को घंघरिया कहते थे। बहुत समय पहले से ही लहंगा का चलन कम होने लगा था क्योंकि यह धोती की अपेक्षा महंगा पड़ता था। शादी–व्याह, पूजा–रचा, बुलौआ–चलौआ के अवसर पर इसका पहनना आज से 40–50 वर्ष पूर्व तक अनिवार्य था। घंघरा के एवज में महिलायें साड़ी पहनने लगी थीं। 24 घंटे पहनी जाने वाली साड़ी को बुन्देली भाषा में धुतिया कहते थे। पहले ये, सात, आठ, नौ तथा बारह गज की हुआ करती थी, जो कि कांप लगाकर पहनी जाती थी। धुतिया मोटे कपड़े की होती थी क्योंकि उस समय पेटीकोट पहनने का रिवाज नहीं था। यह धुतिया सफेद किनारीदार हुआ करती थी। इनकी किनारी चौंड़ी पतली जिनमें विभिन्न या एक ही रंग के धागे से बेलबूटे, मोर, बतख आदि बने रहते थे। यह गंदी न हो इसके लिए महिलायें पक्के गुलाबी रंग, नीले, हरे, रंग में रंग लिया करती थीं। विशेष अवसर पर बुलौआ–चलौआ आदि में पहने जाने वाली किनारीदार विभिन्न रंगों की धुतिया होती थी जिसे इकलाई कहा जाता था, या फिर वायल की सादा धोती में गोटा बांकड़ी की किनारी आदि टांककर पहनती थीं।

घंघरा के ऊपर पोलका पहना जाता था इसकी बनावट कुछ–कुछ पुरुषों की कुर्ती जैसी होती थी इसकी लंबाई कमर तक होती थी जो लहंगे के नेफा को ढके रहती थी। ये बिल्कुल ढीला–ढाला रहता था तथा आस्तीन जो बांह कहलाती थीं, चुन्नटदार बनाई जाती थीं। ढीला होने के कारण इसे पहनने–उतारने में कठिनाई नहीं होती थी। कुर्ती की तरह यह भी सामने खुला होता था जिसमें एक तरफ चद्दर के बटन और दूसरी तरफ काज बने रहते थे। शादी ब्याह के लिए इसे भी सोगी की भांति सजाया जाता था। इसके नीचे पहनने के लिए चुस्त वस्त्र के रूप में चोली या अंगिया का चलन बहुत कम था। मुसलमानों में विशेष रूप से सब्जीफरोश (कुंजड़ों) की महिलायें जम्फर पहनती थीं जिसका चलन अभी भी है।

सर पर ओढ़ने वाला वस्त्र नुंगरो (लुंगरौ) कहलाता था यह आयताकार होता था तथा इसके चारों किनारों पर गोट लगी रहती थी। शादी के लिए लुंगरे को भी सौजी और पोलका की तरह गोटा जड़तार आदि से सजाया जाता था। लुंगरे के ऊपर पिछौरा (चादर) ओढ़ा जाता था। घर से बाहर निकलने पर महिलाओं को पिछौरा ओढ़ना अनिवार्य था। ये लंबे होते थे जो अधिकांश सफेद चिकन के या चारों ओर बौकड़ी लगे हुए होते थे। शादी विवाह के अवसर पर तो आज भी नई बहू की विदा पिछौरा ओढ़ाकर होती है। महिलाओं का झुकाव पुनः अपनी इस वेशभूषा की तरफ बढ़ा है और पुनः लहंगा चुनरी में नई उम्र की बहू–बेटियों को शादी–ब्याह आदि अवसरों पर देखा जा सकता है। पिछौरा ओढ़ने का रिवाज मुसलमान महिलाओं में आज भी है।

बच्चियों के ओढ़ने वाले वस्त्र को फरिया कहते थे कन्या भोज के विशेष आयोजन के अवसर पर उन्हें घंघरिया, फरिया पहनाना अत्यन्त पुण्य का कार्य माना जाता था। गरीब–अमीर अपनी अपनी–अपनी हैसियत के अनुसार

कन्याओं को घघरिया–फरिया पहनाया करते थे।

बुन्देलखण्डी पुरुषों की पोशाक आज के समय में कभी कभार दूरस्थ ग्रामीणान्चलों में देखने को मिल जाती है। पुरुषों की पारम्परिक पोशाक के अन्तर्गत पहले सिर पर शेला, मंडील, पाग बांधने का रिवाज आया। धीरे–धीरे पाग बांधने का रिवाज समाप्त होता गया और उसका स्थान सुवाफा ने ले लिया। धीरे–धीरे सुवाफा (साफा) का रिवाज भी कम होता गया और आ गया समय गोल टोपी या किश्तीदार टोपी का। मुसलमानों को यदा–कदा तुर्की टोपी लगाये हुए देखा जाता रहा। पंजाबियों में पगड़ी बांधने का रिवाज रहा। नंगे सिर घूमना अशिष्टता का प्रतीक माना जाता था। राज दरबार में नंगे सिर प्रवेश करना पूर्णतः वर्जित था। एक पुरानी कहावत ही है – "खुदा मिले और नंगे सिर" मुझे लिखते समय याद आयी अपने पड़ोसी की जो मेरे घर के सामने गहोई परिवार के दो भाई अविवाहित रहते थे। जिन्हें छोटे और बड़े दद्दू कहा करते थे। जब वे सुबह द्वारे पर उरैन (गोबर से लीपना) डालते तो सिर पर स्वापी रख लिया करते थे किन्तु अब तो यह सभी चीजें चलन के बाहर हो गयी हैं। नंगे सिर घूमना ही आज का फैशन हो गया है।

अधोवस्त्र के रूप में पंचा या परदनी पहनने का रिवाज था। पंचा की लम्बाई कम होने के कारण यह घुटनों तक पहना जाता था जो गरीब वर्ग की पोषाक थी उनसे श्रेष्ठ वर्ग के लोग परदनी पहनते थे। जो कि शान की मानी जाती थी। राजा, जागीरदार, जमीदार और ठकरास में विरजिस, चूड़ीदार, पजामा, सराई आदि पहनने का रिवाज था।

शरीर ढकने के लिए फतूम, कुर्ती, कुर्ता, सलूका, कालबंडी, मिरजाई, कमीज, कट्टा पहना जाता था। सम्पन्न घरानों के लोग कमीज के ऊपर बंडा, शेरवानी, सदरी, अचकन या लंबा कोट पहनते थे। क्षत्रियों में कमर में फेंटा बांधने का चलन था। कंधे पर अंगोछा, अंगोछी अथवा स्वापी डाले रहते थे।

आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व तक पहने जाने वाले वस्त्रों का अब तो नाम ही शेष रह गया है। कुछ समय पश्चात् हमारी भावी पीढ़ी इन वस्त्रों के नाम ही भूल जायेगी और यह सब इतिहास की विषय वस्तु बनकर रह जायेगी।

– शिवहरे गली, कटरा बाजार, टीकमगढ़ □

काव्यभाषा और कहावतें

– डॉ. वीरेन्द्र 'निर्झर'

कहावतें जहाँ एक ओर बोलचाल की सशक्त भाषा के अनिवार्य उपकरण हैं, वहीं साहित्य रचना के लिए भी कम उपयोगी नहीं। समाज के ताये हुए कंचनीवरण ये अनुभव अपने लक्ष्यार्थ में रूढ़ होकर अभिव्यक्ति के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। इनके प्रयोग से रचना अभिव्यक्ति प्रवण और मर्मस्पर्शी बन जाती हैं। बुन्देला ठाकुर नामक बुन्देलखण्डी कथा में कहावतों के प्रयोग से ठाकुर साहब का चरित्र थोड़े ही शब्दों में अपनी पूरी व्यंजकता के साथ रूपायित हुआ है–

"पुराने समै की बात आय। एक बुन्देला ठाकुर हते। नाम तो रूपसिंग जोरू न जाँतो, खुदा से नाँतो, कन कन कंडा, कोरे गुंडा और जिमीन जाँगा, अचलपुर के राजा।' जे (कहावतें) कानूतें उनके लानें सबई तराँ सें साँसी हतीं। पै सो हते बड़े शौकीन। जिमीन जायजाद तौ तन हती पै मन की का कानै। नकरियाँ काट के बेंचबे पै ठाट सो अमीरियई बनाउत ते। कओ जात – मन चंगा तो कठौती में गंगा।'

ऐसे ही काव्य में इने संस्पर्श से माथे और शिथिल भाव भी तीक्ष्ण तीर की तरह संवेद्य और प्रभावी बन सके हैं। कवि जुगलेश कृत निम्नांकित पंक्तियों में स्वार्थी मित्र के प्रति उत्थित भाव कहावत की अनी से मिलकर तीर के समान मर्मभेदी बन सके हैं –

सुख में सुख देख मनावै खुशी, दुख में दुख देख भगै दई मारौ
गर्ज सरें फिर नाहीं मिलैं उर गर्ज परें नईं छौड़त द्वारौ
जुगुलेश दगैल की प्रीत बुरी नहिं कीजिए बूड़ि मरै मजधारौ
मीत न ऐसो करै सपने रहैं खीर में सौंज महेरी में न्यारौ

लोक प्रचलित इन उपमानों–कहावतों का आश्रय पाकर काव्य भाषा अपने अभीष्ट को अभिव्यक्त करने में समर्थ हो जाती है। भाषा की रूढ़ता के ये सहज स्वरूप रूढ़ रूप न रहकर शाश्वत अभिव्यंजना के प्रसाधन बन जाते हैं। इनके द्वारा काव्य में वह प्रभाव उत्पन्न होता है जो कई कई पदों में भी संभव नहीं। थोड़ी शब्दों में गहरी भावाभिव्यक्ति सम्प्रेषित करने संबंधी एक कहावती चित्र देखें –

हेरती हौ जिनकी नित बाट वे ठाट ठये कछु खैर न लैहैं,
वे तौ भये कुबजा के हितू उन चेरी कौ चित्त महेरी ही चैहैं,
पाहन सें न पसीजें की आस सो अन्त निरास ही हाँथ में ऐहैं,
पाँव फटी न बिवाई कबों जिनकों तिनको कहा पीर पिरैहैं।।

कहावतों का प्रयोग न केवल काव्य को मर्मस्पर्शी और संवेद्य बनाने में ही सहायक है बल्कि वह कवि के सामाजिक अनुभव और सूक्ष्म पर्यवेक्षण की द्योतित भी करता है। इस सम्बन्ध में ईसुरी की इन पंक्तियों को देखें–

तोरौ मन पापी तन नोनों, एक भाँत में दोनों,
मन में रात अंदेस सबई कोऊ, तन कौ मचौ दिखौनों,
मन माटी कौ मोल कदर कम, तन की कीमत सोनों,
ईसुर एक नोन बिन सबरो लागत बिंजन रौनों।।

ऐसा ही एक छन्द और देखें –

ऐसो सुराज मिलौ हमें आज सो लाज कौं द्रोपदी कीकों निहोरैं,
कोऊ से लार समेटें बनै नई कोऊ बरौ गगरीन सौं बोरैं,
झोरै कोऊ बिरिया सी, तिली सी अकोरै कोऊ भदुआ सी निचोरैं,
देखि न आवै कोऊ अपनो इहाँ बारी ही खेत के खान हाँ दौरै।।

लोकानुभव की यह रमणीयता आज युगों–युगों के बाद भी वैसी ही प्रभावी और अभिरंजक है। ख्याली कवि की निम्नस्थ पंक्तियों में व्यंजित – "उजारै जाकें का कुदवन हाँ चरतीं" कहावत भावाभिव्यंजना की दृष्टि से बहुत सटीक बन पड़ी है –

अपने घर में घरुआ करतीं, बाहर पांव न धरतीं।
हैं बंदूक जोग नाहर के, खरै काय कौं मरतीं।
बाने बांद सिपाइन केरे अब काहे खाँ डरतीं।
ख्याली राम उजारै जाकें का कुदवन खाँ चरतीं।।

काव्य में कहावतों का उपयोग सहजोदगार, कथन की पुष्टि और उक्ति–वैचित्र्य के साधन रूप ही में अधिक हुआ है। प्रायः हृदय की पीर और कसक जब किन्हीं आघातों प्रतिघातों से विचलित हो उठती है, दूध से कढ़े मक्खन की भांति वह मुख तक आ ही जाती है। विरह वेदना से संतृप्त ठाकुर की गोपियों की भावना को उद्धव के वचन सुन कर भारी ठेस लगती है जिससे उनका दुखित हृदय व्यंग्य वृत्ति से समन्वित कृष्ण को बुरा–भला कह ही उठता है –

खेत कुटुम्ब से लीन्हीं उखार नबेर नबेर कें स्वाद नबीनी,
फेर दुरे दुरे खाई बधाय रुचि न रुची की जनाय न दीनी,
ठाकुर यों कहतीं ब्रज बाल सो ऊधौ सुनौ जौ कथा रस भीनी,
खाईं कछू बगराई कछू हरि, गोपी गुलाम की गाजरें कीनीं।।

यहां 'गुलाम की गाजरें' कहावत द्वारा गोपियों की खीझ जिस तीखेपन के साथ उपस्थित हुई है वह हृदय में चुभे बिना नहीं रहती। समस्त रूपक और कहावत के माध्यम से गोपियाँ कृष्ण की निंदा करती हैं और कहती हैं कि वे द्वारिकावासी हैं, बड़े हैं उन्हें कोई कुछ नहीं कह

सकता, किन्तु उनकी दुर्भावनाओं और मलीन विचारों ने हमें कहीं का नहीं रख छोड़ा है। जूँठी गाजरों की तरह त्याज्य हम आज जो भी हैं उन्हीं की बनाई हुई है।

ऐसे ही एक अन्य छंद में बार–बार रोके जाने पर भी अपने मन की करके दुखित होने वाली सखी के प्रति उसकी सखियों की खीझपूर्ण सहजोक्ति का प्रकाशन कहावत के माध्यम से निम्नांकित सवैया में दृष्टव्य है –

हों बरजीब बर बीसक लौं दुलही यहि मारग सांवरो आवै।
ढीठ भई चितवै चहुँओर अमंद हँसै हँसि हार हिलावै।
हौं तौ कही न बिलाकु गुलालहिं यौं उरझी अब क्यों सुरझावै।
जो बिस खाय तौ प्रान तजै गुरखाय सो काहे न कान छिदावै।।

उक्ति–वैचित्र्य की दृष्टि से काव्य में वचन चातुरी, विनोद, परिहास एवं कटूक्ति के अवसरों पर कहावतों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। इनके माध्यम से कम से कम शब्दों में बड़ी से बड़ी हृदयाभिव्यक्ति को भी अभिरंजक रूप में प्रस्तुत किया जा सका है। निम्न छंद में कृष्ण के चरित्र पर कटूक्ति करती हुई गोपियाँ कहती हैं –

जैसेई लाल बड़े रिझवार है बैसेई संग मिलो अनमोलौ।
चंद्रमुखी तजि राधे सी बामहिं कूबरी सों हित मानकै बोलौ।
ठाकुर तो सों कहा कहिए चुपकें रहिए गहिकें अनबोलौ।
आंधरे साहेब के घर में दमरी कौ हिसाब हजारा को जोलौ।।

उपहास में "दमरी को हिसाब हजारा कौ जोलौ" कहावत बड़ी सहायक है। शिष्टता के साथ कृष्ण के प्रति उपालम्भ भी है, और कम से कम शब्दों में हृदय की वेदना का प्रकाशन भी। उक्ति वैचित्र्य के संदर्भ में एक और कहावत का प्रयोग देखें –

बे सब जानती थीं उनकों पर मोंपै परी यह दीठि तिरीछी,
घैर सहो घर हाइन कौ अरू बानी सही कछु तीर सी तीछी,
ठाकुर बे हरि छोड़ गये अब यों ही बकै बकबादिनी छी छी,
ऊधौ जू दोस तुम्हें न उन्हें हम लीन्ही है आपने हाँथ में बीछी।

"हम लीन्हीं है आपने हात में बीछी" के माध्यम से राधिका सारा दोष कृष्ण पर न मढ़ते हुए भी मढ़ रही है। वे कृष्ण ही तो हैं जिनकी वजह से उसे घर और बाहर सभी जगह कटूक्तियाँ सुननी पड़ रही हैं।'

सहजोदगार और उक्ति–वैचित्र्य के अतिरिक्त काव्य में कहावतों का प्रयोग साक्षी के रूप में भी हुआ है। अपनी बात की पुष्टि में गवाही देती हुई कहावतों का चित्र ठाकुर कवि के एक छन्द में देखें, कथन को कितना प्रभावी और प्रामाणिक बना देता है –

ऊधो जू भाग हमारे लटे उनकी तो धनी सुधरी उधरी है
बांह हमारे ही कंध तें खेंचिकै कूबरी कंध पै धाय धरी है
ठाकुर या कहनावति और की साँचिए आजहू आनि परी है
मोरे चिरी कों चिरी कहावीर पै मीर सिकार की कारीगरी है

ठाकुर कवि के छन्दों में साक्षी रूप में हावतों का प्रयोग पर्याप्त है, एक छंद और देखें –

छोड़ पतिवृत प्रीत करी निबही नहिं सोन सुनी हम सोऊ
मौन भये रइनेई परो सहनेई परो जो कहै कछु कोऊ,
सांची भई कहनावतिया कवि ठाकुर कान सुनी हती जोऊ
माया मिली नहि राम मिले दुविधा में गये सजनी सुनु दोऊ।

इसी संदर्भ में जनकवि ईसुरी की एक फाग भी देखें –

करलो प्रीत खुलासा गोरी, जा मनसा है मोरी,
ऐसी करलो ठोंक तारियां, फिर न टूटै टोरी,
देह धरे कौ मजा उड़ा लो, जा मनसा है मोरी,
ईसुर कात होत है नईयाँ, ऊँट की न्योरें चोरी।।

इस प्रकार कहावतों का महत्व काव्य भाषा में अन्यतम है। साहित्य में कहावतों की व्यंजकता, सटीकता और प्रभविष्णुता की पूर्ति किसी भी अन्य उपकरण से नहीं की जा सकती। थोड़े शब्दों में व्यापक अर्थ छवि को उपस्थित करने में समर्थ कहावतें हमारी भाषा की अमूल्य निधि है।

– अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
सेवा सदन कालेज, बुरहानपुर

मैंया मोय मायके–सें

– जगदीश्वर

मैंया मोय मायके सें न आये काय लिबउआ,
पुरा–परौसी ठलुआ ठाड़े कर रये हंसी ठिठउआ।
आंखें पथरा गई हमारी,
मैंया खों हेरत–हेरत।
मुइयां मुरझा गई मताई
की ममता टेरत–टेरत।।
खा रय मठा–लटा संग गा रय कोदों औं कनकौआ,
मैया मोय मायके सें न आये काय लिबउआ।
कौआ बैठो है मुंडेर पै,
हमरी हँसी उड़ा रव।
सुआ सुनत नैंया बतकारौ,
उड़–उड़ के चिड़का रव।।
बेर–कलेवां बेर बेर कर, कर दो टूका–टौआ,
मैया मोय मायके सें न आये काय लिबउआ।
करिया आखर भैंस बराबर,
करम मोय हैं फूटे।
उड़ी चिरैया पिंजरा सें,
हम न चकिया सें छूटे।।
'जगदीश्वर' पढ़ लिख लो बिन्नू कै रइ बौरी बौआ
मैया मोय मायके से न आये काय लिबउआ।

– कमला कॉलोनी, छतरपुर

हमारे घर आये राजाराम सरकार

– वीरेन्द्र बहादुर खरे

बात बहुत पुरानी है तब न हम थे न तुम इसलिये न बात शत प्रतिशत सच है न शत प्रतिशत झूठ। कुछ पोथी में पढ़ी, कुछ पुरुषों से सुनी। कुछ लोक मानस ने नमक–मिर्च लगा कर सुनाई। नई–नई बुन्देलों की राजधानी बनी ओरछा नगरी अपने श्रृंगार पर स्वयं मोहित हो जाती थी। ईंट और चूने के बने भव्य भवन और बाहर को निकले उसके जालीदार झरोखे उसे इन्द्रपुरी बना देते थे। जब नई नवेली बहुयें घूंघट की ओट से और कुंवारी कन्यायें नागिन–सी चोटी लहराती खिड़कियों से नगर का नजारा देखती थीं तो राह चलतों को उन्हें देखर इन्द्र की अप्सराओं का गुमान होता था।

नगर का राजा था, भगवान राम के पुत्र कुश का वंशज गहरवार बुन्देला मधुकरशाह वाका संजीला पुरुष धर्म पर ऐसे फिदा जैसे कमल पर मुधकर। आन का पक्का, ईमान का सच्चा था। राजपूती आन जिसका निहोरा करती। राजा राजपूतों की गिरती साख को संभालने वाला एवं मर्यादा का रक्षक बन गया था।

जमाना बड़ा खराब था। दिल्ली के सिंहासन के लिये मारा–मारी मची थी, पठान सरदार जगह–जगह लूट मार करते थे। हिन्दू हैरान, व्यापारी परेशान थे। पुराने हिन्दू राजा अपनी चमक खो बैठे थे। कालिंजर समर्पित हो गया। दिल्ली की गद्दी पर अकबर रूपी बाल सूर्य चमकने की तैयारी कर रहा था। बीकानेर, जैसलमेर, आमेर, जोधपुर, अकबर के हुक्म के तावेदार हो गये थे। महाराणा प्रताप वनवासी हो गये थे। केवल ओरछा था जो हिन्दूधर्म की पताका फहरा रहा था।

ओरछा रात के सन्नाटे में मौन हो गया था। भव्य भवनों के झरोखों से टिमटिमाते दिये जंगलों में चमकते जुगनुओं से झिलमिला रहे थे। चतुर्भुज एवं नृसिंह मंदिर से शंख और झालर की ध्वनि आना बन्द हो गयी थी। भगवान को भोग लग चुका जान राजा भोजन को उठने ही वाले थे कि एक सेवक ने आकर जुहार की और कहा महाराज नृसिंह मन्दिर में आज एक साधू ने भोजन नहीं किया है। वे आपसे एकान्त में मिलना चाहते हैं और बिना आपसे मिले अन्न पानी लेने से इंकार कर रहे हैं। राजा ने सेवक को डांटा और कहा "इसमें परेशानी की क्या बात थी। साधू–संतों के दर्शन करना तो सौभाग्य की बात है उन्हें आदर सहित ले आओ।" थोड़ी ही देर में एक साधू महल के अन्दर आते दिखे। उनकी उम्र 80 वर्ष के लगभग होगी। उनकी डाढ़ी सफेद सन की तरह थी और जटायें रुई की तरह सफेद, सफेद धोती, गले में तुलसी की माला, चौडे माथे पर त्रिपुन्ड व्यक्तित्व को भव्यता प्रदान कर रहे थे।

महाराजा मधुकर ने रानी गणेश कुंअरि के साथ संत के चरण पखारे। वे फिर प्रकोष्ठ में आये। दासों ने दीपाधारों में जलते हुये दीपों में तेल डाल दिया, दीप तेज ज्योति फैलाने लगे। राजा ने साधू से प्रार्थना की "पहले आप जल ग्रहण करने की कृपा करें, फिर जो आदेश देंगे उसे पूरा करने का प्रयास करुंगा।"

साधू बोला –"बेटा हम साधू रात को अन्न ग्रहण नहीं करते हैं। केवल दूध और फल ही पर्याप्त होंगे लेकिन पहले मेरी बात पूरी हो जाय।"

महाराज मैं न सनकी साधू हूँ और न ही पागल। मेरा नाम रामशरणदास है। मैं अयोध्या के हनुमान अखाड़े का साधू हूँ। राम का गुणगान करना और मानव की सेवा करना ही जीवन का लक्ष्य है। पर बेटा आज कल शान्ति से राम का नाम लेना और वह भी अयोध्या में कठिन हो रहा है। यद्यपि आज कल अयोध्या में शान्ति है, अकबर अभी तो भला शासक लग रहा है। हिन्दूओं पर से तीर्थ–यात्रा की रोक हटा दी है। जजिया कर भी समाप्त कर दिया है फिर भी भरोसा नहीं होता है, पता नहीं कब बदल जाये। मुझे एक ही चिन्ता खाये जा रही है। इसका जन्म आज से 60 वर्ष पूर्व हुआ था। उस समय देश में सिकन्दर शाह लोधी का राज था। वह बड़ा जालिम था उसके हाथ तो मन्दिरों को तोड़ने और मूर्तियों को नष्ट करने के लिये खुजलाते रहते थे। उस काल में हम लोगों का सुख से राम नाम लेना कठित था और अयोध्या नगरी तो और असहाय थी। धार्मिक दृष्टि से अयोध्या जितनी पवित्र एवं महत्वपूर्ण थी राजनैतिक दृष्टि से उतनी ही शक्तिहीन थी। अवध के सूबे पर सिकन्दर लोदी का पूरा अधिकार था। अवध का सूबेदार जूल्झयार खाँ अपने आका से भी दो कदम आगे था।

महाराज धार्मिक नगरी अयोध्या का सब से महत्वपूर्ण एवं आस्था का केन्द्र था रामराजा का महल या मन्दिर। यह महल सरयू नदी के किनारे बना था। वह कितना पुराना था कोई नहीं जानता। जन मानस में ऐसा विश्वास था कि भगवान दशरथ नंदन राम के रूप में इसी स्थान में पैदा हुये थे। अयोध्या के पुराने राजमहल के खण्डहरों के स्थान पर यह मंदिर बना था। कहते हैं यह मन्दिर महाराज

विक्रमादित्य ने बनवाया था। इस मन्दिर के गर्भगृह में राम एवं सीता की दो विशाल सुन्दर प्रतिमायें प्रतिष्ठित थीं। सैकड़ों वर्षों से जन मानस की श्रद्धा पाते-पाते वे बड़ी पावन एवं सिद्ध हो गई थीं।

मन्दिर में भगवान राजा की तरह सम्मान पाते थे। सुबह प्रभाती के साथ राम का जागरण होता था। भक्तों का समूह स्तुति करता। दोपहर को राजाराम को भोग लगता था शाम को आरती के बाद भगवान शयन करते थे।

एक दिन मैं सरयू में स्नान कर रहा था तभी मुझे एक फकीर ने आवाज दी मैं उसके पास कौतूहलवश आ गया। वह धीरे से फुस-फुसाया – "बेटा भाग जा यहां से दो-चार दिन में एक खुदा का बन्दा दूसरे खुदा के बुत को नापाक करेंगे और उसके बन्दे को जहुन्नम रसीद करेंगे। अयोध्या में खून की नदियां बहने वाली हैं। शाह का कहर टूटने वाला है इस शहर के ऊपर।" मैं जब फकीर के पास से नगर में आया तो मुझे भगवान राम एवं सीता की प्रतिमाओं की चिंता सता रही थी। मन्दिर तो मर कर भी नहीं बचाया जा सकता था पर मूर्तियों की रक्षा का प्रयास किया जा सकता था। क्या ये सुन्दर प्रतिमायें सचमुच तोड़ दी जायेंगी। मन कहता था कौन बचाएगा इन्हे? साधुओं का समाज! जो मंजीरा बजाना जानता है खोपड़ी बजाना नहीं! जो माला फेरना जानता है लाठी भांजना नहीं। हमारे पास न सेना थी न अस्त्र-शस्त्र। उस रात मैं सो न सका मैंनें एक निश्चय किया और रात के तीसरे पहर सबके सो जाने पर चोरों की भांति मैंने प्रतिमाओं को गर्भ गृह में उखाड़ा उन्हें रात को ही सुरक्षित करने के लिये जंगल की ओर भागा। बाद में जो कुछ हुआ वह दिल दहलाने वाला था। दूसरे दिन सूरज पूरी तरह उग भी नहीं पाया था- सुल्तान की सेना ने नगर में प्रवेश कर मंदिरों को गिराना प्रारम्भ कर दिया। प्राचीन मंदिर धरती में मिला दिया गया।

500 साधुओं को मार डाला गया। अखाड़े उजड़ गये। मैंने उन प्रतिमाओं को जंगल में गाड़ दिया और उस स्थान पर अपनी झोपड़ी बना ली। धीरे-धीरे सब शान्त हो गया अयोध्या में फिर अखाड़े बस गये। पर मैं अशान्त और भयभीत था। मैं उस झोपड़ी को कभी नहीं छोड़ता था। तबसे आज तक उस झोपड़ी में अयोध्या पति राम को बसाये हूँ। उन्हें रूखा-सूखा भोग लगाता हूँ। मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ, जाने कब आँखें मुंद जायें। सोच नहीं पाता कि मेरे बाद मेरे राम का क्या होगा। क्या भाग्य पाया है मेरे राम ने। मानव रूप में अवतार लिया तो पिता ने निर्वासित किया। वे मूर्तिरूप में भी अपनी जन्मभूमि में स्थान नहीं पा सके। मेरे मरने के बाद कोई सूनी झोपड़ी को न गिरादे और इनका अपमान न कर दे यह भय मुझे न जीने दे रहा है न मरने। आपको पाकर ऐसा लगता है जैसे मैंने ठिकाना पालिया, मैं आज राम के वंशज गहरवार बुन्देला शूर को उनकी थाती सौंप कर मुक्त होना चाहता हूँ। महाराज आप मुझे निराश तो न करेंगे। यह कहकर साधू मौन हो गये महाराज के बोलने से पहले गणेश कुँवरि बोल उठीं – "गुरु देव यह हमारा परम सौभाग्य होगा अगर आप राम राजा की पावन प्रतिमाओं की चरणरज पाने का अवसर दे दें।" महाराज बोले – "गुरुदेव अपने भूभाग में धरती एवं वनों का सहारा लेकर मुगल चौकियों पर आक्रमण करना और बात है और मुगल बादशाह की राज्य-सीमा में जाकर प्रतिमा लाना शेर की मांद में जाकर शेर को ललकारना है। धर्म के लिये मुझे इस कार्य को करने से भी इंकार नहीं, पर क्या आप इस नगरी को भगवान राम के योग्य मानते हैं। क्या उनको वह गौरव एवं सम्मान मिलेगा जो अयोध्या के राजाराम को मिलता था। यहाँ तो वे अगणित राम मूर्तियों में से एक ही होंगी।" "ठीक कहते हो वत्स" साधू बोले "ऐसा उपाय किया जायेगा जिससे वे उसी गौरव के साथ ओरछा पधारें। मैं कल ही अयोध्या के लिये प्रस्थान कर दूँगा। लगभग एक माह में अयोध्या पहुँच जाऊँगा। आप अगले माह फाल्गुन तक अयोध्या पहुँच जायें।"

यह कथा 1574 के आस पास की है। रानी गणेश कुँवरि बहुत अकुला रही थी। वे शीघ्र से शीघ्र अयोध्या जाकर प्रतिमाओं को पाना चाहती थी। रानी की अयोध्या यात्रा ओरछा में चर्चा का विषय बन गई। रानी विश्वसनीय सैनिकों और दासों को लेकर अयोध्या को चल दीं। लगभग 10 दिनों में अयोध्या पहुँच गईं। स्वामी रामशरण दास तीसरे दिन रानी से मिले। बोले – "लगता है भगवान राम ने मेरी सुन ली। रामनवमी भी पास आ रही है। चाहता हूँ कि रामनवमी के दिन राजाराम अयोध्या से ओरछा के लिये प्रस्थान करें। महारानी कल मैंने पंचाग देखा तो एक सुखद संयोग मिला इस बार रामनवमी के दिन ऐसा ही योग है – जैसा त्रेता युग में रामजन्म के समय था। आज के दिन महात्मा तुलसी भाषा में रामचरित्र लिख रहे हैं शायद यह दिन राम जन्म के रूप में अमर होना चाहता है।" स्वामी रामदास ने एकान्त में रानी से चर्चा की और वे अपने स्थान को चले गये।

रानी ने अयोध्या के मन्दिरों में दान-पुण्य किया। कथावार्ता में भी शामिल होती थीं। भक्ति एवं दानशीलता के कारण वे शीघ्र ही सन्यासियों के बीच चर्चा का विषय बन गईं। रामनवमी का दिन आ गया।

अयोध्या में हर्ष और उल्लास का साम्राज्य था। जगह-जगह रामकथा हो रही थी। रानी ने उपवास किया

और रामनवमी के दिन वे सरयू स्नान के लिये पानी में उतरीं। पानी में उतरते ही उन्होंने जोर से कहा – "हे राम मैं अपने पति से प्रतिज्ञा करके आई हूँ कि मैं अयोध्या आपको लेकर ही लौटूंगी वरना नहीं। अगर मैंने आपकी सच्चे मन से सेवा की है तो मेरी पत रखना और अयोध्या छोड़ने से पहले मेरी गोद में आजाना वरना मैं सरयू में डूबकर प्राणों को समाप्त कर दूंगी। सरयू घाट में श्रद्धालु लोगों की भीड़ थी। रानी के शब्द घाट में गूंज गये। लोग रानी के सेवकों से पूछते। सेवक लोगों को बतलाते – "ये ओरछा की महारानी हैं ये राम भक्त हैं और पति महाराज मधुकर शाह कृष्ण भक्त हैं, रानी राम–दर्शन के लिये अयोध्या आना चाहती थीं। रास्ते की परेशानी को देखते हुए महाराज ने उन्हें रोका। रानी किसी प्रकार नहीं मानी और तीर्थ यात्रा पर आने की जिद किये रहीं तो राजा ने ताना मारा – "रानी तुम तो ऐसे रट लगा रही हो जैसे अयोध्या के राजाराम तुम्हारे साथ ओरछा आने के लिये व्याकुल हो रहे हों।" रानी ने भी कह दिया – "अब तो मैं राम को लेकर ही ओरछा लौटूंगीं वरना वहीं प्राण दे दूंगी और जल समाधि ले लूंगी।" बात एक कान से दूसरे कान में पहुंची लोगों ने रानी के विलक्षण हठ को सुना। ऐसी रानी को देखने को भीड़ लग गई।

तभी स्वामी रामशरण दास भीड़ को चीरते हुये रानी के समीप जल में आये और बोले – "बेटी यह कलयुग है कई–कई जन्मों तक तपस्या करने पर भी भगवान की कृपा–दृष्टि नहीं होती। पति की बात पर यो गांठ नहीं बांध लेते हैं। तू लौट जा, साधु–संतों की सेवा कर और राजसुख भोग। रानी नहीं मानी वे गहरे पानी में गोता लगाकर डूबीं पर वे अगले ही क्षण खुशी से चिल्लाते हुये 'मिल गये मिल गये' कहते हुये उभरीं। लोगों ने कुछ विस्मय कुछ अविश्वास से रानी की ओर देखा। रानी ने घाट पर खड़े स्वामी जी से कहा महाराज एक विशाल प्रतिमा मेरे हाथों में आते–आते खिसक गई। सबसे पहले श्री रामशरण दास पानी में उतरे और महारानी के बतलाये स्थान पर उन्होंने गोता लगाया और शीघ्र ही भगवान राम की सुन्दर प्रतिमा के साथ पानी से बाहर आये। बोले – "बेटी मान गया। भगवान ने जब कृपा की है तो वे अकेले न होंगे माँ जानकी भी साथ होगी। देखता हूँ और वे फिर पानी में गोता लगा गये अब वे माता सीता की प्रतिमा को लेकर पानी से निकले।

साराघाट राजाराम की जयजयकार से गूंज उठा। लोग रानी की भी जयजयकार कर रहे थे। मूर्तियां सचमुच सुन्दर थी जैसे विश्वकर्मा ने अपने हाथों से उनकी रचना की हो, भीड़ आश्चर्यचकित थी, रानी ने मूर्ति को अपने आँचल से पौछा स्वामी जी ने उनकी विधिवत पूजा की।

इधर रानी ओरछा लौटने की तैयारी कर रही थीं उधर साधुओं ने जो अद्भुत मूर्ति देखी तो वे उन्हें अयोध्या में प्रतिष्ठित करने की हठ ठान बैठे स्वामी रामशरणदास जी ने जब यह तूफान उठा देखा तो उन्होंने साधूओं को समझाया। बोले हरि इच्छा है कि वे ओरछा जायें नहीं तो रानी हठ क्यों ठानती और राम उन्हें क्यों मिलते। आप लोग भी तो रोज स्नान करते ही हो। आपको क्यों नहीं मिले प्रभु? क्या आप उनकी इच्छा के बिना उन्हें यहां रोक सकेंगे। संतो तुममें से बहुत संत तब पैदा भी नहीं हुये थे जब अयोध्या के मन्दिरों का विनाश किया गया। उस विनाश का दृश्य आज भी मेरी आंखों में झूलता है। इन्हें जाने दो, तुममें इतनी शक्ति नहीं है कि तुम इनको रोक सको। गुरु जी के प्रयास से जनमत शान्त हो गया। स्वामी जी ने रानी से कहा बेटी यात्रा पुष्य नक्षत्र में करना। रास्ते में पठानों का प्रभाव है। कालपी तक का रास्ता जोखम भरा है। तुम्हारी कीर्ति उन तक पहुँच गई होगी। व्यर्थ रक्तपात न हो इसका ध्यान रहे।

ओरछा में 1574 वर्ष में एक चर्चा आम थी, लोग एक दूसरे से कहते सुना है महारानी अयोध्या से भगवान राम को साथ ला रही है। दूसरा कहता जैसे ही महारानी सरयू में स्नान रने उतरी एक सुन्दर पुरुष रानी को दिखाई दिया जिसकी चार भुजायें थी। उसके एक हाथ में पद्मम एक में शंख एक में चक्र एवं एक में गदा था। उसने कहा – "मुझे ओरछा ले चलो मैं कब से पानी में हूँ।" दूसरे आदमी ने कहा – "भइया राजा के व्यंग से आहत रानी ने जैसे ही प्रार्थना की उन्हें ऐसा लगा जैसे धनुषधारी राम सीता सहित खड़े कह रहे हों चलो ले चलो मैं तैयार हूँ। कोई कहता जैसे ही रानी भगवान को लेकर पानी के ऊपर आई देवताओं ने आकाश से फूल बरसाये। जितने मुंह उतनी बातें ओरछा में फैल रही थी।

राम राजा के स्वागत में ओरछा को खूब सजाया गया था जगह–जगह आम्रपत्रों से तोरण सजाये गये। रास्ते के दोनों ओर सुहागिन नारियां मंगलकलश लिये दीप सजाये खड़ी थीं। कहीं कन्यायें हाथ में चन्दन कपूर एवं मुद्राओं से भले थाल लिये खड़ी थीं। पुरवासियों का उत्साह मन में नहीं समारहा था। लगता था अयोध्या वनवास से लौटे रामसीता का स्वागत ओरछा के रूप में कर रहा है। वेतवा राम को देखने के लिये सरयू बन गई। रानी ने जैसे ही नगर में प्रवेश किया वातावरण राजाराम की जय से गूंज उठा। रानी ने आगे वढ़कर स्वागत को आये महाराज मधुकर शाह के पैर छुये। राजा की आंखों में प्रेम के आंसू थे और ओरछा की नारियों के अधरों पर था– *"हमारे घर आये राम सरकार"*।

–उप प्राचार्य डाइट, कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ □

बुन्देली लोकगीतों में आभूषण

– श्रीमती मधु श्रीवास्तव



लोक संस्कृति मे आभूषण बाहय सौंदर्य है तो लोक साहित्य और लोकगीत जनसाधारण का भावनात्मक सौंदर्य है। शुभ अवसरों पर दोनों का महत्व समान रूप से होता है। आभूषण पहनना स्त्री जाति का स्वभाव है। सोलह श्रृंगार सुहागन स्त्री का सौंदर्य अलंकारों से और भी बढ़ जाता है, इस कथन की पुष्टि मध्य युगीन कवि केशव के इस दोहे से होती है –

जदपि सुजाति सुलच्छना, सुवरन सरस सुवृत।
भूषण बिना न राजहि, कविता वनिता मित्र।।

बुन्देलखण्ड में परम्परागत अनेक आभूषण है, जो नारी के सौंदर्य को द्विगुणित कर देते हैं। जैसे – सिर व माथे पर बेंदी, बिन्दी, शीशफूल, बीजौ, सांकरे है तो नाक में – लौंग, खुटिया बारी, बुलाक, नथ, पुंगरिया, और कानों में झुमका, झुमकी, छागल, कनफूल, लटकन, बाला, ऐरन, अरोना आदि। गले में पहने जाते हैं टकाउर, हँसुली, तिदौना, हार, तबिजिया, ढुलनियाँ लल्लरी, कठला, हमेल, ठुसी, बिचौली, आदि। बाँहों व हाथों में – बाजूबंद, बाँकड़े, बांहटा, चुरियाँ, चूरा, कड़ा, गजरा, बंगरी, ककना बरा, बेंगुआ, पाँसे, बजुल्ला आदि पहने जाते हैं। हाथों की अँगुलियों में मुंदरी, छला, हथ पोस और कमर में करधनी, कड़डोरा, गुच्छा आदि सुशोभित होते हैं। पैरों में धारण करने वाले प्रमुख आभूषण है – लच्छा रूले, पायलें, पैंजना, बिछुआ, अनौटा, छल्ली डंगरठाने, मोरबार, कड़े, गूजरी झाँझें आदि।

स्त्रियों एवं बालक–बालिकाओं के भी अनेक आभूषण होते हैं।

वेदों के अनुसार स्वर्ण से निर्मित आभूषण श्रेष्ठ माने गये हैं, जिससे उनकी पवित्रता बनी रहती है, साथ ही वे दीर्घ आयुवर्द्धक भी होते हैं, ऐसा विश्वास है कि शरीर पर धारण की गयी धातु व रत्न का सम्बन्ध–जन्म राशि के ग्रहों से होता है। जो ग्रहों के प्रतिकूल प्रभाव को अनुकूल बनाकर विपरीत परिस्थितियों में हमारी रक्षा करते हैं।

आभूषण पहनने का प्रचलन समाज के सभी वर्गों में पाया जाता है केवल सामर्थ्य अनुसार स्थिति परिवर्तित हो जाती है। जहाँ धनी वर्ग स्वर्ण व रत्नजटित आभूषण अधिकता में धारण करता है, वहीं मध्यम वर्ग उन्हें कम संख्या में पहनता है, और निम्न वर्ग मूल्यवान धातु न प्रयोग करके उसके स्थान पर चाँदी, गिलट, ताँबा, पीतल, काँसा व काँच के रंग बिरंगे गुरियों से बने आभूषण धारण करता है।

यद्यपि आधुनिकता के प्रभाव से बुन्देली आभूषण अपने परम्परागत रूप को खो चुके हैं, इस कारण उनका चलन लगभग समाप्त हो गया है। विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले पारम्परिक लोकगीतों में अभी भी आभूषणों का वर्णन आता है, जो हमें उनके अस्तित्व से जोड़े रखता है।

बुन्देली लोकगीत समय ऋतु व अवसर को दृष्टिगत रखकर गाये जाते हैं उनके प्रकार भी अलग–अलग होते हैं।

किसी भी शुभकार्य में सर्वप्रथम देवी गीत गाने की प्रथा है, इसमें भी आभूषणों का वर्णन मिलता है

माई तोरी धूरा भरी पैंजनियाँ।

और

मोसे भुवन चढ़ो न जाय लंगुरिया
एड़ी में धमक लगे पायल की।

मनुष्य के जीवन में सोलह संस्कार होते हैं जिसमें जन्म संस्कार उल्लेखनीय है। इस समय नेग, निछावर व उपहार देने की परम्परा है, जिसमें आभूषण प्रमुख हैं। जन्म के अवसर पर दाई द्वारा 'नरा छीनना' एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो वह नेद लेकर पूरी करती है। इस 'सोहर' गीत के माध्यम से आभूषणों का प्रलोभन देकर उसे मनाया जा रहा है –

कैसी मचल रही दाई अवध में।
सोने की चुरियाँ कौसिल्या लये ठाड़ी।
बईन लै दाई...............
सोने की हार कैकई लये ठाड़ी, कूलो मरोर रई दाई,
सोने की तिलरी सुमित्रा लयें ठाड़ी, मुखई न बोले दाई,
मुतियन हार राजा लयें ठाड़े, नजर न हेरे दाई,
कैसी मचल......................

शिशु को पालने में झुलाते हुये स्त्रियों के हाथों के विभिन्न आभूषण इस 'पालना' गीत में वर्णित हैं –

लाल ललुआ पालनै, मोरो झम–झम झूलैं।
झुलावै ललना की मइया, उनके सोने गजरा हाथ,
झुलावै ललना की काकी, उनके सोने के ककना हाथ,
झुलावै ललना की बुआ, उनके सोने की गुंजै हाथ,
लाल ललुआ......................

बच्चे के जन्म पर ननद का बड़ा महत्व होता है और बधावे में शिशु के आभूषण लेकर आती है। लेकिन कमी का उलाहना मजाक में भाभी दे ही देती है –

छूटा न ल्याई पौंचिया न ल्याई,
पटवा को यार संगई लैके आई।
चूरा न ल्याई करदौनी न ल्याई,
सुनरा कौ यार संगई लैके आई।

ननद अपना नेग माँगना नहीं भूलती –

दै राखों भौजी मोहे कंकना लालन भयेके।

भाभी भी कहाँ पीछे रहने वाली है, वह ननद की सभी इच्छायें पूरी करना चाहती है, लेकिन चतुरता से –

माँगो–माँगो ननद बैया जो माँगो सो देय।
जेवर तौ जिन माँगो बैया, डब्बन को सिंगार है,
जेवर में से नथनी लै जा, सरजा लैहों काटरी,
माँगो.................

कुंआ पूजन' गीत में भी आभूषण वर्णन है –

हम पैरे मूंगन की माला, हमारी कोऊ, गगरी उतारौ।

जन्म संस्कार के बाद जीवन का महत्वपूर्ण संस्कार है विवाह। इस अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीत तो मानो आभूषण वर्णन के बिना तिल बराबर भी आगे नहीं बढ़ते। वधू को तो आभूषणों से अलंकृत किया ही जाता है लेकिन वर को भी विवाह के समय आभूषण पहनाने की प्रथा है।

कानन कुण्डल राम जू खों सोहे,
सो गालन बिच मुतियन लर सरकत है।
केसर खौर मोरें राम जू खों सोहे,
सो गर बिच गोप–जंजीर बसत है।
कचन, चूरा मोरे राम जू खौ सोहे,
सो हांतन बिच गजरा सजत है।

विवाह बिना 'गारी' के सम्पन्न नहीं हो सकते –

भरी सभा में बैठे समदी,
बड़े–बड़े झल्ले मारे रे।
गोप गुंज भारे की पैरें,
लर भारे की डारें रे।

इसी तरह 'राई' गीत में –

पन्ना हीरा की खान,
मोरी बेंदी में हीरा जड़ा दो।

चैती गीत' में भी शहरों का नाम है जो आभूषणों के लिये प्रसिद्ध हैं। –

दतिया की बजन बाँक
पैंजना अजब बनौ चरखारी को।

बुन्देलखण्ड में बालिकाओं का विशिष्ट लोकपर्व 'नौरता है, उसमें अपनी गौर की साज सज्जा का वर्णन वे इस प्रकार करती है

अपनी गौर की झाँई देखो, काहो पहरें देखो।
कान तरकुला देखो, नाक नथुनियाँ देखो।
हाथ ककनवां देखो, पाँव पैजंनियाँ देखो।

वर्षा ऋतु में गाये जाने वाले 'राछरे' भी आभूषण वर्णन से अछूते नहीं रह जाते हैं –

खेल खेलौ नदी जमना तीर, दुलारौ हरिसंग खेलो प्यारी
माथे हो बीज जड़ाये, बाकी बेंदन की छब न्यारी।
कान तरकुला झुमकन वारे खुटलन की छब न्यारी।
गरे खग वारौ गुजांव की बाकी हँसली की छब न्यारी।
बाँहन बोंटा झंझरी, बाकें बाजू बंद की छब न्यारी।
हाँतन कंगन जड़ाऊ बारो, बाके ककरन की छब न्यारी।
कम्मर करधौंनी, बाकी झंझरी की छब न्यारी।
पाउँन पैजनियाँ, बाके बिछियन की छब न्यारी।

कार्तिक मास में 'कतकियारियों' द्वारा गाये जाने वाला कार्तिक गीत भी आभूषण वर्णन का सुन्दर उदाहरण है –

जिनकी हम दासी बेई न मिले।
कानन कुण्उर हरि के अधक बिराजै,
गरै माल हरि के अधक बिराजै
सो लटकन बीच हाँ मुतियन बीच
बिहारी जू की झाँकी, बेई न मिले।

होली के समय 'फाग' व 'रसिया' बहुत प्रचलित है। ऐसे में होने वाली छेड़खानी बड़ी मधुर होती है। अब जरा देखिये महिलायें किस प्रकार पुरुष को आभूषणों से सजा कर नारी बना रही है –

रसिया को नार बनाओ गोरी रसिया को
बइयां बरा बाजू बंद लैके,
माथे पै बेंदी लगाव गोरी, रसिया को
पांवन पैजना घुंघरूँ संगे लै बिछिया पैनाव
रसिया को................

जगमग दीपावली पर 'मौनियां' नृत्य करती युवकों की टोली 'दिवारी' गीत में भी आभूषणों का वर्णन करती है –

अंगिया की फरिया करौ फरिया की बनाऊँ छार,
दै ठनकाऊँ पैंजना तोरे चरत बिडौरों ढोररे।

आभूषणों के साथ अनेक आस्था व विश्वास भी जुड़े हैं। चूड़ियाँ प्रिय की निशानी मानी जाती है। सुहागिन उसे सौभाग्य का प्रतीक मानती है। रंग–बिरंगी काँच की चूड़ियों में वह अपने पिया का सम्बन्ध देखती है और मनिहार से कहती है –

हरी तौ जंगाली मनिहार ना पैरों,
हरे है राजा जी के बाग,
पीरी रे जंगाली मनिहार ना पैरों
पीरे है राजा जी के वस्त्र
चूड़ी तो मेरी जान, चूड़ी तो हाँतीदाँत कीं।

पति द्वारा दिलाये गये आभूषण पहन पत्नी प्रसन्न हो उठती है–

बिंदियाँ गढ़ी सुनार ने सो दमकत माँझ लिलार
बिंदुलिया तो लै दई, रसीले छैल ने।

लेकिन पति अगर आभूषण नहीं लाता तो वह उलाहना देना भी नहीं भूलती जरा देखिये इस 'झिंझिया' गीत में –

का का चकरी से लाये हो, रसवारी के सुअना
माँय खों हरवा, बहन को कठला
गोरी धनें कछू न ल्याये हो

या फिर –

रिसाई राजा जई दुःख से।
राजा पिया कबहुँ न ल्याये गानो गुरिया
कबहुँ न चली सजधज के

वही गहने जो पत्नी को अतिप्रिय है। वे दिनचर्या के कामों में कहीं खो जाते हैं तो वह दुःखी मन से गाती है –

नींदत में बारी कौ कूरा,
हिरा आई सोने को चूरा।

या –

धन सपरत बेला ताल
मछरिया माथे की बिंदिया लै गई।

आभूषण कभी–कभी दुःखदायी भी हो जाते हैं – जैसे –

चुभ लागे बाजू बंदा भुजों में, चुभलागे

इसी प्रकार –

ककनवां की खिलिया न खुलैरे

और 'लमटेरा' लोकगीत में –

चरकी मोरी चुरियाँ रे,
मझमेला में हो गई चकनाचूर, चरकी

लेकिन स्त्री–सुलभ आभूषण प्रेम से वह मुक्त नहीं होती करधनी की कमी अभी भी उसे महसूस हो रही है। 'बिलवारी' लोकगीत में उदाहरण देखिये –

नित भोर से करै तकरार
कछनियाँ माँगे करधौनी

आभूषण के सांकेतिक माध्यम से स्त्री अपने कष्टों का बखान अपनी सखियों से करती है। बिलवारी लोकगीत में इसका उदाहरण देखिये –

ककनवाँ तौ गाढ़े हतेरे
गाढ़े हते रे ढीले पर गये बलम जू के देसरे
सास दुसांयती और ननदी के बोल कुबोल
बलम जू के देस

स्त्री को तब और दुःख होता है, जब पति बुरी आदतों के कारण उसे आभूषणों को गिरवी रख देता है या बेच देता है –

जुआं में धर दई बिदियां मोरी अबलौ नही उठाई
कंगना, कतुना, चूड़ी के बिन सूनी लगे कलाई
बिक गई नाक की नथुनियाँ, मै तौसे बिरझी

लेकिन उन्हीं आभूषणों को खेती बिगड जाने पर वह सहर्ष अपने पति को देने को तैयार है जिससे बिगडी स्थिति संवर जाये –

गोऊँ हते सो उड़ गये भुस लै गई अंधवार
त्याई में टलवा गये ब्याज गये खगवार
हमारी बारी में लिखा देंउ पैंजना।

बुन्देलखण्ड की नारी सच्चे अर्थों में पति की सहभागिनी है। आभूषण स्त्री धन कहलाते हैं। जिनका उपयोग आड़े वक्त में किया जा सकता है। वह इस बात को समझाती है–

खेती कर लो छैल लै दऊँ, खेती कर लो
जब जे खेती में टोटों पर गऔ
बीजें बेच अमल दै दऊँ खेती कर लो,
जब जे खेती में टोटों पर गऔ
टुसी बेच अमल मैं दै दऊँ, खेती कर लो

इसी तरह अनेक ऐसे उदाहरण है, जो बुन्देलखण्ड की जीवन शैली को प्रदर्शित कर आभूषण पहनने वाले की सुन्दरता को बढ़ाते है, तथा उसके आंतरिक भावों को भी उजागर करते हैं।

लोकगीतों में आभूषण वर्णन हमारी संस्कृति और सामाजिक चेतना के महत्वपूर्ण भावों को भी उजागर करते हैं।

समय परिवर्तनशील है। किसी देश का विकास तभी सम्भव है जब वहाँ के नागरिक आधुनिक बनें। इस आधुनिकता ने सबसे अधिक प्रभावित किया है, हमारी संस्कृति को। आज मांगलिक अवसरों पर गाये जाने वाले लोकगीतों का स्थान फिल्मी व पाश्चात्य संगीत ने ले लिया है। आभूषणों की ओर आकर्षित हो गये हैं। ऐसे में आवश्यकता है, वैचारिक क्रांति लाने की जो विलुप्त होती हमारी समृद्ध कला व संस्कृति को संरक्षण दे सकें। इसके लिये आवश्यक है, कि आधुनिकता के नाम पर अंधानुकरण न कर के हम अपनी प्राचीन सभ्यता व संस्कृति को मूल मान कर विकास की सीढ़ी चढ़े। जिससे सम्पूर्ण विश्व के समक्ष भारत की गरिमापूर्ण छवि देख कर हम सभी गौरवान्वित हो सकें। □

– 380/1, बी, सिविल लाइन्स, झांसी

ज्योतिष और बुन्देली लोक जीवन

– डॉ. सरोज गुप्ता

ज्योतिष भारतीय संस्कृति व सभ्यता का प्रतीक है। सृष्टि के प्रारभ से ही ज्योतिष भारत के प्राकृतिक वातावरण में पनपा, फला–फूला और चारों ओर विकसित हुआ। भारतीय ऋषि–मुनियों ने तरह–तरह की साधनाओं द्वारा कई योग विद्याओं, दर्शन, ज्योतिष के गूढ़ रहस्यों को प्रकट किया, दिव्य ज्ञान शक्ति से सम्पूर्ण सौर मण्डल को देखा तथा आकाश मण्डल के समस्त तत्वों को ज्ञात कर उसका नियमन किया। जब सम्पूर्ण संसार अज्ञान के अंधकार से मूढ़मति था तब हमारा भारत ज्ञान–विज्ञान से परिपूर्ण था। भारतीय ज्योतिर्विदों का अभिमत है कि मानव जिस नक्षत्र, ग्रह, वातावरण के तत्व प्रभाव में उत्पन्न व पोषित होता है उसमें उसी तत्व की प्रधानता होती है। ग्रहों की स्थिति की विलक्षणता के कारण अन्य तत्वों का न्यूनाधिक प्रभाव होता है।[1] ज्योतिष हमारे जीवन को प्रभावित करता है। मनुष्य के समस्त कार्य, व्यवहार ज्योतिष के द्वारा ही चलते हैं। अति उत्तम दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, अयन, ऋतु, वर्ष एवं उत्सव, तिथि आदि का परिज्ञान इसी शास्त्र से होता है। यदि मानव को इसका ज्ञान न हो तो धार्मिक उत्सव, सामाजिक त्यौहार, महापुरुषों के दिन किसी कार्य के मुहूर्त, शकुन–अपशकुन किसी भी बात का ठीक–ठीक पता न लग सकेगा। आचार्य गर्ग ने कहा है –

ज्योतिश्चक्रे तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम्।
ज्योतिर्ज्ञानं तु यो वेद स याति परमां गतिम्।।
वेदस्य निर्मलं चक्षु ज्योतिः शास्त्रम् कल्मषम्।
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्त कर्म न सिद्धयति।।[2]

अर्थात ज्योतिश्चक्र सम्पूर्ण लोक के शुभाशुभ को व्यक्त करने वाला है, अतः जो ज्योतिष शास्त्र का ज्ञाता है वह परम कल्याण को प्राप्त होता है। ज्योतिष शास्त्र को वेद का नेत्र कहा गया है अर्थात् नेत्रों के अभाव में जैसे शरीर अपूर्ण और व्यर्थ है उसी प्रकार इसके बिना वैदिक व स्मार्त (स्मृतिक) कार्य सिद्ध नहीं होते। हमारा हिन्दू जीवन सोलह संस्कारों में विभक्त है। संस्कार बिना ज्योतिष मत के हो नहीं सकते और आज ज्योतिष एक दुरूह विषय बनता जा रहा है। इसका प्रभाव हमारे समाज पर दिन प्रतिदिन पड़ रहा है। असामयिक मृत्यु, दुर्बल सन्तति, बुद्धि हीनता, पाश्चात्य संस्कृति के दुष्परिणाम, अल्पायु आदि इसके उदाहरण हैं। यदि संस्कारों को ज्योतिष के अनुसार सम्पन्न किया जाये तो उपरोक्त कमियाँ हमारे समाज में न पनपतीं।[3] कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि आदिकाल के ज्योतिषी हर तरह के ज्योतिष और अन्य गणितों से पूर्ण परिचित होते थे। शरीर के अंग फड़कने का क्या अर्थ है? स्वप्न का फल कैसा होता है? विभिन्न प्रकार के शुभ कर्मों के करने का शुभ मुहूर्त कौन सा है? युद्ध किस दिन करना चाहिये...... इस युग का ज्योतिषी केवल शुभाशुभ समय से ही परिचित नहीं था बल्कि वह प्राकृतिक ज्योतिष के आधार पर हाथी; घोड़ा, खड्ग आदि के इंगितों से भावी शुभाशुभ फल निर्देश करता था।[4] ज्योतिष शास्त्र एक बृहद शास्त्र है। इसका हमारे समाज को प्रतिदिन काम पड़ता है। व्यक्ति का रोजगार, स्वास्थ्य, जीवनशैली इससे प्रभावित होती है, यहाँ तक कि हम जो सांस लेते हैं (नासिका द्वारा) उसका नियमन भी ज्योतिष द्वारा सम्भव है। इड़ा–पिंगला–सुषुम्ना नाड़ी विचार, जिसमें सूर्य स्वर (दायाँ नथुना) व चन्द्र स्वर (बांया नथुना) चलते हैं जब ये ठीक चलते हैं तो व्यक्ति स्वस्थ रहता है। कब किस स्वर का प्रयोग होना चाहिये यह ज्ञान ज्योतिष शास्त्र हमें देता है।

ज्योतिष शास्त्र ऋषियों–मुनियों की निधि है। इस निधि को जन–जन तक पहुँचाने का कार्य किया है ज्योतिषाचार्यो ने। प्रथम ज्योतिर्विद वाराह मिहिर बुन्देलखण्ड के ग्राम कालपी जिला जालौन के ही थे, जिन्होंने इस विज्ञान को क्रमबद्ध किया तथा अपनी अप्रतिम प्रतिभा द्वारा अनेक नवीन विशेषताओं का समावेश किया। बुन्देलखण्ड में कई ज्योतिषाचार्य हुए जिन्होंने बुन्देली में ज्योतिष जैसे गूढ़ विषयों का प्रतिपादन किया। सम्वत् 1500 के लगभग सहदेव और भंड्डरी नाम के दो ज्योतिषी अत्यन्त अनुभवी थे। इन ज्योतिषियों ने बुन्देली भाषा में कुछ फलितों की छन्दबद्ध रचना की; जिससे बुन्देलखण्ड वासियों को अपने जन–जीवन के सुख–दुख तथा अन्य बातों की जानकारी प्राप्त होती थी। ज्योतिष की इन छन्दबद्ध रचनाओं को आरजा कहते हैं, ये आज भी ग्रामों में प्रचलित हैं।[5] इसके पश्चात् कवि अक्षर अनन्य की सातवीं पीढ़ी के बुन्देली ज्योतिष मर्मज्ञ श्री छोटे लाल श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक 'सरल ज्योतिष' में लोक जीवन की समूची प्रक्रिया का प्रतिपादन किया, जिसके द्वारा व्यक्ति के जीवन में आने वाले सुख–दुख, हर्ष–विषाद, उत्थान–पतन, लाभ–हानि आदि को अपनी मातृ भाषा में सरलता व सहजता से जाना जा सकता है। 'सरल' ज्योतिष 'पुस्तक' सन् 1960 में लिखी गयी इसका प्रकाशन सन् 2000 में हुआ। यह पुस्तक गृहस्थ जीवन में हर घर के लिए संग्रहणीय है इसका अपना महत्व व उपादेयता है।

प्रसिद्ध ज्योतिषी सहदेव की आरजायें बुन्देली लोक जीवन में काफी प्रचलित रही हैं उदाहरण दृष्टव्य है –

'रोहनी, उत्रा, रेवति, स्वांत, कन्या जनमें आधी रात।
आप मरै माई दुख पावै, जिये तो कुल कौ दाग लगावै।'

अर्थात् रोहणी, उत्तरा, रेवती और स्वांति इन तीन नक्षत्रों में अर्द्धरात्रि के समय यदि कन्या का जन्म हो तो या तो उस कन्या की मृत्यु हो जायेगी या उसकी माता को अत्यन्त कष्ट होगा। यदि वह बालिका जीवित रहेगी तो कुल को कलंक अवश्य लगायेगी। इसका यथेष्ट प्रमाण यह है – रोहणी नक्षत्र में अर्द्धरात्रि के समय यशोदा के पुत्री का जन्म हुआ था – कंस ने उसका वध किया।

'पुख्ख, पुनरवस परहरै, रोहिन डारै मार।
तीनऊँ – उतरा ना मिलैं, जो चाहौ पति राज।।'

इसमें सुहागवती नारी को उपर्युक्त नक्षत्रों में चूड़ी पहनना निषिद्ध बताया है –

'एक पाख दो गैना, पिरजा मरै कै सैना।'

एक माह में ही अमावस्या को सूर्य ग्रहण और पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण प्रजा व सेना के लिये अशुभ सूचक है।

'मघा, मूल, अनुराधा, रेवे, पुख्ख, पुनरवस जो शनि सेवे।
हा–हा हूल मचे चौरवंडा, पिरथी काँपें उर नौ खंडा।।'

अर्थात् – उपर्युक्त नक्षत्रों का स्वामी शनि हो तो चारो ओर हाहाकार मच जायेगा। प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य भड्डरी ने कुछ ज्योतिष सम्बन्धी आरजायें प्रस्तुत की हैं, उनके उदाहरण देखिये –

'नार सुहागन घट भर ल्यावे, दध मछली सन्मुख जो आवें।
सामें गऊ चुखावे बच्छा, येई सगुन है सबमें अच्छा।।
गैल चलत नेबरा मिल जाय, बाम भाग चखु चारा खाय।
काग दाँयने खेत सुहाई, सफल मनोरथ समझो भाई।।'

उपर्युक्त आरजा में यात्रा के समय के सगुन विचार कहे गये हैं।

'कृष्ण असाड़ी प्रतिपदा, को अम्बर गर जन्त।
छत्री–छत्री जूझिया, निहचे काल पड़न्त।।'

अर्थात – आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा को आकाश में बादल गरजें तो देश में युद्ध व अकाल अवश्य पड़ेगा।

'सोम, शुक्र, गुरुवार को फूस अमाउस होय।
घर–घर बजै बधाइयाँ दुखी न देखे कोय।।'

पूस माह के उपर्युक्त दिनों में अमावस्या पड़ती है तो देश में खुशहाली व जन–जीवन सुखी होता है।[6] ज्योतिष विशेषज्ञ श्री छोटे लाल श्रीवास्तव ने बुन्देली भाषा में लिखित 'सरल ज्योतिष' पुस्तक में जन–सामान्य की समझ के अनुरूप ज्योतिष सम्बन्धी विषय सामग्री का स्पष्ट रूप से रोचक शैली में प्रस्तुतीकरण किया है। विषयों का विभाजन क्रमशः जातक प्रकरण, मुहूर्त प्रकरण, ताजक प्रकरण व प्रश्न प्रकरण के नाम से किया है। इस पुस्तक में ज्योतिष सम्बन्धी जानकारी विस्तार से दी गयी है। कवि ने गणितीय ज्योतिष को आधार बनाकर सहज व सरल ढंग से सर्व साधारण की रुचि के अनुरूप अपनी गांव की भाषा में एवं ग्रामीण प्रिय छंद, दोहा, चौपाई, सवैया, कवित्त आदि में सरल ज्योतिष की रचना की है। कवि के शब्दों में – 'मेरा प्रयास केवल ह्रदय की दुर्बलता ही है क्यों कि अपने समाज को जो कि अपने निज की दिनचर्या को भुला बैठा है उसके लिए यह एक विशेष आत्मिक शान्ति का श्रोत है।'[7] कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं –

विक्रम सम्वत् जानवौ –

'सालवहन शाके लखौ, जितने आँकड़ा होय।
इकसौ पेंतिस जोड़ दे, विक्रम सम्वत् सोय।।'

वर्तमान में शक सम्वत् 1922 है इसमें 135 जोड़ देने पर 2057 विक्रम सम्वत् निकल आवेगा।

राशि व लगन के स्वामी –

'सूरज सिंह के मालिक हैं, अरु चन्द्रहि कर्क के स्वामी बताये,
मंगल मेषरु वृश्चिक के पति बुद्धसु कन्यहिं मिथुनु गिनाये।
है गुरु मीनहिं औ धन के पति, दैत्य गुरु सुतुला वृष पाये,
जोतिष के मत सैं शनि देवहिं मक्कर कुम्भ पति समुझाये।।'

यात्राकाले अपशकुन –

'यात्रा समये त्रनरु तुष, सर्प चर्म अरु नोन।
धूम रहित अग्नी वसा, हड्डी हिजड़ा तौन।।
अरु कपास कीचड़ कही, गुड़ औषद अरु तेल।
रोगी काला अभलंख, विष्टा सत्रू गैल।।'
खुले केश औ कसाय रंग, वस्त्र तु पहिरै होय।
नागिन और धन से दुखी, भूखा कुबड़ा जोय।।
बाँझ त्रिया अरु आँधरो, और बधिर मिल जाय।
तौ यात्रा शुभ नहिं कही, जोतिष के मत आय।।

विवाह योग –

'लगन, चन्द्र, गुरु और सप्तम घर के अंक कों जोर कै,
एकत्र कर विवाह की वर्ष मानी जावै।'

यात्रा विचार –

शनि सोम तथा परवा नवमी श्रवन जेष्ठा श्रुत सक्रन पूरब कों चलिए।
भृगु भान कुदक्षिन रोहनी चौदश, पुष्य न पच्छिम कों हलिए।
गुरुवार त्रियोदश पंचमी पंचक अस्वनी दक्षिन न जइये।
भृगु भौम बुधा दुतिया दशमी उत्रा फाल्गुनी यम हस्त न उत्तर कों भलिए

इड़ा, पिंगला सुष्मना नाड़ी विचार –

बाम भाग नाड़ी चलै, इड़ा कहावै सोय।
ताकौ स्वामी चन्द्रमा, बनरत है बुध जोय।।
जो दछिन स्वर चलत है कहत पिंगला ताय।
ताके स्वामी सूर्य हैं, कहत वेद यह आय।।
दोनों स्वर मिलकर चलैं, सुष्मन जानौ जोय।
स्वामी ताके शिव कहे, शास्त्र मते सै सोय।।'

चन्द्र स्वर कृत्य –

वस्त्र आभूषन पहिरवो, याह भवन परवेश।
पौष्टिक सान्ति करम जो, योग रसायन.तेश।।'

सूर्य स्वर कृत्य –

भोजन मैथुन युद्ध अरु यूप कर्म स्नान।
मारनाद खट कर्म जो दक्षिन स्वर के जान।।'

स्वप्न विचार –

साधु विप्र नृप देवता, गुरु किन्नर गंधर्व।
स्वेत वसन उज्जल त्रिया, शुभ दर्शन है सर्व।।
पुष्प फल सहित वृच्छ पर चढ़कर जावै कोय।
स्वेत सर्प दाहिन भुजा, डसै द्रव्य मिल जाय।।

गर्भनी पुत्राद ज्ञानम् –

गर्भिन त्रिय के नाम के, अक्षर जेते होंय।
उनतालीस तंह जोड़ के गिनती कीजै सोय।
सुदि परबा तै तिथि गिनै, वर्तमान तक श्राय।
जे तिथि और मिलाय कैं संख्या जेती पाय।
उस संख्या में आयकर, नौ कौ भाग दिवाय।
शेष सम पुत्रि हुय, ऊनें पुत्र बताय।।'

प्रथम स्त्री मरेगी या पुरुष –

स्त्री पति के नाम के, अक्षर लीजै जोर।
फिर उनकौ दृढ़ ध्यान सैं, दूनो करै बहोर।
स्त्री पति के नाम के, मात्रा को गिन लेय।
ताहि चौगुनी पुन्न करै, सब संख्या मिलवेय।
फेर तीन कौ भाग देय, फल ऐसौ दिखलाय।
एक शून्य बच पति मरै, दोय त्रिया मर जाय।।'

इस प्रकार 'सरल ज्योतिष' पुस्तक में ज्योतिष के सारे सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। आधुनिक युग में बुन्देलखण्ड के अनेकों सम्माननीय विद्वान, विशेषज्ञ अपनी साधना द्वारा ज्योतिष क्षेत्र के विकास में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान कर रहे हैं। हमारे लोक जीवन में ज्योतिष का महत्व केवल ग्रह–नक्षत्र विद्या तक ही सीमित नहीं है, इसका धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक दृष्टि से भी सर्वोपरि स्थान है। बुन्देलखण्ड के विद्वानों ने ज्योतिष को जो कुछ भी दिया है वह युग–युगों तक उनकी कीर्ति कौमुदी को भासित करता रहेगा।

संदर्भ–सूची

1. भारतीय ज्योतिष – नेमिचन्द्र अवस्थी, पृ. 35
2. वही, पृ. 66
3. सरल ज्योतिष – श्री छोटेलाल श्रीवास्तव, भूमिका से
4. भारतीय ज्योतिष – नेमिचन्द्र शास्त्री, पृ. 80
5. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य – श्री रामचरण हयारण मित्र, पृ. 215
6. वही, पृ. 218
7. सरल ज्योतिष – श्री छोटे लाल श्रीवास्तव, पृ. 136

– सहायक प्राध्यापक,
शास. कन्या महाविद्यालय, सागर

बुँदेली लोक परम्परा – 'सावनी'

– डॉ. अशोक त्रिपाठी

बुन्देली पर्व लोक संस्कृति के आस्थामयी आयाम हैं। इन पर्वों में त्यौहारों की महक, रिश्तों की ललक और परम्परा की झलक एक साथ परिलक्षित होती है। बुंदेली पर्वो की एक लम्बी श्रृंखला है जिसमें से अधिकांश परम्परा की उर्वर भूमि से जन्में हैं। इन्हीं परंपराओं में एक है 'सावनी'।

सावनी नवविवाहिता स्त्री के स्नेह / सम्मान में उसके ससुराल वालों द्वारा नैहर (मायके) भेजे जाने वाले सामान को कहा जाता है, जो केवल सावन (श्रावण) के महीने में ही भेजी जाती है। सावनी भेजे जाने के पीछे एक विशिष्ट भावना यह होती है कि अभी तक जो बालिका अपने माता–पिता के घर में प्रतिवर्ष अपना सबसे बड़ा त्यौहार रक्षाबंधन हँसी–खुशी से मनाती रही है वह उसे उसी उल्लस और उमंग से मनाए। ससुराल वालों का प्रयास होता है कि हमारे घर की बहू अपने पिता के घर अपने इस त्यौहार पर कोई कमी महसूस नहीं करे इसलिए विवाह के पहले सावन में उस नवविवाहिता के घर ससुराल वालों द्वारा अपनी सामर्थ्य के अनुसार राखी, वस्त्राभूषण, साज–श्रृंगार एवं अन्य सामग्री ले जाने की व्यवस्था करते हैं।

वैसे तो सावनी पूरे माह किसी भी दिन आ सकती है लेकिन ज्यादातर नागपंचमी से श्रावण–पूर्णिमा के बीच सावनी लाने, ले जाने का प्रचलन है। ससुराल पक्ष को एक या एकाधिक सदस्य कुछेक रिश्तेदारों को साथ लेकर और इस रस्म–अदायगी के अनिवार्य अंग 'नाऊ' को लिवाकर बहू के मायके जाते हैं। अपने आने की पूर्व सूचना भी ससुराल वाले मायके वालों को देते हैं। प्रायः पंडित जी से सावनी ले जाने का उपयुक्त समय निकलवाया जाता है। लड़की के मायके वाले 'सावनी' का स्वागत सम्मान करते हैं। एक या दो–दिन मेहमानों की आव–भगत करते हैं और फिर बाद में ससुराल वालों को सावनी में प्राप्त वस्त्राभूषण एवं खिलौने आदि के मूल्य से अधिक दृव्य या वस्त्रादि देफर विदा करते हैं।

सावनी बुंदेली समाज में प्रचलित एक अनोखी परंपरा है जिसे एक पूर्ण त्यौहार की तरह मनाया जाता है। सावनी आना न आना जहाँ एक ओर लड़की के लिए आत्म–सम्मान एवं गौरव का विषय होता है वहीं लड़की के मायके वालों के लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न भी। इसके अतिरिक्त सावनी में भेजे जाने वाले सामान पर भी गौर करना आवश्यक होता है। सामान लड़की और उसके मायके वालों की गरिमा और प्रतिष्ठा के अनुरूप होता है। लड़की के मायके वाले इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि सावनी से प्राप्त वस्तुओं के अनुमानित मूल्य से कम की विदाई नहीं होना चाहिए। वे कुछ अधिक ही अपनी लड़की की ससुराल वालों को देते हैं। इस प्रकार सावनी दोनों पक्षों की प्रतिष्ठा का सवाल होता है।

लेकिन समय के परिवर्तन और भौतिकवाद के हावी होने के साथ ही इस जीवन्त परंपरा के प्रति उदासीनता दिखाई देने लगी है। अब सावनी का प्रचलन लगभग आधा ही रह गया है। इतना ही नहीं अब यह परम्परा भी स्वार्थों की बलि चढ़ रही है। जहाँ एक ओर लड़की के ससुराल वाले केवल नाऊ से कुछ सामान–वस्तु आदि भेजकर लड़की के मायके वालों से अधिक पाने की अपेक्षा करने लगते हैं वहीं लड़की के मायके वाले भी चाहने लगे हैं कि सावनी न आये तो अच्छा। क्योंकि इससे अनावश्यक खर्च रना पड़ेगा। इस प्रकार एक स्वस्थ परम्परा के रूप प्रचलित "सावनी" अब आर्थिक दुर्भावना की शिकार हो रही है। आवश्यकता है इसे स्वार्थ और परमार्थ से ऊपर उठकर एक स्नेहिल और आत्मीय संबंधों की गरिमा प्रदान करने की।

– सहा. प्राध्यापक
वीरांगना अवन्तीबाई महाविद्यालय, छतरपुर

लघु कथा :

भौजी की आत्मा के लाने श्राद्ध

– निहाल अहमद सिद्दीकी

भइया जी खाँ भौजी सें कितनो प्रेम हतो, जो भौजी के श्राद्ध में शामिल होबे बारे लोगइ जानत। श्राद्ध भोज में भइया जी ने इतनी भागा दौड़ी करी के सब जनें देखत रै गये भोजन अपने हाथन सें परस रये थे, और दूसरे परसइयन खाँ बीच बीच में हिदायत देत जात ते कै देखो कौनऊँ खां कछू की कमी न रै जाय। भोजन और पकवानन की का काने? फल–फूल मेवा–मिठाई कछू में कोऊ कौनऊ कमी नईं निकार सकत तो।

लोग बाग मईनन भौजी के श्राद्ध खा याद कर करके चटखारे लेत रये। मईनन–मईनन खूबई चरचा रओ। लोग भइया जी की खूब बड़वाई करत रये। के देखों तो कोऊ अपने मताई–बाप को ऐसो श्राद्ध नई करत जैसो भइया जी ने भौजी की करी। भौजी की आत्मा तर गई हुइये। लेकिन ऊ बनिया की आत्मा की आत्मा से पूछो जीके कारण भौजी की आत्मा तर गयी थी, ऊ बनिया भौजी के श्राद्ध के लाने दये गये सामान की उधारी वसूलबे के लाने साल भर सें भइया जी के घर के चक्कर लगा रओ।

– बेनीगंज, छतरपुर

तिरहार क्षेत्र का प्रचलित प्रकीर्ण साहित्य

– राहुल मिश्र

बुन्देलखण्ड की हृदयस्थली कहा जाने वाला बांदा जनपद सर्वाधिक आंचलिक है और अपने असमतल, ऊबड़ खाबड़ और नदी नालों वाले स्वरूप के कारण विशेष महत्व रखता है। अगर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखें तो महाभारत काल के चेदि राज्य और उसके प्रमुख शासक शिशुपाल के नाम से पहचाना जाने वाला, चेदि राज्य की राजधानी शुक्तिमती या वर्तमान के शेरपुर बनाड़ी (थाना गिरवाँ) हो या कलचुरी राजवंश के राजा कर्णदेव, द्वारा बसाई गई नगरी कर्णावती वर्तमान का कनवारा ग्राम हो या फिर मुगल काल और अंग्रेजी दासता के बाद भी अपने गौरवशाली अतीत की गाथा को दोहराते पुराने कस्बे, गाँव या शहर हों। विविध दृष्टिकोणों में चाहे पहनावा हो या रहने का ढंग सारे बाँदा जनपद में एकरूपता दिखाई देती है लेकिन भौगोलिक दृष्टिकोण से देखने पर उतनी ही विविधता स्पष्ट होती है चाहे वह विंध्य पर्वत श्रृंखला से जुड़ा पाठा आदिवासी क्षेत्र (मानिकपुर) और उससे भी आगे तक विस्तृत फैली पहाड़ी श्रृंखला और उनके बीच पहाड़ी नदियों का इठलाता स्वरूप हो या फिर यमुना, केन और चन्द्रावल नदियों के बीच का पठारी असमतल भाग तिरहार हो। भौगोलिक परिदृश्य में भले ही पाठा क्षेत्र और तिरहार क्षेत्र में असमानता हो लेकिन डाकुओं, अपराधियों और दादुओं के मामले में दोनों में समानता है। अगर पाठा के पहाड़ी जंगल और पहाड़ी नदी–नाले दादुओं और डकैतों को सहजता से आश्रय दे देते हैं तो तिरहार क्षेत्र के प्रचुर वन, असमतल पठारी जमीन व दुर्गम नाले भी डकैतों और अपराधियों को आश्रय देने में किसी भी तरह से पीछे नहीं है।

भाषा की दृष्टिकोण से भी बांदा जनपद (वर्तमान बांदा जनपद एवं कर्वी जनपद को मिलाकर) में आठ प्रकार की उपभाषाएं बोलचाल के प्रयोग में आती हैं। क्षेत्रफल एवं विस्तार की दृष्टि से दूसरे नंबर पर यदि पाठा क्षेत्र की बोलियां अन्तर्पाठा व गहिरपाठा हैं तो पहले नंबर पर तिरहार क्षेत्र की तिरहारी भाषा है। भले ही तिरहार क्षेत्र की पहचान डकैतों, अपराधियों और पिछड़ेपन से हो लेकिन अपनी भाषा तिरहारी के माध्यम से आज भी इस क्षेत्र की अद्वितीय संस्कृति, संगीत, कला और साहित्य जीवित और जीवन्त है।

तिरहार क्षेत्र के निवासियों की जीवन शैली, आचार–विचार, मान्यताओं, रूढ़ियों आदि की सच्ची अभिव्यक्ति, इस क्षेत्र में प्रचलित लोकोक्तियों, मुहावरों, पहेलियों, लोरियों, शिशु–खेलगीतों और ढकोसलों आदि के माध्यम से प्रकट होती है। साहित्य की दृष्टि में इन सभी विधाओं को "लोक सुभाषित" या "प्रकीर्ण साहित्य" के नाम से परिभाषित किया जा सकता है। इस प्रकार तिरहार क्षेत्र के प्रचलित प्रकीर्ण साहित्य की विविध विधाओं का सार संक्षेप निम्नवत् है –

लोकोक्ति या कहावतें –

कहावतें, चिरकालीन अनुभूत ज्ञान का संचय होतीं हैं। यद्यपि प्रचलित कहावतों के रचनाकारों का पता लगाना तो संभव नहीं है, किन्तु अपने संक्षिप्त, सारगर्भित और प्रभावशाली उक्ति के रूप में जीवन की अनुभूतियों को स्पष्टतः झलकाती हुई ये कहावतें अनुकूल परिस्थितियों में प्रयोग कर ही दी जाती है। तिरहारी बोली की कहावतें विविध प्रसंगों के आधार पर निम्न वर्गों के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं –

(अ) नीति सम्बन्धी –

"अहिर मिताई तब करे जब सबै मीत मर जाँय।"
"तीन कनौजिया तेरह चूल्हा"
"बाम्हन, कुकुर, नाई आपन जात देख गुर्राई"
"बनिया का बच्चा कतौं ना सच्चा"

प्रत्येक जाति के गुण–अवगुणों के बारे में प्रचलित कहावतों के कुछ उदाहरण उपरोक्त हैं। इसी प्रकार नारी के लिए भी प्रचलित कहावतों के कुछ उदाहरण निम्न हैं –

"दीने कै लुगाई गांव भरे कै भौजाई"
"कानी अपने मनै सुहाई"
"झौंआकैं का भार निहारैं का झुलनी"

पुरुषों के लिए भी प्रचलित कहावतों के कुछ उदाहरण–

"हंडिया के मोंहे मा परइया देय मड़ई के मोंहें मा का देय"
"आंधर कुकुर बात से भूंकै"
"गंजेड़ी यार केहिके दम लगाएन खसके"
"घर मा महुआ कै रोटी बाहेर लंबी धोती"

समाज में प्रचलित रीति–रिवाज, आचार–विचार व लोक विश्वासों पर कुछ कहावतें –

"जए मूड़ मूड़ाए तए छुरा का डेराए"
"खेत खाय गदहा औ भार खाए जोलहा"
"नोखे कै नाऊन बांसे का नहन्ना"

(ब) धर्म–ज्ञान सम्बंधी – वैसे तो तिरहार क्षेत्र में तुलसी के रामचरित मानस के अध्ययन का प्रचलन अधिक होने के कारण अधिकांशतः धार्मिक एवं ज्ञान की बातों के प्रसंग में मानस की चौपाइयों या कबीर दास के दोहों पर आधारित गायन की विधा कबीरी का कहावतों के रूप में प्रयोग तिरहार क्षेत्र में बहुत होता है फिर भी कुछ कहावतें उदाहरण के तौर पर –

"बी छी झारैं का मंत्र न जानैं सांप के बिल माँ हाथ डारै"
"विधि का लिखा न मेटन हारा"
"बीबी पदिहैं ना, जौ पदहैं तौ कफ्फन फाड़ डरिहैं"

(स) कृषि सम्बन्धी – तीन नदियों– यमुना, केन व चंद्रावल द्वारा सिंचित इस क्षेत्र की लगभग पूरी आबादी की जीविका कृषि पर ही आश्रित है, दूसरी ओर सिंचाई के भी पर्याप्त साधन न होने के कारण अधिकतर कृषि भी भगवान के भरोसे रहती है। प्राचीन काल से ही कृषि सम्बन्धी ज्ञान इन कहावतों के माध्यम से विरासत के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्थानांतरित होता चला आ रहा है। विविध पर्वों एवं अवसरों पर खेतों की तरह–तरह से पूजा करने को चाहे अंधविश्वास कहें या मानव का धरती से लगाव और अपने पैतृक व्यवसाय के प्रति समर्पण की भावना कहें या फिर इन कहावतों के माध्यम से कृषि सम्बंधी नियमों को जानकर, समझकर और पालन करके अच्छी फसल उगाकर सुख और समृद्धि पाने का उपक्रम कहें। कुल मिलाकर सुपर कम्प्यूटर और माइक्रो कम्प्यूटर तक के युग में पहुंच चुकी आधुनिक दुनिया और अत्याधुनिक उन्नत कृषि प्रविधियों और संसाधनों के बीच में आज भी तिरहार क्षेत्र के किसानों के कृषि कार्य इन खेती–बारी संबंधी कहावतों पर आश्रित हैं, जिनकी उपयोगिता और उपादेयता आज भी तिरहार क्षेत्र की समृद्धि व उन्नत कृषि का सबब है। ऐसी कृषि सम्बन्धी कहावतों के कुछ उदाहरण –

"उत्तम खेती मध्यम बान, निखट चाकर भीख निदान"
"बाढ़ै पूत पिता के धर्मा उपजै खेती अपने कर्मा"
"मघा सुरेसा लागै जोर उर्द तिली घर धरै बहोर"
"हथिया बरसै तीन नंहि साली शक्कर मास।
हथिया बरसै तीन नंहि फन्डी तिली कपास।।"
"आद्रा झिरै पुनर्वस जाय, दीन्ह अन्न कोऊ ना खाय।"
"माघै गरमी जेठे जाड़, नदी नार बहि चले असाढ़,
अस बोले भड़डर के जोय, आसौं बरसा धौं कस होय"
"जितना गहिरा जोतै खेत, बीज परे फल अच्छा देत"

कृषि की कहावतों की तरह कृषि से संबंधित पशुओं पर भी कहावतें हैं –

"हरियर खेती गाभिन गाय, जब जानों जब कण्ठ में जाय"
"छोटा मुंह और ऐंठा कान, यहै बैल के है पहिचान।"
"सात दांत उदन्त कों, रंग जे करिया होय।
इन्हें कतौं ना लीजिए, दाम चहै जो होय।।"
"नीला कंधा बैगन खुरा, कभी न निकरे बैला बुरा।"

वर्षा के सम्बन्ध में कुछ कहावतें संक्षेप में –

"जेठ मास जो तपै निरासा, तौ जानो बरषा कै आसा।
"आर्द्रा–भरणी रोहिणी, मघा उत्तरा तीन।
इन मंगल आंधी चलै, तबहीं बरषा छीन।।"
"पच्छिम बादर पूरब जाए, वर्षा बहुत न्यून हो जाय।"
"कलसे पानी गरम है, चिड़िया नहावैं धूर।
अंडा लै चींटी चढ़ै, तौ बरषा भरपूर।"

(द) स्वास्थ्य सम्बन्धी कहावतें – उत्तम स्वास्थ्य के लिए एवं निरोग रहकर धन–धान्य व सुख समृद्धि से परिपूर्ण होने के आशय से गांव–देहातों में स्वास्थ्य संबंधी कहावतें *"चैतें गुड़ बैसाखै तेल, जेठै पंथ असाढ़ै बेल।*
सावन साग न भादों दही, क्वार करैला कातिक मही।
अगहन जीरा पूसे धना, माघें मिश्री फागुन चना। इन बरहन का लेय बचाय, तौ वहिके घरै बैध ना जाय।"
"मार के टर रहु, खाय के पर रहु"
"रहै निरोगी जे कम खाय, बिगरे काम न जे गम खाय।
खाय कै मूतैं सौअवै बांऊ, काहे बैद्य बसावै गाँव।"
जिहका मारा चाहिए, बिन मारे बिन घाव।
वहिका यहै बताइये, घुंइया पूरी खाव।।

लोक–व्यवहार सम्बन्धी –

प्राचीन काल से आज तक प्रचलित कहावतों के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी लोकाचार एवं लोक–व्यवहार की रीतियों का आदर्श पाठ, पढ़ाते चले आ रहे हैं व्यावहारिक ज्ञान देने वाली ऐसी कहावतों के चन्द उदाहरण –

"खेती–पाती बीनती, औ घोड़े की तंग,
अपने हाथ संवारिए लाख लोग हों संग।"
"फूटे से बहि जात हैं ढोल, गंवार, अंगार।
फूटे से बन जात हैं फूट कपास, अनार।।"
"मूंजी का धन कैसे जाय, जैसे
"ठाड़ ठाड़ै रहे बैठ गोहरावैं लाग।"
"गया पेड़ जए बगुला बैठा, गया गेह जब मुड़िया पैठा।
गया राज जहां राजा लोभी, गया खेत जहाँ जामी गोभी।।

आलोचना प्रधान –

सामाजिक जीवन में कुछ ऐसी भी कहावतें प्रचलित हैं जिनके द्वारा एक स्वस्थ आलोचनात्मक दृष्टिकोण का पता चलता है। जैसे –

" सौ सौ जूता खाय, तमासा घुस–घुस द्याखै।"
"सौ माँ सती लाख मा जती।"
"कहां राजा भोज कहां गंगुवा तेली।"

"लातन के देव बातन से नहिं मानैं"

इस प्रकार जहां कहावतों में आलोचना की जाने वाली चीजों की निंदा है वहीं दूसरी ओर उपदेश भी हैं।

पहेली –

पहेली बुझाने और बूझने की परम्परा प्राचीन काल से मिलती है। तिरहार क्षेत्र में भी पहेलियों का प्रचलन जहां एक ओर स्वस्थ मनोरंजन का साधन है वहीं दूसरी ओर बुद्धि–परीक्षण व बौद्धिक विकास का उपक्रम भी है कुछ प्रचलित पहेलियां निम्न हैं –

"लाल घोड़ी घास खायं, पानी पियै तौ मर जाय।"–आग

"तीतर के दुई आगे तीतर, तीतर के दुई पाछे तीतर।
आगे तीतर पाछे तीतर, बोलो कितने तीतर।।" – तीन

"भैंस पसेरी गाय दुसेरी छेरी पउवा पउवा।
मन भर दूध, बीस ठा चउवा।।"

"दुई पग चले चार लटकाए, तीन मूड़ छः नैन लगाए।"
–हनुमान

"जो ना मनत्यों जेठवा कै आन, तौं मैं अवतिऊँ असढ़वा मसान।" – अरहर

"गिरधी कंधा का तिलक, तिलक पिता घी कंध,
ताही कौ सुमिरन करौं आवागमन निहंथ।।" – शंकरजी

"हंडी मेरी लाल बिलंगी छः महिना में पकती है
पाहुन है संइतार साल भर तकता है।" – अरहर

"बूझै बूझ बूझक्कड़ और ना बूझै कोय
पाँव मा चकिया बांध कै कतौ बिल्ली ना कूदी होय"–हाथी

ढकोसले –

गांव में बे–सिर पैर की कुछ बातें प्रचलित होती हैं जिन्हें सुनकर बरबस ही लोग हंस पड़ते हैं। संभवतः पाप म्यूजिक में मनोरंजन से बेहतर गंवई गांव के स्वस्थ मनोरंजन वाले ये ढकोसले ही हैं –

"कहां से आए राम–राम, कहां से आई जे,
कहां से आए तीन जने, कहां से आए छैः।"

"शिकहरे मा बेड़ही टंगी हैं कुकरवा खातै निहाय"

"घर तोरै आय पे चौका मा हाथ ना डारे।"

"ऊँट पनारे बहि चला, मैं जानौं पिय मोर।"

"गोरी के नैना ऐसे बैलन के सींग जैसे।"

शिशु–खेल गीत –

खेल–खेल में बच्चों को शिक्षा देने व अपना स्नेह प्रदर्शित करने के आशय से पालने के गीत, खेल के गीत भी प्रचलित हैं। वैसे तो पालना गीतों में सूर व तुलसी की रचनायें ही हैं किन्तु लोरियों आदि के माध्यम से प्रसंगानुसार गीत गाकर स्नेह प्रदर्शन किया जाता है –

"आ जा निन्दी काटो कना भइया के लै जा सबले चना।"

"उककू बुक्कू दही का चुक्कू बाबा लाया धनिया बैठ कुल्ला पानी पी जा।" एवं इसी प्रकार के गीत खेल खेलते समय बच्चे गाते हैं जिनसे उनका ज्ञान वर्द्धन होता है।

कुल मिलाकर तिरहार क्षेत्र की ही नहीं वरन् पूरे बुन्देलखण्ड की अमिट पहचान प्रचलित प्रकीर्ण साहित्य के माध्यम से परिलक्षित होती है। आधुनिकता बोध के सागर में डूब चुके समाज के बीच में भी बुन्देलखण्ड अंचल के प्रत्येक समर्पित व सच्चे बुन्देले के मानस में आज भी प्रकीर्ण साहित्य, भारत के प्राचीन मनीषियों, वैज्ञानिकों, ज्योतिषियों, गणितज्ञों, कृषि–वैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों, धर्मगुरूओं व मानस मर्मज्ञों के हजारों वर्षों के एकत्रित अनुभवों के विशाल भण्डार को स्मरण रख पाने एवं पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरण कर पाने की क्षमता रखने वाले सुगम, सरल व सुग्राह्य पाठ के रूप में आज भी भले ही संक्षेप में क्यों न हो, सुरक्षित और संरक्षित है।

आज भले ही हार्वर्ड या आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के महान् ज्ञान के सामने अपने गौरव की सभ्यता, ज्ञान और संस्कृति की पहचान यह प्रकीर्ण साहित्य दकियानूसी या अंधविश्वास दिखाई दे लेकिन यह सत्य है और मान्य सत्य है कि भारत को गुरु देश और सारे विश्व का नेतृत्व करने वाले राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठापित करने में प्रकीर्ण साहित्य का भी कम योगदान नहीं रहा है और आज भी विश्व के अग्रणी राष्ट्र इसी कारण भारत की विद्वता का लोहा मानते हैं। आज भी जब भारत को पुनः उसकी गरिमा में प्रतिष्ठापित करने की बात आती है तो गांव देहातों के प्रचलित प्रकीर्ण साहित्य के संरक्षण और संवर्द्धन के माध्यम से भारत को विश्व के नेता के रूप में देखने का स्वप्न साकार होता है। आइए! अपने बुन्देलखण्ड के गौरव को बढ़ाएं और पछुवाई की ओर बह रहे अपने समाज को प्रकीर्ण साहित्य के संरक्षण, संवर्द्धन और संगठन के लिए प्रेरित कर राष्ट्र को पुनः उसी गरिमा पर प्रतिष्ठापित करने का मार्ग प्रशस्त करें।

–ई/3, टीचर्स कॉलोनी, अतर्रा, जिला–बांदा ☐

लघु कथा :

प्रगति

– निहाल अहमद सिद्दीकी

हमाए बब्बा को ब्याओ गांव बारन ने तै कर दओ तो और ब्याओ हो गयो तो। हमाए दद्दा को ब्याओ खबास जू ने तै कर दओ हतो और ब्याओ हो गओ तो। हमाओ ब्याव बाप–मताई ने तै कर दओ तो, और हो गओ तो। हमाए लरका और बहू ने अपनो ब्याओ खुदई कर लओ तो। अब हमाओ नाती एक बिटिया के संगे दो साल से रै रओ और अबै तक तै नई कर पा रओ कै ब्याओ करने के नई करने। **–बेनीगंज,छतरपुर** ☐

ऐतिहासिक काव्यों में बुन्देली गद्य

– डॉ. हरिसिंह घोष

बुन्देली गद्य मध्यदेशी भाषा में सबसे प्राचीन है। काव्यों की रचना के पूर्व से ही इसके विकास की समृद्ध परम्परा के अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं। 14वीं शताब्दी से इसके विकास का एक क्रम मिलता है। तोमरों के शासन–काल में इसका प्रयोग शिलालेखों, ताम्रपत्रों एवं सनदों आदि में मिलता है। इसमें तुकान्त गद्य की प्रधानता थी। 16वीं शती में इसका विकसित रूप उत्कर्ष की सीढ़ियां चढ़ने लगा था। इस युग में टीकायें, अनुवाद, स्वतंत्र गद्य, पत्र, शिलालेख और सनदों आदि में बुन्देली गद्य का उपयोग होने लगा था। चन्देलों के विशाल साम्राज्य में भी इसे स्थान मिला किन्तु राज–भाषा न होकर उस समय यह लोक–भाषा दी। मधुकर शाह के शासनकाल में बुन्देली गद्य को राज–भाषा का पद मिला। महाराज छत्रसाल ने इसे व्यावहारिक रूप प्रदान कर और भी उत्कर्ष पर पहुंचाया। उनके साम्राज्य विस्तार के साथ इसका क्षेत्र भी व्यापक होता गया।

छत्रसाल के पत्रों की गद्य शैली में उत्कृष्ठ साहित्यिकता के दर्शन होते हैं। पत्रों की वैयक्तिक शैली से इस युग की राजनैतिक और सांस्कृतिक चेतना प्रतिध्वनित होती है। शैली की विविधता और वैयक्तिक चेतना उसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

ऐतिहासिक काव्यों में बुन्देली गद्य वाचनीकों के रूप में प्रयुक्त हुआ है। आल्हखण्ड की एक हस्तलिखित प्रति में कुछ वाचनीकों का प्रयोग देखने को मिला, यह प्रति आज भी बारीगढ़ (जिला छतरपुर) निवासी एक लुहार जाति के व्यक्ति के पास सुरक्षित है। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि बुन्देली गद्य का आविर्भाव 12वीं शती से हुआ।

वाचनीकों की परम्परा भी विशेषतः आल्हखण्ड में मौखिक रही है जिसका प्रयोग आज भी अल्हैत अपने आल्हा गायन में करते हैं। किन्तु किसी भी प्रकाशित प्रति में वाचनीक का प्रयोग नहीं हुआ, जो सम्भवतः उपेक्षित मानकर छोड दिया गया है। 16वीं शती में बुन्देली–गद्य के विकास के साथ ही वाचनीकों का प्रयोग काव्य–ग्रन्थों में होने लगा था। परमालरासों में इसका प्रयोग हुआ है। यद्यपि यह प्रयोग बहुत कम है, फिर भी शैलीगत विकास की दृष्टि से यह विशेष महत्व रखता है।

प्रबन्ध काव्य में कवि जिस इतिवृत्तात्मक अंश को काव्य में रूपायित नहीं करता उसे वाचनीकों में लिखता है। इसीलिये वाचनीकों की स्वतंत्र अस्तित्व न होकर, इनका संबंध काव्य की पूर्ण पंक्तियों से तथा आगे आने वाली घटनाओं से विशेषतः होता है। अतः वाचनीकों के गद्य की शैली भी आश्रित रहती है। प्रबंध काव्य की दृष्टि से इसका कोई महत्व नहीं दिखाई देता किन्तु गद्य–रूप की दृष्टि से इसके महत्व को नहीं नकारा जा सकता।

बुन्देली काव्य की वाचनीकों का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर उनका एक निजी अस्तित्व दिखाई देता है। राजस्थानी काव्य के वाचनिकाओं का गद्य कथा के रूप में होते हुए भी तुकान्त होता है और कुछ में ऐतिहासिक घटनायें भी संजोई रहती हैं। इसलिये उनमें अभिव्यक्ति का सौन्दर्य भी मिलता है। बुन्देली के अधिकांश काव्यग्रन्थों की वाचनिकाओं का गद्य न तो तुकान्त होता है और न ही उसमें अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य मिलता है क्योंकि इनका प्रयोग प्रायः पद्य की इतिवृत्तात्मकता को दूर करने के लिये ही किया गया है। किन्तु ऐसा सभी में नहीं है, परमालरासो में कुछ वाचनीकों को छंद का रूप भी दिया गया है और उसका अपना शैलीगत सौन्दर्य विद्यमान है। बुन्देली वाचनीक शैली का गद्य प्रायः सूचनात्मक होने के कारण उसमें प्रयुक्त तत्कालीन प्रचलित भाषा का रूप देखने को अवश्य मिल जाता है। कहीं–कहीं संवाद शैली के उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं।

बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक काव्यों में से मेरे शोध–का में प्राप्त काव्य ग्रन्थों में बुन्देली गद्य वाचनीकों के रूप आल्हखण्ड, परमालरासौ और बाघाट–रासौ में प्रयुक्त हु है। आल्हखण्ड में एक हस्तलिखित प्रति में देखने मिला, प्रकाशित प्रति में कहीं नहीं है। परमालरासौ अ बाघाट–रासौ की प्रकाशित प्रतियों में उपलब्ध गद्य अप कुछ भिन्न–भिन्न विशेषताओं के फलस्वरूप अलग स लिये हुए हैं। परमालरासो से उदाहरण दृष्टव्य हैं –

वाचनीक – राजा चंदेल सभ्रम से पूछत हैं आहो अरसि मलखान छत्रिय सहित जीवत है कै नाहीं।

वाचनीक – विरसिंघ दे सब रजपुत्र छिप्र बुलाय कहा म्हा कौ कुमार अरु गौर जगम्मन सावंत रनछेत्रे जूझौ है म्हा जुद्ध करौ के दंद दै मिलौ सौ मंत्र कथते।

उपर्युक्त गद्यांश संवाद शैली में है। अन्य वाचनीक में अपभ्रंश रूप अवशिष्ट है, जिससे मालूम होता है कि सोलहवीं शती के गद्य में अपभ्रंश मिश्रित भाषा वर्तमान थी यद्यपि प्रतिलिपिकारों एवं प्रेस में परिवर्तन होना संभव फिर भी यह निश्चित है कि परमाल रासो का गद्य प्राची

बुन्देली वाचनीकों के गद्य का साक्षी है यथा –

वाचनीक – आग्रे जयचंद राजा के अग्ग राजा सौमेस परमाल सौं वचन हारे हते। सो वे राजा पंचतत्व कह प्राप्त अब यह ब्रह्मकुमार की लगुन लीजे। अद्य सुभ घरी बैस त्रयोदसी की भाउरैं हैं।

परमाल रासो में वाचनीकों का अंश बहुत संक्षिप्त है। कहीं–कहीं ये वाचनीक पद्यबद्ध भी है और कहीं संवाद शैली में। भाषा में अपभ्रंश, संस्कृत, खड़ी बोली, और बुन्देली का मिश्रित रूप है। पद्यबद्ध वाचनीक का एक उदाहरण दृष्टव्य है –

वाचनीक – यह कहि जगनिक्करायं। सैन सबै मुकरायं।
राम गंग पर आयं। किन्नौ सिवर सुहायं।।

बाघाट–रासो में प्रयुक्त वाचनीक से स्पष्ट है कि वाचनीक की परम्परा विकास काल की भांति परवर्ती युग में भी रही है। सन् 1816 ई. में रचित बाघाट–रासो में पद्य के बीच–बीच गद्य प्रयुक्त हुआ है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही तीन गद्यांशों में कृति का संक्षिप्त परिचय दिया है। परिचयात्मक गद्य की शैली वर्णनात्मक है, किन्तु गद्य की भाषा बुन्देली है। पंक्तियां दृष्टव्य हैं –

श्री गनेस जू। मौजे बाघाइट कौ फोज गई। दतिया से चैत्र सुदि 14 संवत 1873, अमल संवत् 1872 ता दिना दतिया ते श्री दीमान दिलीप सिंघ बुन्देला किसुनगढ़ के, ते फौज सुध्धा गए, सो उनाउ डेरा करे। फेर दलीप नगर ते वैसाष वदि 14 सुक्रे कौ पं. श्री सिकरदार धनसिंघ गए सो मौजे उनाउ में सब मेलै भई। फेर वदि 30 सनौ कौ उनाउ ते कूच भयो, सो बड़े गांउ ते चलत नौहट की अैली तरफ बागन में डेरा भए। फेर उहां ते सूदि। सौं कौ नौहटकौं घाट उतरि बाघाइट सौ फौज जा लगी। फेर वैसाष सुदि 8 खौं बाघाइट छूटी। गांउ में आग लगी। वैहर चली।। फौज ने हल्ला करी बिना हुकमै, सो बाघाइट के मानस ठाकुर बौहत मरे।

दिमान गंध्रप सिंधी कौ बांह सौ काट दए। बाघाट में तैं ऐकु ठाकुर बाघाइट में कौ जूझौ ताकी ठकुराइन सजी भई। श्री हनुमान जू नै राधा कृसन की कृपा तै फतै कराई। ताकी खबर दतिया आई।

रचना शैली की दृष्टि से यह गद्य बड़े और छोटे दोनों प्रकार के वाक्यों को सम्बद्ध करने के कारण अत्यन्त व्यवस्थित और परिष्कृत दिखाई पड़ता है। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि बुन्देली गद्य में भी इतिहास लिखा जा सकता है। यहां गद्य की शैली वर्णनात्मक है। संदर्भित पंक्तियां दृष्टव्य हैं –

श्री महेन्द्र जू ने षवर सुनि हरकारा की बिदा करी। फेर बाघाइट तै फौज को कूच दलीप नगर को भयो।

बाघाट – रासो के गद्य में 'ख' के स्थान पर 'ष' का प्रयोग हुआ है। ओकारान्त, सों, को, के स्थान पर औकारान्त वर्ण औ, सौं, कौ का तथा एकारान्त ने, जे के स्थान पर ऐकारान्त नै, जै का प्रयोग हुआ है। इस काल के गद्य के पत्र और सनदों में भी इस प्रकार के प्रयोग देखने को मिलते हैं। यह इस काल के गद्य की एक विशेषता है। बाघाट–रासो में गद्य को पद्य की तरह लिखने का एक विशिष्ट तरीका भी अपनाया गया है। पंक्तियां दृष्टव्य हैं –

वैसाख सुदि 15, संवतु 1873, अमल संवत।
1872 लिष्यते प्रधान आनंद सिंध कुडरा।
पोथी धई सुभ संवत् मंगल ददातु।
जहं बाघाइट की न्याउ सौ बड़गैयन कौ।।
उदासी भई। दतिया में षुसी भई।।

– घोषयाना, संकटमोचन रोड, छतरपुर □

कविता :

इंतजार

– श्रीमती विजयश्री बुन्देला

इक्कीसवीं सदी में, प्रवेश पाने को आतुर,
बीसवीं सदी का चला मानव,
केवल अपनी कुंठाएं, अवसाद ही
अपने साथ लिये,
कहीं इक्कीसवीं सदी के द्वार,
प्रवेश तो नहीं किये जा रहा है....?
इसलिये – इक्कीसवीं सदी के द्वार पर
बैठा है एक द्वारपाल,
जो सबके अन्तर्मन की,
लगातार 'सर्च' किये जा रहा है,
और – स्वार्थ, झूठ, बेईमानी का,
कुछ न कुछ अंश वह
हर प्रवेश करने वाले में पा रहा है,
अभी तक सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति,
नहीं गुजरा है उसकी नज़र से,
लेकिन फिर भी वह,
'इंतजार' किये जा रहा है....

– महल परिसर, छतरपुर □

अंतर

गरीबन के मकानन पै लिखो है, – 'स्वागतम्'
और अमीरन के द्वारन पै टंगो है – 'कुत्तों से सावधान'

– निहाल अहमद

बुन्देलखण्ड और ख्याल साहित्य

– डॉ. श्रीनारायण पाठक

बुन्देलखण्ड जनपद अत्यन्त प्राचीन काल से ही साहित्य और संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है। प्राचीन काल में आल्हा और विष्णुदास कृत रामायण कथा की रचना हुई। मध्यकाल में श्रेष्ठ भक्ति और रीतिकाव्य का प्रणयन हुआ और आधुनिककाल में नई और पुरानी धारा में काव्य का सृजन होता रहा है। एक ओर जहां शिष्ट साहित्य के अन्तर्गत उत्कृष्ट रचनायें हुई तो दूसरी ओर लोक कथा बुन्देली में भी लोक जीवन के हर्ष–विषाद को अभिव्यक्ति देने वाले साहित्य का प्रणयन हुआ। बुन्देलखण्ड में लोकगीतों और कथाओं की मौलिक परम्परा एक लम्बे अरसे से विद्यमान है।

इसी शिष्ट और ग्राम्य साहित्य के मध्यवर्ती अर्द्ध शहरी साहित्य के रूप में यहां लावनी या ख्याल की परम्परा का सूत्रपात हुआ। डॉ. सतेन्द्र ने ख्याल–साहित्य को अर्द्ध शहरी साहित्य कहा है। ''ख्याल–साहित्य'' बुन्देलखण्ड जनपद के शिष्ट साहित्य और लोकसाहित्य को जोड़ने की कड़ी का काम करता है और इन दोनों की तुलना में लोकप्रियता की दृष्टि से भी आगे है।

बुन्देलखण्ड में ख्याल (लावनी) का आगमन कब हुआ? यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इस संबन्ध में अभी तक केवल एक ही मत उपलब्ध है। डॉ. राधावल्लभ शर्मा ने अपने शोध प्रबंध ''कवि गंगाधर और उनका काव्य'' में लिखा है कि ''ख्याल–साहित्य का प्रारंभ बुन्देलखण्ड में भारतेन्दुयुग से हुआ है और इसका आगमन आगरा और बनारस के मार्ग से हुआ।'' कुछ विद्वान कलगी–तुर्रा की प्रतिस्पर्धा को दक्षिण के किसी मराठा सरदार के दरबार से प्रारंभ हुआ मानते हैं तो कुछ शहंशाह अकबर के दरबार से इसका प्रारम्भ मानते हैं। डॉ. महेन्द्र भनावत इसे राजस्थान के किसी राजपूत शासक के दरबार से प्रारम्भ हुआ मानते हैं। इधर एक मत यह प्रचारित हो रहा है कि कलगी–तुर्रा की प्रतिस्पर्धा का प्रारंभ बुन्देलखण्ड के किसी शासक के दरबार से हुआ और संभवतः वे शासक चंदेरी के राजा थे। गोगावां के धरानेदार तुर्रा गायक सुमेर सिंह सुमन ने कलगी–तुर्रा की उत्पत्ति अपने पिता–प्रपितामह के अनुसार मध्यप्रदेश में मानी है। उनका कहना है कि चन्देली के राजा शिशुपाल की राज्य सभा में प्रमुख गायक तुकनगिर और शाहअली फकीर थे। दोनों में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा थी दोनों ही अपने फन में माहिर थे एवं अपनी–अपनी शैली में पारंगत थे। राजा के लिए यह निर्णय करना मुश्किल था कि दोनों में से कौन श्रेष्ठ है? शिशुपाल ने दोनों को बराबर पुरस्कृत किया। कलगी–तुर्रा की प्रतिस्पर्धा किसी भी राजा के दरबार से प्रारंभ हुई हो किन्तु इतना अवश्य है कि शाहअली और तुकनगिरी के नाम को लेकर कोई विवाद नहीं है।

लावनी और ख्याल –

लावनी एक प्रकार का छन्द है जो प्रायः चंग पर गाया जाता है। इसे ख्याल भी कहते हैं। यह शब्द ''लावनी'' या ''लावणी'' के उच्चारण भेद से भारत के प्रायः सभी क्षेत्रों में व्यवहृत होता है। ख्याल के सम्बन्ध में डॉ. सत्येन्द्र का मत है। कि इसी तरह एक और साहित्य हमें मिलता है – ''नागरिक साहित्य''। यह उन व्यक्तियों का साहित्य है जो नगर के अन्दर रहते हैं किन्तु नागरिक ऊँचाई पर नहीं पहुंचे उद्योगी वर्ग में इन्हें सम्मिलित किया जा सकता है।

इनकी रचनायें ख्याल कहलाती हैं, ख्याल हिन्दी या उर्दू के अतिरिक्त मराठी, तमिल और कन्नड में भी प्रचलित हैं। अतः भारत में हिन्दू और इस्लामी संस्कृति के मिश्रण के फलस्वरूप एक नई कल्पना का आश्रय लेकर जिस लोकविधा का जन्म हुआ उसे ख्याल कहते हैं। कहीं इसको लावनी कहा जाता है, और कहीं इसको मराठी का ख्याल कहा जाता है। 'ख्याल' लोकभाषा का परम्परागत शब्द है जिसका प्रचलन लोकनाट्य के एक प्रकार और गीत की एक शैली के अर्थ में है। महाराष्ट्र में 'तमाशा' लोकनाट्य के माध्यम से लावनी का प्रचार–प्रसार हुआ। इसी से भिन्न रंग लेकर कलगी तुर्रा गाने की शैलीवाद में उत्तर भारत, राजस्थान, निवाड़ और मालवा में फली–फूली। उत्तर भारत में जब कलगी–तुर्रा की चर्चा की जाती है तब तब व्यंग और आरोपों के भव से मुक्त ख्याल गान द्वारा एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न होता है। अनेक विचारशील व्यक्तियों के संपर्क के फलस्वरूप लावणी ने ख्यालों की दुनिया में प्रवेश किया और इसे ख्यालबाजी के नाम से अभिहित किया जाने लगा। राजस्थान में ख्याल शब्द तमाशे या अभिनय आदि दृश्यों के लिए भी प्रचलित है। लावनी में अभिनय आदि का समावेश हो जाने के कारण इसे ख्याल कहा जाना संभव है।

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि ख्याल का उदभव लावनी से हुआ है। लावनी में जबसे कलगी–तुर्रा पक्ष की स्पर्धा प्रारंभ हुई तभी से ख्याल का उदय हुआ। आरम्भ में तुर्रा कलगी दल क्रमशः ब्रह्म और

शक्ति के बारे में दार्शनिक विवाद करते थे किन्तु धीरे–धीरे शृंगार तथा अन्य भावों और विषयों का समावेश भी इसमें हो गया। मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से उर्दू का युग आया और डफ तथा चंग वाद्यों का प्रयोग बढ़ा। लोकरंजन की दृष्टि से यह अन्य विधाओं में श्रेष्ठ है। इसलिए बुन्देलखण्ड में ख्याल का अधिक प्रचार और प्रसिद्धि लोकरुचि का प्रमाण है, ख्याल का एक उदाहरण यहां दिया जा रहा है–

टेक– *बैठे गिर, कैलाश पै शम्भू, चक्क भंग के पी प्याले।*
काले–काले लटन ते, नाग लिपट रहे विषियाले।

छन्द– *शीश गंग शोभित तरंग, और अति उमंग उदरत लहरैं।*
सिन्धु सराहत भाग मिली जब, मात सुरसरी कर महरै।
नद्दी, नहरै, चहूँ तरफ ध्वज पताक सी फहरैं।।

लौट– *माथे पै भस्मी त्रिपुण्ड और तीन नेत्र हैं विकराले।*
काले–काले, लटन ते नागलिपट रहे विषियाले।।

इसी तरह लावनी का भी एक उदाहरण तुलनात्मक दृष्टि से दृष्टव्य है –

टेक– *शरद शोभित रजनी,*
बनी सुभग कामनी
स्वच्छ अकास नील पट जड़रहि उड़गन की टोली।
खिली चाँदनी स्वेत भर्जरी चोली अनमोली।
सरस भूषन सजनी,
बनी सुभग कामनी।।

इस तरह स्पष्ट है कि ख्याल व लावनी का बुन्देली लोक साहित्य की अभिव्यंजना शैलियों में विशिष्ट स्थान है। इसका रिवाज बुन्देलखण्ड के बाहर भी है। ख्याल व लावनी के फड़ भी सैरों के फड़ की भांति बहुत लगते हैं। कलगी और तुर्रा दोनों सम्प्रदायों का हिन्दी साहित्य के साथ ही बुन्देली लोक साहित्य की समृद्धि में भी बड़ा योगदान रहा है। इसका साहित्य बड़ा सम्पन्न और समृद्ध है। ख्याल सैरों की तरह दायरा नामक वाद्य यंत्र होता है। ख्याल कई प्रकार के होते हैं। ये प्रायः हिन्दी और उर्दू भाषाओं में लिखे जाते हैं और इनकी प्रतियोगिता में दोनों प्रकार के ख्यालों की छूट रहती है। बुन्देलखण्ड में ख्यालबाजी साधारण जनता के गले का हार रही है पर आधुनिक सभ्यता की चकाचौंध में आजकल इसकी दमक धुंधली पड़ती जा रही है। फिर भी ख्यालों की फड़बाजी में ग्रामीण जनता उठने का नाम ही नहीं लेती।

बुन्देलखण्ड की ख्याल परम्परा :–

जैसा कि पूर्व में वर्णित है कि बुन्देलखण्ड में ख्याल की परम्परा पुरानी है। यह बुन्देलखण्डी फड़ साहित्य का प्रमुख अंग है। देशी राज्यों के विलय के पूर्व बुन्देलखण्ड में छोटी–छोटी अनेक रियासतें थीं, जिनमें ख्यालों का अधिक प्रचार था। इन रियासतों में छतरपुर, चरखारी, ओरछा, बिजावर और अजयगढ़ आदि रियासतें थीं, जिनमें सुप्रसिद्ध ख्यालकारों और ख्यालबाजों को राजाश्रय प्राप्त था। जो राजाओं, दरबारियों तथा जन साधारण का मनोरंजन करते थे।

बुन्देलखण्ड में ख्याल परम्परा के प्रथम निर्वाहक स्व. श्री गंगाधर व्यास छतरपुर निवासी थी। श्री व्यास 'तुर्रा' सम्प्रदाय के थे। उनके दल में सर्वश्री हेमराज, दशानंद, भैरोसिंह, कँदई, गजाधर, लक्ष्मन और रामदास दरजी आदि प्रमुख गायक थे।

बुन्देलखण्ड में जब गंगाधर व्यास के ख्याल गूँज पड़े तब उनके सम्पर्क में आये श्री धासीराम व्यास जिन्होंने मऊरानीपुर में 'व्यास दल' बनाया तथा घासीराम तथा उनके साथी मुन्नालाल चौबे ने मऊरानीपुर के तुर्रादल का मोर्चा संभाला और कई ख्यालों की रचना की। इन्हीं दिनों झांसी में कन्हें पण्डा और छोटे खाँ ने भी तुर्रा दल में सम्मिलित हो अनेक ख्यालों की रचना की तथा विभिन्न दंगलों में भाग लिया।

छतरपुर में 'तुर्रादल' का अंकुर पैदा हुआ और कुछ समय बाद बुन्देलखण्ड के बिजावर, चरखारी, मऊरानीपुर, झांसी इत्यादि स्थानों में पल्लवित होकर छा गया। चरखारी के महाराज गंगासिंह जू देव बड़े साहित्य प्रेमी थी। उन्होंने कलगी और तुर्रा दल के कई ख्यालकारों लावनीकारों और गायकों को आश्रय दिया। इनमें तुर्रा वर्गीय श्री एवज अली, श्री शफदर अली (गणेश शंकर) और श्री सुदामा भैया (वंश गोपाल) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। श्री सुदामा जी ने "श्रृंगारपचासा" नामक पुस्तक ख्यालों में लिखी थी जो संवत् 1088 में प्रकाशित हो चुकी है।

महाराजा गंगासिंह जू देव की भांति श्री अरिमर्दन सिंह जू भी साहित्य प्रेमी थी। उन्होंने "दि रॉयल डामेटिक सोसायटी" नामक एक नाटक मण्डली की नींव रखी जिसमें श्री आगाहश्र कश्मीरी, चमनराव, श्यामराव, मनहर बरवे और शैल कुमारी आदि कलाकार थे। इन्हीं में से तुर्रा संप्रदाय का प्रसिद्ध ख्यालकार श्री शफदर अली भी था।

बुन्देलखण्ड में जैसे तुर्रा सम्प्रदाय की जड़े अंकुरित हुई, उसी तरह यहाँ कलगी सम्प्रदाय भी किसी तरह से कम नहीं रहां व्यास जी के प्रतिद्वंदी मऊरानीपुर के श्री दुर्गा प्रसाद पुरोहित ने कलगी सम्प्रदायी मान्यताओं के अनुरूप ख्याल गायकों का अपना पृथक दल बनाया, जिसमें गणपति प्रसाद चतुर्वेदी का नाँम उल्लेखनीय है। इसी समय श्री घासीराम व्यास के समकालीन और उनके प्रतिद्वंदी श्री घनश्याम दास पाण्डेय ने "पाण्डेयदल" बनाकर कलगी वालों की बागडोर संभाली। इसी सम्प्रदाय के ख्यालकारों

में गुरसरांय के स्व. श्री भोगीलाल गुप्त उच्चकोटि के ख्यालकार थे जिन्होंने कक्षा चार पास करके भी लगभग दो हजार उच्चकोटि के साहित्यिक ख्यालों की रचना की। श्री भोगीलाल सेठ बुन्देलखण्ड में 'कलगी सम्प्रदाय' के प्रवर्तक माने जा सकते हैं। इनके दल में श्री भाऊ नारायण, पं. रामकृष्ण, रामचरनलाल 'कायस्थ', दंगली प्रसाद जैन और मोतीलाल हिंगवासिनी प्रमुख कलगी ख्यालकार थे।

अतः ख्याल लावनी का बुन्देलखण्ड में पर्याप्त प्रचार व प्रसार हुआ। भारतेन्दु युग में लोक काव्य में लावनियां ही अधिक प्रचलित हुई थी। भारतेन्दु जी तथा उनके मण्डल के कवियों ने अनेक उत्कृष्ट लावनियां लिखी। भारतेन्दु युग में बनारस, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, और आगरा ख्याल लावनी के प्रमुख केन्द्र कहे जा सकते हैं उसी तरह गंगाधर व्यास जी के युग में बुन्देलखण्ड के अनेक नगरों में ख्यालों का प्रचलन था। अनेक राजा महाराजा इनके फड़ों में रुचि लेते थे। छतरपुर, मऊरानीपुर, झाँसी, चरखारी, महोबा तथा कालपी आदि प्रमुख नगरों में धीरे–धीरे इनका पर्याप्त प्रचार हो गया। जैसा कि पूर्व उल्लिखित है कि ख्याल के क्षेत्र में बुन्देलखण्ड में सर्व प्रथम दल गठित करने का श्रेय गंगाधर व्यास को ही है। वे तुर्रा दल के थे। उन्होंने तुर्रा दल से संबंधित अनेक उत्कृष्ट ख्यालों की रचना की। इनसे प्रभावित होकर मऊरानीपुर में श्री दुर्गा प्रसाद पुरोहित ने 'कलगीदल' में सम्मिलित होर ख्यालों की रचना की। इसके पश्चात तो अनेक ख्यालकारों ने ख्याल रचे। तुर्रा दल के प्रमुख मदारी कुंजरे, कल्लू, ब्राम्हण, नन्हे पाटिया, लालता प्रसाद, सदा सुखलाल और शफदर अली ने उत्कृष्ट कोटि के ख्यालों की रचना की। "कलगीदल" के ख्यालकारों में भाऊनारायण, पं. रामकृष्ण, दुर्गा पुरोहित, घनश्यामदास पाण्डे, रामचरण कायस्थ, दंगली प्रसाद जैन तथा सेठ भोगीलाल गुप्त का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने उच्चकोटि के अनेक ख्याल बनाये।

–कार्यालय सहायक, म.प्र.विद्युत मण्डल, छतरपुर □

साहित्य में बढ़ता प्रदूषण

– डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया

लगता है आज साहित्य में दुराग्रह ने अपनी गहरी पैठ बना ली है। बाजार की मांग की तरह साहित्य भी वस्तु जैसा निर्मित किया जा रहा है। साहित्य सृजन न होकर वस्तु हो गया है। पहले बाजार का निर्माण किया जाता है। मांग तैयार की जाती है और फिर मांग के अनुसार साहित्य तैयार किया जाता है। उसने राजनीति से प्रतिबद्ध होकर सुखोपभोग के लिए ऐसी गहरी सांठ–गांठ कर ली है कि उसके हित –साधन को ध्यान में रखकर ही लिखा और प्रकाशित किया जा रहा है। जिस प्रकार राजनीति सारे न्याय–नीति का परित्याग कर कुर्सी के लिए अवसरवादिता का सहज सुलभ मार्ग स्वीकार कर चल रही है और शोर किया जा रहा है कि जनहित, जनसेवा और मानवोत्थान, समाजोत्थान एवं देश–कल्याण के लिए वे तन–मन–धन से त्याग कर रहे हैं, ठीक यही पाखंड साहित्य में भी गहरे बैठता जा रहा है। वहां भी जाति, वर्ग, भाषा, गुटबाजी तथा दलगत प्रतिबद्धताएं प्रबल हो रही हैं। नये–नये शब्द नयी परिभाषाएं एवं जरूरतें गढ़कर पाठकों को तो भरमाया ही जा रहा है, साहित्य के निर्मल सागर को बेरहमी और बेशर्मी से गंदा किया जा रहा है। आज दलित–विमर्श, नारी–विमर्श, जाति विमर्श भाषा–विमर्श, उत्तर आधुनिकता के नाम पर जो अलग–अलग खंड किये जा रहे हैं। वे भारतीय साहित्य–संस्कृति के हजारों वर्षों की एकता को विखंडित करने का षड़यंत्र है जिसे समझना और पाठकों को समझाना जरूरी है।

दुराग्रही चिन्तन –

देश और समाज के उत्थान की चिन्ता से परेशान इधर कतिपय प्रतिबद्ध लेखक, समीक्षक और संपादक इस भावना को जोरों से हवा दे रहे हैं। फलतः प्रदूषण शहरों–कारखानों में ही नहीं, साहित्य और कला के क्षेत्र में भी जोरों से फैल रहा है। अपने को महान और दूसरे को शैतान कहने वालों को सम्पादक बढ़–चढ़ कर छाप रहे हैं और समीक्षक उचक–उचक कर पीठ ठोक रहे हैं और कह रहे हैं – शाबाश पट्ठो। इसी तरह से ताल ठोककर पुरानी स्थापनाओं को चुनौती देकर आमंत्रित करते रहो।

पत्रिकाओं और समीक्षाओं में वही कुछ चेहरे बदल–बदल कर सर्वत्र दिखाई देते हैं। उन्हें ही नई सोच और मानदण्डों के बहाने महान बनाया और बताया जा रहा है। आज साहस इतना बढ़ गया हैं कि दलितों का मसीहा बनने का दावा करने वाले यही कहते फिरते हैं कि सच्चा दलित साहित्य वही है जो दलितों के द्वारा दलितों के लिए लिखा गया हो। वे गांधी के "हरिजनोद्धार आन्दोलन" को, गांधी जी के कार्यों और विचारों को प्रेमचन्द की कफन, पूस की रात और रंगभूमि जैसी रचनाओं को निराला और नागार्जुन के सर्वदेशिक कृतित्व तथा अमृतलाल नागर के मेहतरों के जीवन पर केन्द्रित "नाच्यो बहुत गोपाल" जैसी कृतियों को अस्वीकार करते हुए आरोप लगाते हैं कि उन्होंने "हरिजनों" के नाम पर पाखंड करके अपने लिए ख्याति और सम्मान अर्जित किया। हरिजनों–दलितों का उससे कोई कल्याण नहीं हुआ। इन लोगों ने अपनी कृतियों में कारुणा उपजाने की चेष्टा की है। जब कि हमें संघर्ष चाहिये। हम दया और करुणा की अपेक्षा अपना अधिकार लड़कर लेना चाहते हैं। यही हमारे दलित साहित्य का स्वर है। महिला लेखिकाओं का दावा है कि नारियों की मनोभावनाओं, अनुभूतियों को पुरुष नहीं समझ सकते। वे केवल कल्पना से लिखते हैं। महिला लेखिकाएं स्वानुभूति से लिखती हैं, इसलिए नारियों द्वारा लिखी गयी, नारियों से संबंधी रचनाएं ही सत्य हैं और वे सत्य के नाम पर दुस्साहसपूर्वक नग्न भाषा में अनावृत साहित्य की धड़ल्ले से रचना कर चर्चित हो रही हैं। अल्पसंख्यकों का कहना है कि साहित्य सर्जन के क्षेत्र में उनके साथ न्याय नहीं किया गया। उनकी उपेक्षा की गयी। उन्हें समुचित स्थान नहीं मिला यह भी कहा गया कि शहरी लेखक, ग्रामीण जीवन को जाने समझे बिना आंचलिकता के नाम पर जो भी लिख रहे हैं, वह कई बार सत्य से दूर होता है। उससे ग्रामीण जीवन और भाषा दोनों विकृत होते हैं। इधर उत्तर आधुनिकता के दावेदार भारत वर्ष को दूसरे रूप में ले जाने की चेष्टा कर रहे हैं। जिस देश की अधिकांश जनता अशिक्षित हो, दोजून का खाना, पीने का पानी, आने जाने के लिए सड़कें, पढ़ने के लिए स्कूल, रहने के लिए घर, बीमारी के लिए दवाइयां और सुरक्षा के लिए पर्याप्त साधन जिसे उपलब्ध न हों, उस पर उत्तर आधुनिकता का स्वांग रचना कहां तक उचित है? यह करने वाले लेखकों, विचारकों, विद्वानों समीक्षकों, संपादकों और प्रोत्साहन देने वाली प्रतिबद्ध संस्थाओं से पूछा जाना चाहिये कि वे यह सब किस देश और समाज के हित में कर रहे हैं? उसका भारत की जमीन से कितना ताल्लुक है और इससे एकता, समता और प्रगति का कौन सा वातावरण बनेगा।

स्थापित मूल्यों का विरोध –

इसके पूर्व कला, साहित्य, साधना के क्षेत्र में ऐसा

भेदभाव नहीं था। भक्तिकाल, रीतिकाल यहां तक कि छायावाद, प्रगतिवाद तक किसी ने इस प्रकार के भेदभाव की चर्चा नहीं की। वहां भी सभी वर्ग के लेखक और लेखिकाएं रही हैं। यह तो आधुनिक युग की उपज है। जब हम हिन्दी के मुसलमान कवि, हिन्दी की महिला लेखिकाएं, महिला कवित्रियां, हिन्दी के दलित लेखक, हिन्दी के ग्रामीण रचनाकार जैसी बातें सामने लाते हैं। कबीर, रसखान, रहीम, रैदास, मीरा, तुलसी, ज्ञानेश्वर, बिहारी, भारतेन्दु, मैथलीशरण, जयशंकर प्रसाद, सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा को कभी इस जाति, वर्ग की दृष्टि से देखा–पहचाना नहीं गया। इन सब की एक जाति, एक वर्ग और एक उद्देश्य था – अन्याय, अनीति, अत्याचार, शोषण का विरोध, मानवीय आदर्श और मानव–सम्मान की रक्षा व स्थापना। समाज को सुसंस्कारित करने की चेष्टा और मानव–स्वर को वाणी देने का प्रयास। निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर सर्वहित की भावना से वह शक्ति दी की। कुंभनदास, तुलसीदास और रहीम ने बड़े से बड़े वैभव और सुख को ठुकरा दिया। सर्जक के भीतर ईर्ष्या, द्वेष, अलगाव, और स्वार्थ नहीं। प्रेम, सद्भाव और प्यार प्रमुख होता है। अप्रत्यक्ष रूप से अलंकार, सम्मान और पुरस्कार के नाम पर आज पुनः रीतिकालीन दरबारी संस्कृति पनप रही है। तुलसीदास ने नर–काव्य की रचना को हेय माना था –

''कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुन गिरा लगत पछताना।''

पर आज प्रतिबद्धता, शिविरबद्धता, के दबाव में स्थापित मूल्यों का अकारण विरोध करते हुए अपनो–अपनों के स्तवन को ही साहित्य का लक्ष्य बनाया जा रहा है, जो बड़ा घातक है। एक ओर वैश्विक सोच का दावा और दूसरी ओर अत्यन्त संकुचित प्रवृत्ति। इसीलिए सर्वत्र विरोधाभास दिखाई पड रहा है। ऐसा लगता है कि पूर्ववर्ती रचनाकार अधिक स्वाभिमानी और त्यागी थे। रहीम, तुलसी, कुंभनदास, की तरह श्रीधर ने नरकाव्य–रचना करने वालों को फटकारते हुए लिखा था कि चापलूस, अवसरवादी स्तुतिकर्ता रचनाकारों की जीभ काट लेना चाहिये, क्योंकि सर्जना को कलंकित करते हैं–

अब के सुलितान भये फुहियान सो बाधत पाग अटम्बर की।
नर की नरकी कविता जु करें तेहि काटिय जीभ सुलब्बर की।
इत श्रीधर आस हैं श्रीधर की, नहिं त्रास अहैं कोउ बब्बर की।
जिनको कछु आस नहीं जग में सो करों मिल आस अकब्बर की ।

आत्मकेन्द्रित दृष्टि –

आज के अधिकांश रचनाकार स्वाभिमानी कम, अभिमानी अधिक हैं। जनहित और जनहित का दावा करने वाले आज के अनेक प्रतिबद्ध साहित्यकार केवल अपनी और अपनों की निजी दुनिया तक केन्द्रित होकर मनमानी उच्छृंखलता कर साहित्य का सत्यानाश कर रहे हैं। दरिद्रता और शोषण किसी वर्ग का व्यक्ति हो, उसे पीड़ित करता है। वह जाति, वर्ग नहीं देखता। नारी किसी वर्ग की हो, अत्याचार की पीड़ा से चीत्कार करती है। अपमान, उपेक्षा और भेदभाव की भांति सभी पर एक सी पड़ती है। फिर अलगाव कहां? अलगाव सामाजिक व्यवस्था में हो सकता है, साहित्यकार की दुनिया में नहीं। वहां जो बुराईयों के विरुद्ध लड़ने का संकल्प और स्वर होता है। सर्जना का लक्ष्य मानवता का संवर्धन और अमानवीयता का प्रतिकार है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध अनेक रचनायें लिखीं। माधवराव सप्रे की ''एक टोकरी भर मिट्टी'' हिन्दी की पहली कहानी है उसमें भी एक गरीब दलित मजदूरनी के प्रश्नों के समक्ष जमीदार हतप्रभ रह जाता है और उसका हृदय परिवर्तन भी हो जाता है। लगभग एक सौ पूर्व लिखे गये इस प्रकार के साहित्य में कोई भेदभाव की बात नहीं है। पं. रामनरेश त्रिपाठी और देवेन्द्र सत्यार्थी गांव–गांव घूमघूमकर लोकगीतों और लोक–जीवन की सम्पदा एकत्र करते रहे। एक सृजन की प्रेरणा थी।

कुरूपता की वकालत –

केवल संघर्ष, शोषण और अनाचार की बातें अशिष्ट भाषा में करना ही न तो साहस है और न साहित्य का एकमात्र स्वर। साहित्य में प्रेम, त्याग, बलिदान, अहिंसा, सद्भाव, शोषण, दमन, प्रतिकार, स्वीकार, राग–द्वेष, मिलना–टूटना सभी कुछ होता है। पूरा मनुष्य और पूरा समाज मिलकर साहित्य की दुनिया बनाते हैं। अनुचित का प्रतिकार और श्रेष्ठ की प्रतिष्ठा ही तो साहित्य का लक्ष्य है। साहित्य का सत्य केवल कुरूपता का चित्रण नहीं है। समाज में सुन्दर, असुन्दर, सुख–दुख सभी होते हैं। सब कुछ जीवन से जुड़ा है। यदि असुन्दर ही असुन्दर, विकृति ही विकृति, अवमानना ही अवमानना, दुख ही दुख का चित्रण हुआ तो आकर्षण और प्रेरणा के बिन्दु कहां मिलेंगे? सब कुछ का सचाई के साथ चित्रित करना ही साहित्य का सच्चा धर्म है। नग्नता मात्र सर्जना नहीं है। गरीबी, अत्याचार, पीड़ा, अभाव के चित्रण का अर्थ है, इनसे आमजन को मुक्ति दिलाने हेतु व्यवस्था एवं जनभावना को जागृत कर सुखद की ओर जाने के लिए प्रेरित करना। पर आज नंगापन बढ़ता जा रहा है, चाहे वह जीवन का हो या भाषा का। फूहड़ प्रसंग, फूहड़ भाषा, अमर्यादित दृश्यों को रस ले–लेकर लिखा जा रहा है। रचनाओं के चर्चित होने पर लोकप्रिय बनने का इसे माध्यम बनाया जा रहा है। समीक्षक और सपादक की यथाशक्ति हवा दे रहे हैं। इधर दलित लेखकों की रचनाओं और महिला लेखकों की कृतियों में वह बहुतायत से देखा जा सकता है। सृजन के संसार में

बिम्बप्रतीक और संकेतों के माध्यम से सब कुछ कहा जा सकता है। कहा भी गया है –

सर्व ढके सोहै नहीं, उघरे होय भदेस।
अर्ध ढके छवि देत है, कवि अच्छर कुच केस।

शब्द–शक्ति : कितना सदुपयोग–कितना दुरुपयोग–

कवि–अच्छर की शक्ति असाधारण हैं उसे इतना दुर्बल नहीं माना जाना चाहिए कि भोथरा करके प्रयोग किया जाए। शब्द–शक्ति तो कवि–प्रतिभा पर निर्भर है। कवि दुरुपयोग–सदुपयोग दोनों कर सकता है। यदि अभिव्यक्ति की फूहड़, अशिष्ट और भदेस हो गई तो रचना का कलात्मक भाव–सौंदर्य कहाँ रहा? यथार्थ रचनाकार के रूप में स्वीकृत और प्रतिष्ठित स्वयं प्रेमचन्द जी ने भाषा के सुन्दर और परिमार्जित होने को आवश्यक माना है। वे लिखते हैं। – ''साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सचाई प्रकट की गई है। जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो, और जिसमें दिल–दिमाग पर असर डालने का गुण हो। साहित्य में वह गुणपूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है जब उसमें जीवन की सचाईयां और अनुभूतियां व्यक्त की गई हों।

प्रेमचन्द को अस्वीकारने वालों, साथ ही प्रेमचन्द्र को आदर्श मानने वालों को उनकी कही हुई बातों की कसौटी पर कसकर देखना चाहिए और परीक्षण करना चाहिए कि चाहे यथार्थ और आदर्श के समन्वय की बात हो, भाषा और विचारों की शिष्टता की बात हो, अथवा जीवन की सचाइयों के चित्रण की बात हो, वे कहां ठहरते हैं और कितनी जिम्मेदारी से अपने कर्तव्य–धर्म का निर्वाह कर रहे हैं।

कीचड़ भी – कमल भी –

जीवन में कीचड़ और कमल सदा रहे हैं। यह हमें तय करना है कि इनमें से सर्जना के लिए किसे और कितना तथा किस रूप में चुनना है। यह तो निर्विवाद है कि कमल के साथ कीचड़ का भी चित्रण किया जाना चाहिए, परन्तु संतुलन ऐसा हो कि दोनों का समान यथार्थ बोध हो। कमल की उपेक्षा कर केवल कीचड़ को समेटना सारे सौंदर्य की अनदेखी करना है। और कमल को उठाकर कीचड़ को छोड़ना सत्य को अस्वीकारना है। निराला ने गुलाब और कुकरमुत्ता का चित्रण कर वर्तमान पूंजीवादी प्रवृत्ति का चित्रण किया है पर कहीं पर भी भदेसपन नहीं है। नागार्जुन ने अकाल का चित्रण किया, उसमें व्यवस्था की क्रूरता अभाव की मार्मिकता प्रभावशाली ढंग से अंकित है पर भाषा की नग्नता या अमर्यादा नहीं है। जायसी ने मेढ़क, भ्रमर, कीचड़ और कमल का उपभोग करते हुए सुरुचि–कुरुचि की बड़ी तर्कसंगत चर्चा की है। कमल नाल के पास कीचड में रहने वाला मेढ़क, कीचड़ में ही मग्न रहता है। उसे कमल के सौंदर्य और सुगंधि का बोध नहीं होता जबकि जंगल में रहने वाला भ्रमर दूर से ही सुगंधि से कमल की पहचान कर उसका रसपान करता है। यह रचनाकार को तय करना है कि वह अपनी रचना को कहां केन्द्रित करे। हर हालत में उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि उसका समाज के प्रति बहुत बड़ा दायित्व है। दायित्व को नकारा नहीं जा सकता। समाज की संरचना और चेतना में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है और आगे भी रहेगी। साहित्य और समाज में संतुलन एवं समन्वय अपेक्षित और अनिवार्य है। आदर्श और यथार्थ एक ही सत्य के दो पहलू हैं।

– 12–एम.आई.जी., चौबे कॉलोनी, छतरपुर □

लघु कथायें :

रक्षा

कक्का जू खाँ कवि सम्मेलन, मुशायरे को भौतई शौक है। कउँ कवि सम्मेलन–मुशायरा होबे की खबर उने मिलत तौ बे जरूर जात, छोड़त नईयाँ।

जब–जब बे कवि सम्मेलन और मुशायरा से लौटत तब तब उने कछू दिना तक ओई को भूत चढ़ो रात। दो–चार लैने जोन उने याद भईं रात–दिन बेई गुनगुनाउत रात। जां बैठत उतईं वि सम्मेलन और मुशायरा की चर्चा छेड़ देत। एक दिना बे रमला सें बोले – काए रे रमला तें नीरज खाँ जानत। रमला– नईं मालिक। राहत इन्दौरी खाँ जानत। रमला – नईं मालिक। राजा सन्तोष सिंह खाँ जानत। रमला– नईं मालिक। हशमत छतरपुरी खाँ जानत। रमला – नईं मालिक। धत् तेरी की तें ससुर ढोर कौ ढोर रओ, तोरी तो जिन्दगी बेकार की बेकार रई।

तनक देर रमला सब कछू सुनत रओ फिर बोलो – ''काय कक्का जू अपुन हरिया खाँ जानत?

कौन हरिया तेने तो मों को स्वादई बिगार दओ, हम बड़े–बड़े साहित्यकारन की बात कर रये और तें हरिया खों लेंय बैठो धत् तोरे की।

रमला बोलो कक्का जू हरिया खाँ सोई जानो करो जब अपुन कवि सम्मेलन और मुशायरा में बाहर जात तब ओई रात खों अपुन के खेतन में बिड़ो रात।

धंधा

काये नन्हें भईया, तुमने अबै तक कुल कितने बुकरा–बुकरियां चुराये हुईयें?

काये वकील साब, तुम बता सकत के तुमने अबै तक कितने मुकदमा लड़े हुइयें?

– निहाल अहमद सिद्दीकी,
बेनीगंज, छतरपुर □

बुन्देलिन क्षत्राणी

– रामजी लाल चतुर्वेदी

क्षत्राणी – का मौ लै कें तुम जीहो, और का तुमसें को कैहै?
भारत मैया कौ आँचर जौ, खेंच विदेशी लैहै।
अब लौ साख बनी पुरखन की, भलां जान न पावै।
जब सें चर्चा सुनी जुद्ध की, मोखाँ चैन न आवै।।
नींद न लगे रात कें मोखाँ, अन्न न तनकउ भावै।
तुम तौ समझदार सयाने हौ, तुमखाँ का समझावै।।
लग कलंक माथे पै जैहै, सबरी साख नसैहै।
नाव धरै सबरी संसारी, बाँसें से पुछ जैहै।।

क्षत्री – मन में धीर धरौ तुम प्यारी, परसौ मोखौं ब्यारी।
रस के भरे बैन कछु बोलौ, जा तौ आय संसारी।।
कछू होय हमखाँ का करनें, ना नौकर सरकारी।
दुखी न होव तुम्हें, ला देहौं मैं जरतारी सारी।।
जे चर-चर कें गधा परे, सो बिगर उनइ की जैहै।
ना ऊँटन में ना लातन में, को हमसें का कैहै।।

क्षत्राणी – आगी में धर दो बा सारी, फूटो करम हमारौ।
विधना रच दऔ कौन स्यात सें, जौ संजोग हमारौ।।
चुरियाँ पैरौ बैठौ घर में, घरइके पुरखा तारौ।
कै तुम डूब मरौ पानी में, कै तुम मोखाँ मारौ।।
तौलौ तुम्हें कोसहों जौलौ जिन्दा मोरौ रैहै।
मोरी दुखत आत्मा रैहै, कहत एई बस रैहै।

क्षत्री – बकले जितनौ तोखाँ बकनें, मारन मोय बिचारें।
अपनौ करत खात कोऊके मैं नई आंव सहारें।।
पैला जौन अँगाऊ रये सोउ बेई होयँ अंगारें।
कर दओ मोय पछारें, सो राने मोय पछारें।।
मर जैबी री तौ तोरौ को बेड़ा पार लगैहै।
रोउत रोउत मर जैहै, कोऊ पानी लौ न दैहै।।

क्षत्राणी – ऐसी कहौ न पिया प्यारे, ऐसी मन न बिचारौ।
जीनें जनम दओ जगती में, सोई पालन हारौ।।
करौ न जरन कोऊ के ऊपर, मनखाँ करौ न कारौ।
पकरें रात चुटइयाँ हम सबकी ऊ ऊपर वारौ।।
दुख भोगे सो करम लिखे ते, कोऊ बाँट न लैहै।
जीने दुख दिखाए हुइए, सोई सुक्ख दिखैहै।।

क्षत्री – फसलें लगीं अबै कट जावें, अबै न गइयाँ ब्यानी।
मोरे बिना भला बैलन खाँ, कौन दिखेहै पानी।।
हीड़-हीड़ बैला मर जेहें, खैहें लौहै न सानी।
तैं परदा में रही, खेत की गैल न तोरी जानी।।
हिल्लो पातो तकत घरइको, काम सधो जो रैहै।
कोऊ लाम जोरवे आहै, तब कऊ देखो जैहै।

क्षत्राणी – करौ न फिकर खेत की, घर की मैं बैठी मरदानी।
मैंई खेत काट लैहों और मैंई दिखैहों पानी।।
करत मायके में रई सब जा, मैं बैलन की सानी।
प्यारे बैलन के पेटन कौ, डुलन न पाहै पानी।।
मुरका लैकें तुम निग जइयो, घरी न ऐसी आहै।
मैं न जैहों तऊ सतीपन, मोरो तुम सग जैहै।।

कवि – बदल परौ गुस्सा हो ठाकुर, जडो उठाकें डंडा।
तिरियन के जे चरित सबई मैं जानत हों हथकंडा।
भइया अपने काय न भेजत, बने फिरत मुस्तंडा।
तैं मरदानी तेंई थाम ले, अब ई जग कौ झंडा।।
तोहाँ सीख सिखैहों ऐसें, जो तैं मोय सिखैहै।
तोखाँ गुरू बनाहौं जब तें, मोखाँ कछु दिखैहै।।
उठकें ठाड़ी भई मरदानी, बुन्देलिन क्षत्राणी।
कम्मर कस लई, जूटौ बाधौ, बाघिन सी गुर्रानी।।
खाँड़ो उठा लओ बब्बा जू कौ, कुल की अमर निसानी।
तुबक बगल में टाँगी, कोपी जैसी समर भवानी।।
जा तलवार हाथ में जौलौ, जौहर विकट दिखैहै।
अब जो आहै काल सामने, मो पै पार न पैहै।
आंखन की लख ज्योत देवता, लौ मन में हरसाने।
शेष शारदा, क्षत्राणी की छबि बरनत सकुचाने।।
पवन बलैयां लेय, सूरज हूँ बादल बीच छिपाने।
जान प्रलय की बेला मन में, शिव शंकर हरसाने।।
करन आरतीं दिसा लगीं सब, होन चहत परलय है।
पुतरा लौ न बचै युद्ध खाँ, गाँव सबई चल दैहै।।
टूटो मोह उठो, ठाकुर खाँ चढ आयो पानी।
अपनी करनी पै ठाकुर खाँ मन में भई ग्लानी।।
लानत मोरी जा रजपूती, लानत मोरी जवानी।
तिरियन तेगा तुबक लई, मो पर छाई मरदानी।
बब्बा जू की बात भुलै दई, जौ रण लोह चबैहै।
और न पानी दैबै कोउ, ओई पानी दैहै।।
फैंटा कसो तुबक लै लई, और बाँधी दो तलवारें।
मूँछ संवारी लेंके भाला, निकरो ठाकुर द्वारें।
छत्रसाल-हरदौल सुमर लये, जय जननी उर धारें।
करी प्रतिज्ञा मर जैहों, पै पाँव न धरौं पछारें।
काल लुकानो, महाकाल सौं ठाकुर रूप धरैहै।
शत्रुन में सनसनी फैल गई, अब को पार लगैहै।

– चौबे कॉलोनी, छतरपुर □

बुन्देलखण्ड के लोक बाजे



– डॉ. दयाराम वर्मा 'बेचैन'

मानव अपने दैनिक जीवन में श्रम के पश्चात् आराम भी अनिवार्य रूप से चाहता है क्योंकि आराम से शारीरिक शक्ति का पुनः सृजन होता है। मनुष्य ने अपनी प्रसन्नता के लिये समय समय पर तीज त्योहारों को मनाना भी उचित समझा है। अपनी प्रसन्नता को गाकर, बजाकर तथा नृत्य करके वह प्रकट करता है। संगीत की यही तीन विधायें हैं – गायन, वादन, नृत्य। भूतभावन भगवान भोले शंकर की डमरू से नाद की उत्पत्ति हुई। यही नाद जब लय का रूप लेता है तो वह संगीत बनता है। काव्य कला व नृत्य कला की भांति संगीत कला भी स्वर्गिक आनंद प्रदान करने में सक्षम है। कुछ देर के लिये प्राणी ब्रह्मानंद की अनुभूति संगीत के माध्यम से भी प्राप्त करता है। मनोरंजन की ललित कला की दुनियां में संगीत को आनंद वाद्य यंत्र प्रदान करते हैं। इन वाद्य यंत्रों के बजाने वाले परम्परागत रूप से लोक जीवन में स्वतः सीखते जाते हैं। ''जहां चाह है, वहां राह है'' अथवा ''जिन खोजा तिन पाइयां'' की उक्ति के अनुसार जो जिस विद्या–रत्न का खोजी होता है, वह विद्यारत्न–व्यक्ति संसार–रत्नाकर से खोज लेता है।

मधुर स्वर किसे नहीं मोह लेता। पत्थर हृदय की नवनीत बन जाता है। मयूर तथा कोकिल की कूक, पपीहे की पीव–पीव, तोता तथा टुंइया की आवाज किसे नहीं भाती। जब स्वर मधुर हो और वह संगीत के सांचे में ढाल कर वाद्ययंत्र के द्वारा स्फुरित हो तो प्रत्येक प्राणी को मोह लेता है। यहां तक कि संगीत से मंत्र मुग्ध होकर मृग भी अपने प्राण निछावर कर देता है। यथा ''सारंग प्रीति करी जु नाद सों सम्मुख वान सहयो।'' संगीत में वाद्य–यंत्रों का महत्व निर्विवाद सत्य है। हमारे लोक जीवन में संगीत में सोने में सुगंध इन वाद्ययंत्रों के द्वारा होती है और यह वाद्य लोक वाद्यकारों द्वारा निम्न लिखित रूपों में बजाये जाते हैं–

बांसुरी : बांस से बनती है। इसे वंशी भी कहते हैं। उ.प्र. में पीलीभीत जिला में बांसुरी का प्रमुख व्यवसाय होता है। योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण की यह परमप्रिय सहेली है। सुर, नर, नाग सभी को मोहित कर लेती थी उनकी बांसुरी। इस बांस को बंसुरिया में छिद्रों से अनेक मोहक स्वर फूंक के द्वारा उत्पन्न होते हैं। अत्यंत कम पैसों का यह मोहक वाद्य सर्वत्र सुलभ है।

मुर्ली : मुरली और बांसुरी की बनावट में थोड़ासा अंतर होता है। मुरली को अधरों से फूंककर बजाते हैं। यह एक बगल को बजती है। बांसुरी सामने बजती है। ओंठों से मुंह में दबाई जाती है। स्वर दोनों के मोहक होते हैं। श्री कृष्ण का नाम मुर्लीधर व वंशीधर दोनों है। वे मुर्ली भी बजाते थे। यह भी बांस से बनती है। मुरली और बांसुरी में थोड़ी बनावट की भिन्नता है। ''मुरली तऊ गोपालहिं भावति।'' मुरली श्री कृष्ण जी की प्रिय वाद्य है। इसमें ब्रह्मानंद प्रदान करने की क्षमता है। ''सावन सुहानी मुरली लागै–भदवां सुहानी मोर।'' बुन्देलखण्ड की साखियों में गाया जाता है।

अलगोजा : अलगोजा भी बांसुरी या मुरली की तरह बने होते हैं। इनके स्वर कुछ पतले होते हैं। बांसुरी या मुरली से पूर्ण भिन्न। अलगोजा जोड़ी में दोनों हाथों से नकसुर साधकर बीन की भांति फूंकनी देकर बजाये जाते हैं। गाँवों में अनेक व्यक्ति इन्हें सदैव अपने साथ रखते हैं और चलते चलते भी बजा लेते हैं। लोकगीत की मधुर–धुन इनमें गाकर मस्त होते हैं।

रमतूला : रमतूला एक धातु (तांबा–पीतल) का बना टेड़ा–मेड़ा वाद्ययंत्र है। इसमें संगीत की लयात्मकता का अभाव होता है। बुलौआ–चलौआ में, पंगत, पक्यात में टीका अगवानी में यह प्रथम रूप से बजता आ रहा है। रमतूला एक प्रकार से सभी लोगों को सूचना देने का कार्य करता है। इस वाद्ययंत्र का भी लोकव्यवहार में बड़ा महत्व है। इसे फूंककर बजाया जाता है।

ढोलक : ढोलक या ढोलकी बड़े ढोल का लघु रूप है लोक जीवन में चाहे माता पूजन हो, चाहे दादरे सोहरे होना हो या जुगिया फिरना हो या बधाये बन्ना बन्नी के गति हो या लोक संस्कारों अन्य अवसर हों ढोलक को जरूर बनाया जाता है। उक्त अवसरों पर मातायें, बहनें ही बजा लेती हैं। ढोलक में राग–रागनियां भी लोक संगीत में बजाई जाती हैं। सामान्य रूप से आम, दुद्धी, सेजौ की लकड़ी से ढोलक बनती हैं दोनों तरफ चमड़ा मढ़ा दिया जाता है जिन्हें पुरा कहते हैं। दोनों ओर के स्वर पृथक–पृथक बनाये जाते हैं। चोटी, गुमकी, ताल से ढोलक की मोहक ध्वनि मर्मज्ञों द्वारा बजाई जाती है। इसे डंका से भी नट लोग बजाते हैं।

डौरू : डौरू डमरू का तदभव शब्द है। लोकवाद्यों में इसे ढांक भी कहते हैं। कारस देव, धनी महाराज की गोटों के गायन में बजाया जाने वाला यह प्रमुख वाद्य यंत्र है। यह पीतल, तांबा आदि धातुओं का बनाया जाता है। दोनों तरफ ढोलक की भांति चमड़ा चढ़ा रहता है। लकड़ी

(डंका) की सहायता से बजती है।

गिड़गिड़ी : गिड़गिड़ी शब्द गिड़गिड़ करने की ध्वनि से बना है। बाजीगर, रीछ, बंदरों वाले, खेल तमाशा करते समय इस वाद्ययंत्र को बजाते देखे जाते हैं। शंकर जी का यही डमरू कहलाता है। हाथ से बीच में पकड़कर बजाते हैं। इसके दोनों ओर चमड़ी ढांक की तरह मड़ी रहती है। ढांक का छोटा सा रूप है। इसमें धागा की बनी हुई गांठें नाद उत्पन्न करती हैं। यह वाद्य भी कौतुहलवर्धक होता है।

चंग : चंग ख्याल गायकी में प्रमुख रूप से बजाया जाता है। थालीनुमा चमड़े से मढ़ा हुआ यह वाद्ययंत्र होता है। इसमें झीका की तरह धातु की गोल गपई (पहिये) भी झनकार साथ–साथ उत्पन्न करते हैं।

ढपला : यह लोहा के चद्दर का बना हुआ चंग से कुछ बड़े आकार का होता है। चमड़ा मड़ा रहता है तथा लकड़ी से पीटकर ढ़प ढ़प ढ़प ढ़प एक लय में बजाया जाता है। इस वाद्य का स्वर विशेष रसीला नहीं होता। परन्तु छोटे मोटे कामों में या पर्याप्त बाजों के साथ यह बजता रहता है। इसको विशेष महत्वपूर्ण नहीं मानते परन्तु लोक वाद्यों में इसकी गणना है।

खंजरी : चलनी के आकार की होती है। गोह (ग्वा) की चमड़ी या बकरी या अजगर की चमड़ी इसके लिये अच्छी मानते हैं। इसी के घेर पर छोटी छोटी घुंघरू भी छल्लों दो चार जगह जड़ लेने से ताल के साथ उसका भी मधुर स्वर मिश्रित रूप से चलता है। अधिकतर काठ का घेरा इसके लिये अच्छा होता है। भजनों में मण्डली के रूप में प्रत्येक गायक इसे बजाता भी है। इन गीतों को (खंजरया भजन) कहते हैं। अधिकतर खंजरी से इन भजनों में (डब्बल चिक्कू–डब्बल चिक्कू) की ध्वनि निनादित होती है। काछी, चमारों के भजन गायक भजनों में इस वाद्य को विशेष रूप से बजाते हैं। यह वाद्य भी सस्ता है। फुटकर रूप में मांगने वाले भी खंजरी को बजाते–गाते देखे जाते हैं।

रेंकड़िया : यह वाद्य तमूरे के आकर का डेढ़ फीट तक की लम्बाई में होता है। अधिकतर बड़े नारियल की कठेलिया के ऊपर चमड़ी चढ़ाकर डंडी की सहायता से बनाते हैं। इकतारा की भांति तार भी लगते हैं। घोड़ों की पूंछ के बालों से युक्त कमनियां (धनुष) की सहायता से वाद्यकार अत्यंत मोहक शब्द गाना इत्यादि बजाते हैं। इसे सारंगी भी कहते हैं। रावला नृत्य तथा चमरयाई व ढिमरयाई लोक गीतों में इसे अवश्य बजते देखा जा सकता है। रेंकड़िया के स्वरों में अत्यंत मधुरता होने से जन समूह बड़ा आनन्द प्राप्त करता है।

कसावरी : कांसे (कान्स्य) धातु का प्लेटनुमा बेला सा होता है छोटी थाली जैसी बनावट का होता है। इसमें छेद होता है। वजन में ज्यादा न होने से धागे की सहायता से बायें हाथ की बीच की उंगली वाद्य कर बजाते हैं। मधुर स्वर बड़ा प्यारा लगता है।

चमीटा : खाना बनाने में सहायता चिमटे की भांति 1 मीटर या सवा मीटर की लम्बाई का यह चमीटा होता है। सिरे पर एक बड़ा लोहे का छल्ला होता है। चिमटे की छड़ों पर छल्ला को लय में पीटकर बजाते हैं। चिमटे पर ऊपर नीचे झीका की तरह पहिये भी पीतल धातु के जड़े होने से स्वर में मिश्रण व मधुरता आ जाती है। यह वाद्य भी अपनी जगह अपना महत्व रखता है।

मृदंग : ढोलक के आकार से कुछ लम्बा होता है, यह लोक संगीत में रावला राई में बजता है।

घुंघरू : नृत्यकार अपने पैरों में बांधकर मधुर झनकार उत्पन्न करते हैं। इन्हें चौरासी भी चहते हैं। नृत्य में चौरासी न हों तो सूना होता है।

ढोल : इसे अंग्रेजी में (ड्रम) कहते हैं। बड़े आकार का होता है। ढोल के साथ सहायक रूप में नगड़िया भी बजने से राग मोहक हो जाता है। अड़ब्बी या नगड़िया चोव से बजायी जाती है। इसका जोड़ ढोल के साथ होता है। मुसलमानों के मुहर्रम में ताजियों में विशेष रूप से बजते हैं। भारी गर्जना भारी आवाज जोश उत्पन्न करने में सहायक होती है। दंगल में व घोड़ा नृत्य में ढोल पसन्द किये जाते हैं।

शंख झालर :जिस प्रकार ढोल के साथ नगड़िया उसी प्रकार शंख के साथ झालर बजने से रागमृदु हो जाता है। पूजा के समय अधिकांश मंदिरों में शंख झालर बजते हैं। यह धार्मिक कार्यक्रमों के वाद्य यंत्र हैं। इनको भी लय में बजाते हैं।

घंटा : छोटे बड़े आकार के गरुड़ की तरह बने घंटे मंदिरों में श्रद्धालु भक्तों द्वारा चढ़ाये जाते हैं। पूजा के समय इन्हें लय में भी बजाते हैं तथा फुटकर भी। हाथी के सवार महावत हाथी के दोनों ओर घंटा लटकाते हैं।

हारमोनियम :काष्ठ की पेटी में बना पर्दो के विभिन्न स्वरों से मुक्त हवा के दबाव से मधुर आवाज निकालने वाला यह वाद्य लोक संगीत में सभी कार्यक्रमों में बजने लगा है। कव्वाली, कीर्तन, भजन, रावला, नोंटकी, पक्का राग (शास्त्रीय संगीत) में भी प्रयुक्त होता है। लोक वाद्य यंत्रों के साथ बजाने से तथा अधिक प्रचार में आ जाने से हारमोनियम सभी का प्रिय वाद्य है।

झांझें : कांस्य धातु की बनी होती है। झंकार युक्त मधुर स्वर देती है। जोड़ी के रूप में दोनों हाथों से देवी–भजनों में विशेष रूप से बजायी जाती है। वाद्यकार साथ में गायकी भी करते हैं।

मंजीरा : छोटे–बड़े आकार के होते हैं। अनेक वाद्यों में इनका स्वर होने से राग और अधिक सुहावना लगने लगता है। पीतल–कांस्य की मिश्रित धातु से या पृथक पीतल के भी यह बने होते हैं।

झींका : काष्ठ की लकड़ियों की बीच में पीतल के पहिये जोड़ी के रूप में जड़के झीका बनते हैं। यह दोनों हाथों से हिला बजाते हैं। कीर्तन, रावला, स्वांग, ढोला आदि में विशेष रूप से प्रयुक्त होता है।

करतालें : दोनों हाथों में लेकर या एक ही हाथ में दो करतालें लेकर बजाते हैं। यह झीका की भांति बनती हैं काष्ठ की लकड़ी में उंगलियाँ डालने के लिए पकड़ने के लिये छिद्र बने होते हैं। भजन कीर्तन में विशेष रूप से बजायी जाती है। नारद जी एक हाथ मे बीना और दूसरे में करताल पसंद करते थे।

तमूरा (इकतारा): लोक वाद्यों में इसका बड़ा महत्व है। तूमड़ी या तूमा पर चमड़ा चढ़ाकर डंडी की सहायता से बजाते हैं। इसमें एक ही तार होता है। ऊँगली की टंकार से झंकृत कर गायक बजाता है। भजनों में विशेष रूप से बजाया जाता है।

तुरही : यह धातु की बनी होती है। साधू सन्यासी भी पूजा के समय बजाते हैं। धर्म गुरुओं के आगमन पर स्वागत में बजायी जाती है। फूंककर बजायी जाती है।

श्रृंगी : सींग की बनती है। इसे भी तुरही की भांति बजाते हैं।

महुअर या बीन : यह सपेरे जाति के लोगों का प्रिय वाद्य है। इसकी आवाज अत्यंत मधुर होती है। आजकल नागिन बैंडों में बाद्यकार नकसुर साधकर बजाते हैं। सपेरी भी नकसुर से बजाते हैं।

नक्काड़ा : प्राचीन वाद्य है। घोर गर्जना की आवाज करने को बजाते हैं। राजा लोग सेना के साथ बजाते थे। नौटंकी में यह अवश्य बजता है। चमड़ा चढ़ा हुआ लोहे का बना होता है। लकड़ी की सहायता से वाद्यकार बजाते हैं। साथ में नगड़िया बजती हैं।

नगड़िया (तासौ) :नगड़िया नक्काड़े की सहगामिनी है। छोटे आकार की होती है। मिट्टी या लोहे की बनी होती है। चमड़ा चढ़ा होता है। तासौ भी नगड़िया की तरह होता है। इसे पृथक भी बजाया है।

अड़ब्वी : छोटे आकार का नगड़िया जैसा वाद्य है। (चौब) लकड़ी की बनी होती हैं। उन दो लकड़ियों से बजती हैं।

अन्य वाद्य यंत्र : अन्य वाद्य यंत्रों में पकी हुई गागर तथा पपीरा (या सीटी) हैं। रुनझुन या झुमझुन करने वाला झुनझुना वाद्य यंत्र भी समूह में वाद्यों के साथ बजाता है। धातु का बना होता है अंदर कंकड़ या गोली छर्रे आदि डाले जाते हैं। वे झुनझुन झुनझुन की आवाज हाथों से बजाने पर करते हैं। मुंह से सीटी बजाना ताली बजाना, चुटकी बजाना भी लयमय वाद्य बन जाते हैं तथा कव्वाली में ताली बजती है। टुनटुन, झोला भी पशुओं के गलें में मधुर स्वर देते हैं।

इस प्रकार गौर से देखा जाय तो प्रकृति में लय सर्वत्र विद्यमान है। सन की कलियां, सिरम की फलियां हवा के साथ वाद्य यंत्र सी बजती हैं। जंगल में पोले बांसों में वायु लगने से प्रकृति की बांसुरी स्वतः बज उठती है। बादल गरज गरज कर वाद्य बजाते हैं। पानी झरनों के माध्यम से मधुर कलकल छल छल का वाद्य बजाता है। अतः मानव क्या समस्त प्राणी संगीत से वशीभूत होते हैं। यही इन सब वाद्यों का महत्व है।

– प्रवक्ता, ग्राम पोस्ट – स्यावरी, मऊ, झांसी ☐

बुन्देली कविता :

कुटिल कुटेब

– डॉ. लखन लाल खरे

भओ चौपट राजा को राज, खोखलो हो गओ सकल समाज,
कोउ सुनबे बारो नइयां।
कुटिल कुटेब किलक कें सबकी चढ़ रओ है कइयां।।
सुनो कभउं न देखो ऐसो, जैसो अब हो रओ है,
पानी छोड़ मनुज नरदा में अपनो मों धो रओ है।
लगत घाम सी, काय, को जानें अमवां की छइयां। कु...।।
बिन बादर के सावन बरसत, भादों तपत तवा से,
गलियन–गलियन में हो रय, नय–नय हर रोज तमाशे।
बिला गई कउं सावन के झूलन की मिचकइयां। कु...।।
प्रजा ठूंठ भई, राजा बांड़े, मंत्री बने शिखण्डी।
अफरा तफरी मची सबइ कउं, झण्डा बन गय झण्डी।
दूध छोड़ दारू दे रइं अब कलजुग की गइयां। कु...।।
ममा मनिस्टर, कका कलक्टर, मसकें मुर्ग तंदूरी,
गटक रहे हजमोला सी, मजदूरन की मजदूरी।
जब डर कैसो, की को? जब कुतवाल भये सइयां। कु...।।
हटकत हटकत सबइ पखेरू बनत जात कउवा से,
सोनचिरइया के अंसुआ टप टप टपकत मउवा से।
मिटा घोंसला दओ खेलकें छल–चइयां मइयां। कु...।।
मूड़े चढ़ लव भोत इये अब और चढ़न न देंहें,
ई के पांछू लड़े घरइ के और लड़न न देंहें।
फूंक फूंक धरती पे धरहें अब पइयां पइयां। कु...।।

–शास. महाविद्यालय, कोलारस, शिवपुरी ☐

पचरँगिया साँझ*

– राज बहादुर सिंह

पगडण्डी छेकैं ठाढ़ी
बौल गुंज की – बिंदिया देकैं
छरहरी
फुलहरी
करौंदिया की गहरी
कुंजन–कुंजन बौंड़ी
बजावै बिछिया झींगुर के
तरेरी हेरै – अंगडईयाँ लै
लाल धमईयां मा।
मुनऊवा,
पगडण्डी छेकैं ठाढ़ी–बोलगुंज की
बिंदिया देकैं।

चिरईया किलकोटे मुनियाँ
रँगीली रेता मईयाँ,
सांझ सँगातिन
पथरा पै बैठी
झिन्ना तीरे – चिहकै,
पंख फुलावै
छिटकी दूबन की छतियन मा।
मुनऊवा,
किलकोटै चिरईया मुनियाँ
दूबन की छतियन मा।

बुकुरुआ हाँकै
बेनु बजावै – अहिरन कौ मौंड़ा
सिलबिल्ला भौंड़ो
आँखिन सैं कैंड़ो
डटैं अँगरखी साटन की
पहरबो ना जानै
ललरावै नई पन्हईयाँ
और अँगोछा हरदीरौ,

साफी लुटरै धूरू मा
गुड़िया रोबै घूरे मा
खड़ी धुँदईया बाप लिड़ईया
बंदरा सो
गरे परी ढुलनियाँ सोने की
हाथन मा चाँदी के चूरा
गाँठन–गाँठन फोरा!
व्याहो और बरो जो लुँगरा

आँखिन कौ कजरा ना धोवै
पथरन मा महरात फिरत है
चलबो ना जानै,
मुनऊवा,
जौ अहिरन कौ मोंडा– सिलबिल्ला भोंड़ो
आँखिन सें कैंड़ो,
चलबो ना जानै।
पाछूँ–पाछूँ लगी–गड़रिया की मोंड़ी
जा कैसी लुँदरिया!
नकरी कण्डन की ह्याल धरैं
नोने लुटिया–डोर समेंटें
चलबे के झोंका मा
झुलऊवा तनकऊ नई सँवारै,
गुलाबी धुतिया पहरैं
कछोटा मारैं
पैजनियाँ रूपे की
झनन्–झनन् झनकावै।
जा गड़रिया की मोंडी।
घूमै, निरखै भरी पछारी
गदराई केरा सी पिंडरी
फूली–फूली
फलवे को आगे कों तर्रावै,
नैनू की पुतरी
ईंगुर सी
टेसू के गहने पहरैं
गोल–मटोल बिलौटा सी
नैनन कजरारी
कानन साँकर ढारैं लटकी
गरै परी गुरिअन की कठिआ
हँसै बरी

गुदनन गुदी देह गुदारी,
जा गड़रिया की मोंड़ी
पैजनियां रूपे की झनन्–झनन् झनकावै।
अधर खुलैं–झुडहल से फूलैं
पलक गिरैं–गेंदियन से खेलैं
प्यारी नोनी
पनछीली
लेत लचकईयाँ
वयस है बारी
जा जानै का करहै दारी
गर्रानी ज्वानी मा,
मुनऊवा,
जा गड़रिया की मोंड़ी।

संझा की बेरा रँगीलो मेला
पबरो ना चाहै जौ भखुआ–सूरज बुढ़रा
जौ सूरज बुढ़रा,
टकटकी लगा कै देखै
खाँस–खाँस कै हूँकै
नठया ढूँकै
बड़ौ ललत्ता
हाथ पसारै, मुँह लाल करै
दर्रावै
पुपल्ना
खपरी कूटै कुढ़िया
लुको–लुको बदरन मा।
मुनऊवा,
जौ सूरज बुढ़रा।

***यह रचना महोबा जिला की बुंदेली में है।**

– रानी की बगिया , छतरपुर ☐

बुन्देलखण्ड में बीजासेन मैया

– श्रीमती ब्रजलता मिश्र

बुन्देलखण्ड के नामी–गिरामी पण्डित बासुदेव गुसाई दतिया बारिन ने बुन्देलखण्ड खों भौंतइ ऊचौ हौदा दऔ है। उन्ने कई है कै छत्रसाल, बिरसिंगदेव, हरदौल मधुकुरसाह उर गुसाईं तुलसीदास की पावन जनमभूम जौइ बुन्देलखण्ड है। तइसें उन्नें नेंचें लिखें अपने जा कबित्त में बुन्देलखण्ड खों 'भारत कौ तुलसीघरा' बताऔ है –

छत्रपति छत्रसाल की मिसाल मिलै किते
दुस्ट–दल–दर्प की दरा है जौ बुन्देलखण्ड।
दानबीर बीरसिंहदेव की तुला–सी भसी
'वासुदेव' न्याय मुखरा है जौ बुन्देलखण्ड।।
धर्मवीर, हरदौल, मधुकुरशाह जू की,
जन्मभूमि पावन धरा है जौ बुन्देलखण्ड।
हुलसी के नन्दन ने चन्दन घिसौ है इतै,
भारत कौ तुलसीघरा है जौ बुन्देलखण्ड।।

हमाए बुन्देलखण्ड में जितेक दई–देउता हैं, धरम–करम की रीतें हें, उतेक कितउँ नइँयाँ। इतै चालीस कोट देउता–धमानन की पूजा करी जात है। सबई लोग–लुगाई इन दई–देउतन पै भरोसौ करत हैं। काउ जनी मान्स पै कौंनउँ विपदा पर जाय, कोंनउँ बीदन आ जाए, चाएँ कोउ बीमारइ हो जाय तौ इतै जौइ मानो जात है कै काउ दई–देउता की पूजा–रचा में कोंनउँ कोर–कसर हो गई। फिर का पूँछियेत। तुरतइँ इतै की जनी–मान्सें आएँ दई–देउतन खों, लोक देउतन खों ध्याबे–मनाबे में लग जाउतीं हैं।

ऐसियइ भारी सिरधा बुन्देलखण्ड की जनियन खों बीजासेन मैया पै है। इतै गाँउँन–गाँउँन में इनकें चौतरा बने हें। चोंतरन पै बीजासेन मैया की मड़िया बनी रउत है। मद्धपिरदेस के इन्दौर, उर साजापुर जैसे सहरन में इनके बड़े–बड़े मन्दिर बने हैं, तिनमें बीजासेन मैया की उमदा मूरतीं हैं।

जौंन के इतै बीजासेन मैया पुजतीं हें, उनके मोंड़न के बियाऔ में, बहू के चड़ाए के संगै बीजासेन की पुतरिया अबसकें पौंचाई जात हैं। पइसा बारे सोने की और गरीब–गुरबा चाँदी की बीजासेन की पुतरिया की (तबिजिया) पौंचाउत हें। चड़ाऔ चडतनइँ में बीजासेन की पुतरिया बियाऔ बारी बहू खों पैरा दई जाउत है। बूड़ी–पुरानी जनी–मान्सन कौ कैबौ है कै जौ पुतरिया बर हमेस पैरने चइये। जौन जनी जौ पुतरिया उतारकें बगस में धर लेउतीं हैं। तौ उनके इतै कछू ना कछू विपदा परइ जात है।

मोंड़न के भय नें, उनकें बियाऔ में बीजासेन मैया कौ पाठौ भरौ जात है। कोऊ, बरसए रोजै उर कोउ तीसरी सालै पाठौ भरतीं हैं। कोऊ कोऊ बोलमाँ करती हैं कै उनकी मंसा पूरी हो जैहै तौ बे बीजासेन कौ पाठौ भर हैं। सो जब उनकी मंसा पूरी हो जात है सो बे खुसी–खुशी बीजासेन कौ पाठौं भर देउतीं हैं।

बीजासेन कौ पाठौ सुम्मवार उर सुक्कुरवार खों भरौ जात हैं। नौ खूँट काड़े जात हैं। नौ सुहागिलें जिबाई खाउतीं है। एक बात जौ है कै धउ के इतै मोंड़ा भऔ होय उर बई को इतै काउ कौ बियाऔ होय तौ एकइ संगै दोहरौ पाठौ भरौ जात है। दोहरे पाठे में नौं की जाँगाँ अठारा खूँट धरे जात हैं उर अठारा सुहागिलें जिबाई जाउतीं हैं। जितै मन्दिर, चौंतरा, मड़िया होउतीं है उतै तौ मन्दिर, चौंतरा, मड़िया पै जाकें पाठौ भरौ जाउत हैं। पाठौ भरें सुहागिलें धरइ में जिबाई जाउतीं हैं।

पाठौ भरबे के लाने लुचई और गुर की लपसी बनाई जाउत हैं। एक गोटी मौरकें बाके नेंक–नेक–से टूँका कर लए जात है। घर की जेठी–बड़ी जनी पूजा वारे मड़ा में चूना सें पुती भीत पै हरदी की नौ पुतरियाँ बनाउती हैं। तिनके नैंचें मौं सें कनिक कौ चौक पूरकें, बापैं पटा धरकें सवा गज कौ लाल पटका बिछाउतीं हैं। पटका पै चार–चार लुचइँयन के नौ खूँट धरे जात हैं, तिनके ऊपरे नेंक–नेंसी लपसी धरी जात है। फिर सबरे खूंटन पै एक–एक नोंकदार पान धरकें, पानन के ऊपरै एक–एक हरदी की गाँठ, सेंगी सिपारी, गरी कौ टूंका, चिरौंजी, दाख, मखानौ, लोंग, लायची, डोंड़ा–जे नौ चीजें धरीं जाउतीं हैं। सबरीं सुहागिलें और घर की बउएँ बिटियाँ अपइँ–अपइँ बीजासेन की पुतरिया, गरे सें उतारकें, धोकें, पुजबे के लाने बइ पटा पै धर देउती हैं।

पूजा की थारी में रोरी, हरदी, अच्छित, फूल, होम, धूप, घी, आरती, ऊदबत्ती धर लेती हैं। तामें की गड़ई में जल भर लेउतीं हैं।

घर की जेठी–बड़ी जनी सबसें पैंले भीत पै बनी बीजासेन की नौ पुतरियन खों माहुर लगाउतीं हैं। फिर लौरी बउएँ सुहागिलन खों माहुर लगाउतीं हैं। घर की जेठी–बड़ी जनी बीजासेन की पुतरियन पै जल चड़ाकें हरदी, रोरी, आच्छित और फूल चड़ाउती हैं। बैसांदुर लियाकें घी और धूप सें होम करती हैं। ऊदबत्ती और आरती मिलकाउतीं हैं। सोने चांदी की तबिजियन की पूजा करती

...नौ खूँटन की पूजा करती हैं। आरती करती हैं फिर जौ लोकगीत सबरीं जनीं मिल–जुरकें गाउतीं हैं –

सुहागिलरानी मोरे महल होकें जइयो।

सुहागिलरानी सेंदुर तौ घरैई धरे हैं,
सुहागिलरानी मांग भराय घरै जइयो।
सुहागिलरानी बूँदा तौ घरैइ धरे हैं,
सुहागिलरानी बूँदा लगाय घरै जइयो।
सुहागिलरानी ....

सुहागिलरानी बीरा तौ घरैइ धरे हैं
सुहागिलरानी बीरा रचाय घरै जइयो।
सुहागिलरानी जोरौ तौ घरैइ धरो है
सुहागिलरानी जोरौ पैर घरै जइयो।
सुहागिलरानी ....

सुहागिलरानी चुरियां तो घरैइ धरीं हैं
सुहागिलरानी चुरियां पैर घरै जइयो
सुहागिलरानी मांदी तौ घरैइ धरी है।
सुहागिलरानी मांदी रचाय घरै जइयो।
सुहागिलरानी ....

सुहागिलरानी माहुर तौ घरैइ धरौ है
सुहागिलरानी माहुर रचाय घरै जइयो
सुहागिलरानी बिछिया तौ घरैइ धरे हैं
सुहागिलरानी बिछिया पैर घरै जइयो।
सुहागिलरानी ....

फिर सबरीं जनीं बड़ी सिरधा सें बीजासेन मैया के मूँड़ धरकें पाँव परतीं हैं। जेठी बड़ी जनी उनखों टीका करके माँग में सेंदुर भरकें, एक–एक बूँदा, दो–दो चुरियाँ और एक–एक खूँट उनें देउतीं हैं। सुहागिलें आँचर कौ छोर पसारकें ओली में खूँट लेउतीं हैं और जेठी बड़ी जनी के और घर में सब बड़िन के पांव परतीं हैं। जेठीं बड़ी जनीं उनें – 'दूदन नहाऔ पूतन फलौ' – कै कें असीरबाद देउतीं हैं। फिर नौ सुहागिलें भोजन करकें अपएँ–अपएँ खूँट लैकें घरै चलीं जाउती हैं। जे खूंट उनके घरबारे और मोंड़ा तौ खा सकत हैं अकेलें कुँवारीं बिटियाँ नइँ खा सकतीं। ना तौ बे पूजा देखती हैं और ना आरती की और दिया की जोत देखती हैं।

बुन्देलखण्ड की एक'–एक जनी–मान्स इन दई–देउतन पै भारी भरोसौ करत हैं। इनइँ सें उनकी सबरीं बोलमाएँ, मनोकामनाएँ पूरन होउतीं हैं। संसकिरित में जौ इस्लोक सबई ने सुनो हुवै कै :–

"मन्त्रे, तीर्थे, द्विजे, देवे, दैवज्ञे, भेषजे, गुरौ।
यादृशी भावना तस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी।।"

जाकौ जौइ मतलब है कै मन्तर, तीरथ, बिराम्हन, देउता, जोतसी, दवाई, और गुरू में जौन की जितेक सिरधा होउत है, तिनखों उतेकइ फल मिलत है। गुसाई तुलसीदासउ ने साँची कइहै कै –

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।।

– केशव–कुल, 352, नानक गंज, सीपरी बाजार, झांसी □

ऐंगर बैठ लेव कछु कानें.......

– डॉ. बहादुर सिंह परमार

लोककवि 'ईसुरी' का नाम सुनते ही हमारे मन मस्तिष्क में उनकी फागों की विभिन्न छवियाँ मंडराने लगती हैं। लेकिन "फाग" शब्द आते ही हमें विभिन्न रंगों से रंगे होली के हुड़दंगों की भी याद नहीं भूलती। जिनमें हंसी, ठिठोली, व्यंग्य, विनोद, उपालंभ की बाढ़ सी आ जाती है। व्यक्ति अपने आपसी बैर भाव को भूलकर आपस में मिलजुलकर आनंदित होता है। इसी अवसर पर गाये जाने वाले गीत फाग या फागें कहलाती हैं अर्थात् फाग वसंत का लोकगीत है और गांव की बासन्ती मानसिकता उसकी आत्मा है। ईसुरी की फागों में जीवन के विविध रंग भरे हुये हैं। चाहे वे सामाजिक संस्कार हों या प्रकृति चित्रण, आध्यात्मिक दर्शन हो या भक्ति, भोगविलास हो या देश–प्रेम, लौकिक प्रेम हो या अलौकिक प्रेम सभी के चित्र चितेरे की तूलिका से चित्रित हुए हैं।

आज प्रगति के युग में जब विज्ञान और भौतिकता अपने पूरे जोर पर है और कविता बौद्धिकता के सहारे नयी–नयी पगडंडियां खोज रही हैं, ऐसे में ईसुरी की पुरानी भावुकता भरी चौकड़ियों का अपना अलग महत्व है। बुन्देलखण्ड के गांव–गांव में ईसुरी की फागों की लोकप्रियता यह सिद्ध करती है कि उनमें कुछ न कुछ तो ऐसा है, जो आज भी उन्हें अमरत्व दे रहा है। आखिर वह कुछ क्या है? इसको समझने के लिये उनके काव्य में निहित विविध भावों को देखना होगा, तभी उनकी फागों की सार्थकता को समझ सकते हैं।

प्रधानतः ईसुरी श्रृंगार के कवि हैं। उन्होंने अपनी प्रेमाभिव्यक्ति का केन्द्र "रजऊ" को बनाया है। उनकी यह देहधारी प्रेमिका उनकी लौकिक प्रेमिका है या उनकी पत्नी राजा बेटी ही है. या अलौकिक कल्पित प्रेमिका का प्रतीक। ईसुरी "प्रेम के मांसल", सौन्दर्य पर आसक्त थे। इससे स्पष्ट होता है कि उनके मन में "प्रेम" का बीजारोपण किसी सुन्दर देह ने ही किया था। वे रजऊ के अंग–अंग की आभा का वर्णन करते हुए कहते हैं –

"नग–नग बने रजऊ के नोंने, ऐसे कीके होने।
गाल–नाक औ भोंय चिबुक लग, अंखियां करती टोने।।
ग्रीवा, जुबन, पेट कर जांगें, सब ही बहुत सलोने।
ईसुरी दूजी रची न विधना, छानौ त्रिभुवन कोने।।"

कवि नायिका के सौन्दर्य वर्णन पर इतना अधिक रीझा हुआ है, कि उसकी वाणी भी मौन होती हुई दिखाई देती है। यथा–

"हम पै एक मुख जात न बरनी, रजऊ तुमाई करनी।
जां ठांडी हो जातीं जाके, दिपत लगत बा धरनी।।"

प्रेम मे नेत्रों का विशेष महत्व होता है, क्योंकि सारा कार्य व्यापार इन्हीं के द्वारा होता है। ईसुरी ने इन्हीं नेत्रों के लिए विभिन्न उपमानों का प्रयोग किया है –

"अंखियां पिस्तौले सी भरकें, मारत जात समर कें।
"ऐसे अलबेली के नैंना, मुख से कात बनैना।"

किन्तु न जाने कैसा आनन्द है इस घायल होने में भी जो प्रेमी बार–बार नैन वाणी से बेधे जाने के बाद भी प्रिय की उसी मुस्कान और नैन–वाणों की मनुहार करता है–

"हमखां बिसरत नहीं बिसारी, हेरन हँसन तुम्हारी।
ईसुर कात हमारी कोदाँ, तनक हेर लेव प्यारी।।"

प्रेमी जब अपनी प्रिया को किसी और से बातें करता देख लेता है तब उसकी पीड़ा उसी के शब्दों में –

"हमसें काए छरकतीं रातीं, औरन सों बतयाती।
हम तो कएँ प्रेम की बातें, अपन जहर सौ खाती।।"

जब यह प्रेम अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है, तो वह समाज की हर दीवाल तोड डालना चाहता है –

"करलो प्रीत खुलासा गोरी, जा मंसा है मोरी।
ऐसी करलो ठोक तारियाँ, फिर ना टूटै डोरी।।

विरह में ही प्रेम की वास्तविकता प्रकट होती है। इसलिए कहा जाता है कि सच्चा प्रेम ही विभिन्न ठोकरों को सहन कर पाता है क्षणिक प्रेम जो सिर्फ रूप लावण्य के कारण होता हैं वह एक ठोकर खाकर ही समय के प्रवाह में बह जाता है। ईसुरी कहते हैं –

"जब से रजऊ से नैन लगाये, बड़े कसाले खाये।"

कवि इन सभी झंझटों की जड नेत्रों को ही मानते हैं। आंखें जब किसी से लग जाती है, तो क्या स्थिति होती हैं इन्हीं की नजर में –

"अंखियां जब काऊ से लगतीं, सब–सब रातन जगतीं।
बिन देखे से दरद दिमानी, पके खता सी दगतीं।।

विरह में मन इतना अधिक छटपटाता है कि प्रेमी सोचता है कि इस स्थिति से अच्छा है कि मर जाऊँ। इसी कसक का एक चित्र देखिये –

"हमखाँ रजऊ की बिछरन व्यापी, कडत नहीं जी पापी।"

इस प्रकार देखते हैं कि ईसुरी ने प्रेम की प्रायः ...नी अनुभूतियों का चित्रण बड़े ही सहज और स्वाभाविक ...प में किया है जो अपने आप में अद्वितीय है।

ईसुरी का समूचा फाग साहित्य एक नयनाभिराम ...नमोहक चित्र है जिसमें सहज रूप से लोकरुचि के ...नुरूप विविध रंग उभरे हैं। यह ऐसा चित्र है, जिसका ...हिरंग और अंतरंग लोक संस्कृति से अनुरंजित है। ...सुरी के काव्य में सामाजिक सम्बन्धों का विशद चित्रण ...। बुन्देलखण्ड में बाल विवाह की प्रथा खूब रही है। ...छ जातियों में तो विवाह सम्बन्ध पुत्र–पुत्रियों के जन्म ...पूर्व ही तय हो जाते हैं। जिसका उल्लेख ईसुरी ने भी ...पने फागों में किया है। यहां पर एक वधू अपने पति के ...रे में अपनी सखी से कहती है –

"का सुख भओ सासरे मइयां, हमें गये को गुइयां।
परबू करे दूध पीबै कों, सास के संगे सइयां।।
दिन भर बनी रात संकीरन, चढ़ै ससुर की कैया।
भरभर दैबे करै ईसुरी देखत हमें तरइयां।।

बुन्देली नायिकाओं में गुदना गुदवाने की परम्परा ...। गुदना गुदवाने का उल्लेख करते हुए ईसुरी कहते ...–

"गुदना लगत गाल पै प्यारौ, हमखाँ रजऊ तुमारौ।"

...न्म विवाह और मृत्यु जीवन के शाश्वत परिवर्तन हैं और ...न संस्कारों का वर्णन भी ईसुरी के काव्य में मिलता है।

"इक दिन होत सबई की गौनों, होनौ और अनहोनौ।
जाने परत सासरे सांसऊँ, बुरऔ लगै चाय नौनों।

...वी–देवता, पीर–पैगम्बर, टोना–टोटका, झाड़–फूंक आदि ...र विश्वास बुन्देलखण्ड में बहुत अधिक प्रचलित है। ...जर लग जाने पर गुनियां–तांत्रिक अपनी तंत्र–मंत्र ...द्या से नजर को उतारते हैं। राई, नौंन उतारने की भी ...था है। इसी का उल्लेख करते हुए ईसुरी कहते हैं –

"नौनें नई नजर के मारें, राती रजऊ हमारें,
विधना–उदना अलफ बचावै, जिदना पटियां पारे।
ईसुर रोजऊ रजऊ के ऊपर, राई नौन उतारैं।।"

इसके अतिरिक्त भाग्य और कर्म पर विश्वास भी ...सुरी की फागों में व्यक्त हुए हैं। सामाजिक बुराईयों पर ...ष्टिपात, बौद्धिक उन्नति का परिचायक है। इस प्रकार ...की फागें नीति पूर्ण और शिक्षाप्रद है।

"गांजों पियो न प्रीतम प्यारे, जर में कमल तुमारे।
जारत काम बिगारत सूरत, सूखत रक्तिन मारे।।"

ईसुरी मानवतावादी दृष्टिकोण के पोषक थे। प्रत्येक ...नुष्य के सुख–दुःख से वे प्रभावित होते थे। इन्हें इस बात से अत्यन्त दुःख होता था कि व्यक्ति परस्पर लड़ाई झगड़ा करते हैं इस आपसी संघर्ष को निपटाने के लिए उनकी यह पंक्ति सूत्र रूप में आज भी लाभदायक सिद्ध हो रही है।

"तन–तन दोऊ जने गम खाँयें, करो फैसला चाये।"

ईसुरी अपनी मातृभूमि के अनन्य भक्त थे, जिससे समक्ष धर्म ग्रन्थों में वार्णित गंगा की पवित्रता भी तुच्छ है। ईसुरी की इच्छा थी कि वे चाहे गंगा तट पर ही मृत्यु को प्राप्त हों, परन्तु उनका अंतिम संस्कार अपनी कर्म भूमि बघौरा में ही हो। इसलिए उन्होंने स्पष्ट कहा है।

"यारो इतनो जस लै लीजो, चिता अन्त न दीजो।
गंगा जू लौ मरै ईसुरी, दाग बगौरा दीजौ।।"

ईसुरी ने केवल जीवन के आदर्श का ही नहीं, यथार्थ का भी चित्रण किया है। ऋतुओं का परिवर्तन जहां समृद्ध–जनों में मस्ती और उल्लास भर देता है, वहीं निर्धनों को प्रतिपल जीवन निर्वाह की चिन्ता में जलाता रहता है।

"फांके परत दिना दो–दो के, परचत नईयां चूले।
मरे जात भूकन के मारे, अंदरा कनवा लूले।।"

बुन्देलखण्ड की अधिकांश भूमि पथरीली है, कृषि योग्य कम है इसलिए यहां का किसान और श्रमिक प्रायः महुआ, बेर, अचार आदि पर गुजारा करता है। जो छोटी–मोटी खेती बाड़ी होती है, वह भी किसी साल प्रकृति का कोपभाजन बन जाती है। ईसुरी ने लोक जीवन की इस कठिन पीड़ा का बड़ा ही मार्मिक और संवेदन शील चित्रण किया है

"आंसों दे गओ साल करोंटा, करौ खीब सब खौंटा।
कहत ईसुरी बांदे रइओ, जबर गांठ को घौंटा।।"

कवि इस संकट के समय भी जनता से साहस बनाये रखने की अपील करता है। महुआ बुन्देलखण्ड का मेवा है। उसकी उपयोगिता और विनाश को देखते हुए वे कहते हैं –

इनपे लगे कुलरियां घालन, महुआ मानुस पालन।
इनें काटबो ना चाइयत तो, काट देत जा कालन।।"

ईसुरी को ईश्वर के प्रति अटूट विश्वास था। वे राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, एवं गंगा में अखण्ड विश्वास रखते हैं। मानस की प्रशंसा से ओत–प्रोत फाग दृष्टव्य है –

"रामें लये रागनी जीकी, लगै सुनत में नीकी।
ईसुर सांसऊ सरग नसेनी, रामायन तुलसी की।।"

लोक मन की यह मान्यता है कि ईश्वर जिसकी रक्षा करता है उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता है।

''जाके रामचन्द्र रखवारे, कौ कर सकत दगा रे।''

बुन्देलखण्ड का लोकमन किसी एक ईश्वर की आराधना नहीं करता जहां तक राम की आराधना करता है वहीं कृष्ण को भी अपनी सहायता के लिए पुकारता है। उसका विश्वास है कि ईश्वर घट–घटवासी है, दीन ह्रदय की पुकार वह अवश्य सुनता है। ईसुरी ने भी अपनी फाग में यही कहा है।

''जिनखाँ दीन द्रोपदी रोई, सुने कृष्ण जां होई।
ईसुर बचा लाज लई उनने, वे चाहें सो होई।।''

इस क्षणभंगुर संसार को नश्वर माना गया है और यही ईसुरी भी कहते हैं –

''बखरी रैयत है भारे की, दई पिया प्यारे की।''

और धर्म ही एक मात्र ऐसा साधन है जो इस क्षण भंगुर संसार से मुक्ति दिला सकता है।

''दीपक दया धरम को जारौ, सदा रात उजयारौ।
धरम करे बिन करम खुलै ना, बिना कुची ज्यों तारौ।।''

समग्रतः हम देखते हैं कि बुन्देलखण्ड के ''जयदेव'' ईसुरी ने न केवल प्रेम को अपनी फागों में स्वर दिया बल्कि श्रृंगार, नीति, शक्ति, ज्ञान, वैराग्य प्रकृति, समाज आदि विविध विषयों पर भी फागें लिखी। इस ''आशु'' कवि की प्रतिभा बेजोड़ थी। जिसके सामने कोई भी विषय गिरि नहीं बन सका। ईसुरी की फागें बुन्देली जन–मानस के लोकरंजन और मौज मस्ती करने में पूर्णतः सक्षम हैं बुन्देलखण्ड में होली के अवसर पर ढोलक की ठमक, झांझ की झमक एवं नगडिया की ठनक के साथ जब अपनी फागें गायी जाती हैं तब मलिन चेहरा भी प्रफुल्लित होकर आनंद सागर में गोते लगाने लगता है। इसलिए ईसुरी की फागें बुन्देली कण्ठ की पर्याय बन गयी हैं। ईसुरी की फागों में ईसुरी का ही ह्रदय तरंगायित नहीं हुआ है बल्कि एक सच्चे और भोले भाले बुन्देलवासी की भावनायें मुखरित हुई हैं। ईसुरी ने जिस किसी भी विषय की उठाया है अपनी प्रतिभा की छाप अवश्य छोड़ी है। पाठक चाहे सुनें या न सुनें, पर ईसुरी तो आज भी पुकार रहा है –

''ऐंगर बैठ लेव कछु कानें, काम जनम भर रानें।
बिना काम कौ कोउ नइया, कामें सबहाँ जाने।
करियो काम घरी रैं कैं, बिगर कछु नइ जानें।
ई धंधे के बीच ईसुरी, करत–करत कर जानें।।''

–4/2, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर ☐

लघुकथा :

क्याऊं ऐसो न भओ तौ?

– वीरेन्द्र शर्मा ''कौशिक''

महाभारत युद्ध के नौ दिना भीषण लड़ाई होत कड़ गये ते। पच्छिम को सूरज नैचें उतरत आउत तो। तबई दुरजोधन को चण्डाल–चौकड़ी युद्धबन्दी के नगारे सुन सेनापति भीष्म पितामह के तम्बू तांय जा पौंची। ऊ बखत् महाबली भीष्म अपने अस्त्र–शस्त्र देह से उतारत जात ते। दुरजोधन ने पौंचतनई उनपै आरोपन की झड़ी सी लगा दई कै अपन पाण्डवों की ताँय से लरत जैसे लगत, नई तौ का बजय आये कै अबें तक एकऊ पाण्डव–भाई मौत के घाट नई उतारो गओ जब कै मोरे तौ कैऊ भैया मारे गए। येई तरां की कटुतम बातें दुरजोधन के संगे आये दुःशासन, कर्ण, शकुनी, आदि सबई कैन लगे। इन सब जनन के ये झूठे उलाहने सुन भीष्म जी अति क्रोध भरे स्वर में बाँह उठा प्रतिज्ञा कर बैठे – ''काल ऐसो भीषण युद्ध करहों कै जा माटी (पृथ्वी) पाण्डव रहित हुइ जैहे।'' तबई शकुनी बोल उठो। – ''पितामह! क्याऊँ ऐसो न भओ तौ?''

''अरे दुष्टो! भगौ तौ इते सें। ईको जुआब तौ तुमें काल की लराई में मिल जैहे या फिर जो भगवान खों मंजूर हुइये सो ऊ हुये। भगवान ई दै ई बड़बोलपन कौ जुआब तुम सबन खों। जाव, हटो तौ इते सें।'' भीष्म पितामह जू कौ क्रोध और आवेश भरो रुख देख वा चण्डाल चौकड़ी तौ तुरतई उतरौ सौ मों लंए चली गई। पितामह अपने काम–संध्याबंदन आदि में लगे। अबै उनें सध्यावंदन करत तनकई देर भई ती कै तम्बू में द्रोपदी सीधी घुसत चली आई और आंखे मूदें ध्यानमग्न बैठे पितामह के चरणन में साष्टांगन हो अपनौ सिर धर दऔ।

''सौभाग्यवती भव'' शब्द सुन द्रोपदी ने उनके गोड़े पकड कई – ''कैसें? पितामह?''

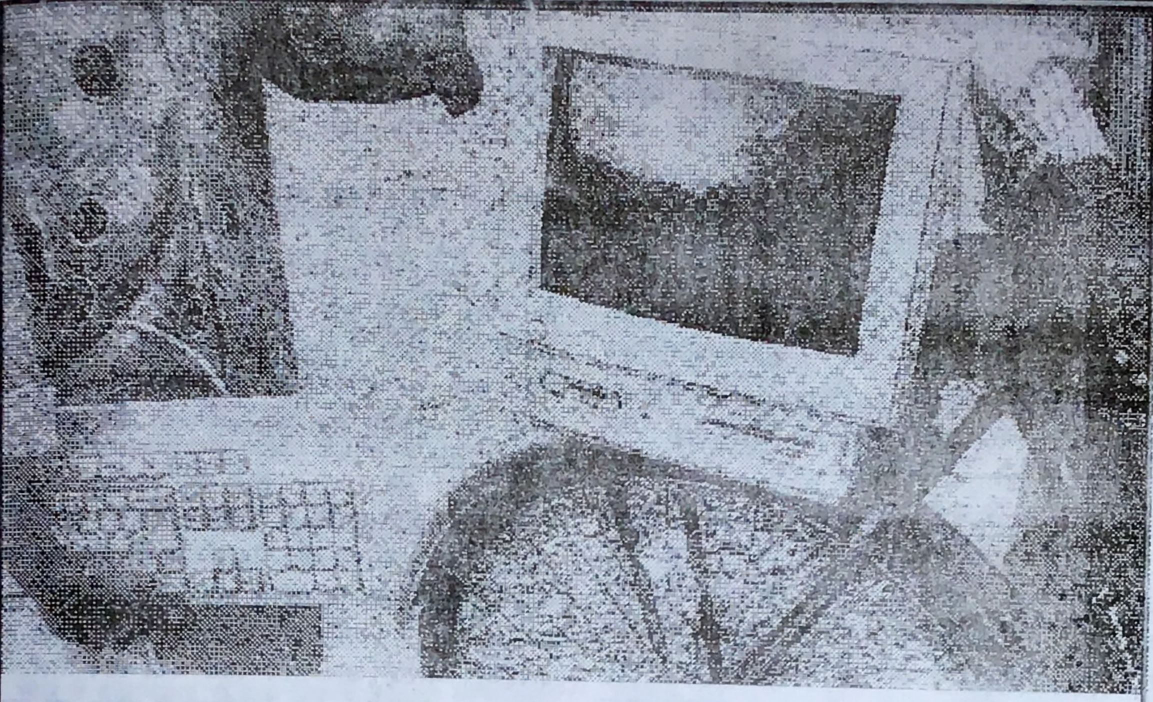
''जैसे भगवान (कन्हैया) तुम्हें बतायें। काँ है वे?''

तबई कृष्ण द्वारे सें भीतर आ गए। पितामह की वंदनाकर एक ओर खड़े हो मुस्कुरान लगे। पितामह उनें (कृष्ण) देख बोल उठे –

''भगवन्! जा तुमाई माया तो तबई मोरे हिये में हिलोर सी मचा गई ती जब शकुनि के जे बोल यकायक फूट निकरे ते –

''पितामह! क्याऊँ ऐसो न भओ तौ?'' ☐

–स्मृति, 143, कुरेंचा नाका, मऊरानीपुर



हमने मोड़ा है इनफरमेशन हाईवे का रुख
अपने गांव की तरफ

कोई ज़रूरी तो नहीं कि कम्प्यूटरों का इस्तेमाल सिर्फ उद्योग-धंधों या व्यापार में ही हो।

हमने कम्प्यूटरों का रुख मोड़ा है अपने गाँव की तरफ —— जहाँ हम रहते हैं।

इसकी कामयाब शुरूआत हुई धार जिले से ज्ञानदूत योजना के जरिए। यहां अब हर गांव के नुक्कड़-चौराहे पर कम्प्यूटर केंद्र हैं जिन्हें हम सूचनालय कहते हैं। इन सूचनालयों में मिलती है हर तरह की जानकारी - सरकार और सरकारी काम-काज के बारे में। इन कम्प्यूटरों से हम गांव में ही बैठकर कहीं भी अपनी दरख्वास्तें लगा सकते हैं और उनके जवाब भी पा सकते हैं। अलावा इसके, दुनियाभर की जानकारी के लिए हर केंद्र पर इंटरनेट तो मौजूद है ही।

हमारे गांवों के नक्शों और खसरा-खतौनी का हिसाब भी जल्द ही मिलने लगेगा। इन कम्प्यूटरों पर हर गांव के जंगल, नदी, तालाब, खेत सबकी जानकारी अब बस उंगलियों के पोरों पर।

और अब हम शुरू कर रहे हैं- ई-गवरनेंस। जल्दी ही पूरे प्रदेश में 7800 आई.टी. कियॉस्क लग रहे हैं प्राइवेट सेक्टर के सहयोग से। इस मामले में भी हमारा नंबर पहला है पूरे देश में।

मध्यप्रदेश मे साढ़े सात हजार जनशिक्षा केंद्र चुने गये हैं—— प्राइमरी और मिडिल स्कूलों में कम्प्यूटर शिक्षा के लिए।

कम्प्यूटर के जरिये कॉलेज की पढ़ाई के लिए हमने खोली है एक यूनिवर्सिटी जिसमें आप घर बैठे दाखिला ले सकते हैं।

हमने शुरू किया है हिंदी में सॉफ्टवेयर बनाना। हमारा उत्कृष्टता केंद्र ईजाद करता है बेहतरीन तकनीकें—— कम्प्यूटर को आम लोगों से जोड़ने की।

मध्यप्रदेश, पूरे देश में पहला राज्य है इनफरमेशन हाइवे का रुख गांव-देहात की तरफ मोड़ने वाला। क्योंकि हमारे लिए कम्प्यूटर और इंटरनेट का मतलब है- आम आदमी की ताकत और हिस्सेदारी बढ़ाना प्रदेश को आगे बढ़ाने में।

तरक्की के हाइवे पर सबसे .... आगे

अ प ना म ध्य प्र दे श

बुन्देली कहानी :

सूरज की नई किरन

– रमेश शंकर सक्सेना

कि भई देखो। एक तो होत् कान की सुनी, और एक होत् आँखन देखी। और.....और..... एक होत् बातन् मीठी। जो कई जात् और सुनी जात्।

तो भईया। आज हम अपुन खों एक ऐसी कहानी सुना रये जो न आँखन देखी और न कानन् सुनी फिर बातन मीठी कौ तौ बवालई नईया। वरन् एक हकीकत। सचाई। साँची–साँची। सो–साँची कनै और खुश रनै। सुचित सें धियान लगा कें सुनो।

कथरी में गुड़ी–मुड़ी परे बिशना की आँख खुली तो– "जै–जै किशन कन्हाई लाज रखो शारदा माई" कत् भये उठ बैठो। एक ऐड़ाई लई सो देह की पोर–पोर चड़–चड़ा उठी। कुठरिया सें बायरें निकर कें देखो, आसमान में हिरना डूबत जा रये ते, और काँसे कैसी टाठी चन्दा सोऊ सोऊ कछु ढुरक परो तो। बिशना ने अंदाज लगा लओ – भोर होवे में तनकई कसर है। जल्दी जल्दी फतुंई पैर, पाँव में पनईयाँ विदे, पोंर के किवार उड़काउत् बायरें निकर परो। दखिन पवन की सुरसुरी सें कछु जाड़ो सौ लगो सो अंगोछा सें कान् बाँद लये। बीड़ी सुलगा कें सुस्ती तोड़न भये वो कदम ताल सें बस्ती के बायरें चलो जा रओ तो, कै वाकों एक चक्कर आ गओ।

बिशना मूँड़ पकर के बैठ गओ। दर्द के मारें कपार फटो जात् तो, जैसें माथे में कोऊ कील ठोंक रओ होय –ठुक–ठुक–ठक्–ठक्। छाती सोउ धक–धक करन लगी ती। पेट में अगन् लगी ती – जैसें कोऊ ने भटिया परचा दई होय। रात कें वो कछु जियादा पी गओ तो – एक संगै दो बोतल। खाबो–पीबो तो रोजअई कौ आय, पै ससुरी काल की दारू कछु जियादां तेज ती। हॉत् की उतारी; कड़क नम्बर एक। ऐसी चोखी कै उगरियाँ बोर कें आग लगाओ तो भक्क सें जर उठै। इतनी तेज और असरदार दारू पीतनई गरो और आँतें बुरअई तराँ सें जरन लगीं तीं। नशा हिरना कैसी चौकड़ी भरकें दम्म् सें चढ़न लगो तो। खाली पेट दारू पीवो कछु आसान नई होत्। करेजो जरन लगत्। अकेलें छुच्छें दारू चढ़त सोऊ खूब है। 'चखना' होंय चईये, दारू के संगै। पै काल चखना नई मिल पाओ तो। जो कऊँ चखना हो तो तौ मजा आ जातो।

बिशना कौ जी कछु हलकुवानो सो उठकें निंग परो। खेतन में सरसों पक गई ती, और कटवे की हो गई ती। खेत की मेंड़ पै पोंचत्–पोंचत् सूरज की किरन निकर आई। मिड़ोरिया किसान अपने–अपने काम में लग गये ते। बिशना ने अबै तनकई काट पाओ तो, कै ठाकुर गंगासिंह आ गये। गुर्रा कें बोले – "बिशना! खेत तब काटियो जब हिसाब चुकता हो जाये। नई तो ठीक न रैय।" सुनें बिशना के करेजे में एक हूक सी उठी। रात की दारू की जो मथना और शरीर में झुन–झुनी सी हती, सो रफू चकर हो गई। बाने एक बीड़ी सुलगा कें गंगासिंह सौ दई। एक बीड़ी लैकें खुदअई सट्टा लगाऊन लगो और नैची मुड़ी करें सोचन लगो।

सात आठ साल सें भगवान करोंटा लयें। और दो साल सें तो सूखा पर रई, और की तो को कये भर बसकारें के मईनन् में पानी नई बरसो आदे सावन सें पानी गओ सो गओ। दिन में घामों, रात तरईयाँ। ईश्वर जाने का है करईयाँ। चारऊँ ओर हाय–हाय मची ती। तिली, उरदा और धान तो सूखई गये ते, खेतन में ढोरन खों चारो लौ नई बचो तो। साउन से एक दिन खों भी बदरई नई भई। धरती माता की छाती फट गई ती। जब कछु पजो अई नई?" तो फिर बिशना हिसाब कैसें चुकता करतो?

आठऐंक सालें हो गई, बिटिया के व्याव खों। पूरे दो हजार रुपईया करजा लये ते बिशना ने। बदले में अपनी दो बीघा जमीन सुदभरना में लिख दई ती। तब सें फसल ठाकुरन कें जा रई ती। पै जाने कैसो लेखो तो, कै न रूपईया चुक पा रये ते, और न विशना खों खेत मिल पा रओ तो। हाथी से बड़े–बड़े बैलन की जोड़ी, गियावन भैंस और घरवारी के नाक की पुंगरिया चुकाउरे में चली गई ती, सो नियारी। सूखा पर गो–सो सरकार ने राहत–कार्य खुलवा देये ते। पै वे दिन बड़ी विपत् के दिन ते। दारू पिये बिना चलतई न तो। घर में थोरो–भौत हतो सो कलारी जान लगो और दो दो दिन तक विशना कौ चूल्हो नई सिलगत् तो।

सरपंच की मेहरवानी सें राहत कार्य में बन रये गोला पै बिशना की घरवारी और मोंड़ा खों काम मिल गओ। दिन भर डलियाँ भर–भरकें माटी डारवे में मताई–बेटा की पसुरियाँ दूनर हो जातती। दिन डूबें काम सें लौट, रोटी बनाकें जो खाई तो जी जहाँन की कोनऊँ सुरत नई रत ती। मताई–बेटा की मेहनत् सें कुठरिया के बायरें धुआ तो निकरन लगो तो। पै बिशना सो पूरो आँख कौ अंधौ हतो। बाके खून में दारू अभिशाप बनकें बैठ गई ती। हार खेत में काम नई, में–नत् मजूरी करने नई और खावे खों मिलअई जावै। सो–दिन भर ठलुवा रने और कलारी में बैठ

दारू पी कें उल्ले–झल्लें मसक्ने। रात के झूमत–झामत घरै आउने। जो कऊँ मताई–बेटा रोकें, सो लरवे खों चांडे। और ऐसी रंथभोंर मचायें कै गलियारे पटा डारे। पुरा भर जान जाये, कै बिशना घरै आय आ गओ, और मिहिरिया सें आ बत् बड़याव कर रओ। खैर...... ।

गंगासिंह खों विशना ने विश्वास दओ – ''मालिक दगाबाजी न करहों पूरी फसल अपुनी वखरी पोंचैं। फिकर न करो। आश्वस्त होंकें गंगासिंह चले गये। विशन सोच में पर गओ। दुफर लौटे लो विशना ने सरसोंवा की कटाई करी और गाँव खों लौट परो। पै कानात् है – कै ''लपकी गाय–गुलेंदे खाय, बेर–बेर मऊआ तरें जाय।'' सो भईया, वौ घरै न जाकें कलारी पोंच गओ। विशना खों आऊत देख कें भोलू ने कुल्लड़ की बची दारू गुटक कें कई – कक्का। राम–राम।'' पै कक्का चुप्प। भोलू खों अचम्भो हो रओ तो कै आज विशना बोल काये नई रओ। का कौनऊँ सें लराई टंटों हो गओ औ कै कोनऊँ और बात हो गई। नई तो बिशना चुप्प् रहवे वारो नईयाँ।

भोलू ने दुकानदार सें एक अद्दी दारू लें कें बिशना खों पियाई। बिशना ने पानी की तरां दारू एकई घूंट में पी लई। अब बिशना ने एक अद्दी और लै कें अकेलें पी लई। जब दारू कछु चढ़न लगी सो भोलू ने फिर उसकेरो – कक्का! आज बोलती काये बंद है? इक दम्मै चुप्प् हो। अरे। कछु बोल हो, तबई जान हैं, कै अनबोले कौ कौल कर आये।''

अरे! का बतायें ससुरवा के? वौ गंगासिंह खेत पै पोंच गओ तो, बोलो बिशना! खेत तब काटियो, जब हिसाब चुकता कर देव।'' और जो हिसाब नई करो तौ?...खेत–– हा –ऽ हा –ऽ आ –ऽ हा –ऽ।'' अट्ठहास करकें बिशना इतनी जोर सें हँसों कै कलारी के सब पियक्कड़ दंदक गयें। और बिशना कोद रखन लगे। भोलू झेंप गओ बोलो – ''कक्का! जे बातें इतै नई करो। कोऊ सुनै तो का कैय?''

का कैय? बोल! का कैय? अरे। अब वौ जमानो नईयां, जब अमीर हम गरीबन पै जुलम करत् ते। अब नओ जमानो है। सरकार हमाये संग है। कानून हमाये संग अब हमाओ कोऊ का बिगारै? सरकार ने पैलई सबके करजा माफ करवे की मुनादी करा दई, अब कोऊ काऊ कौ बंदुआ नईयां। चार साल सें खेत की पज खा रये और बैल, भैंस सब गुड़गप्पू हो गये। तोऊ हिसाब–हा–हा–हा। लै लेवें हमाओ....... ।''

दारू बिशना के देह पे पोर–पोर में चढ़ गई ती। जुवान कैंची की तरां चलन लगी ती। फिर आज तो वौ जियादा गुस्सानो हतो, सो चिल्ला–चिल्ला कें गंगासिंह ठाकुर खों गारी देन लगो। बैसें भी बिशना खों नशा भौत जल्दी चढ़त। दो घूंट गरे सें नैचें उतरी, फिर का कनै? अपने आप खों जार्ज पंचम जानन् लगत। का मजाल, कै कोऊ ई टैम बिशना सें बत–बड़याव कर लेय। चुपअई रै वे में सार है। नई तो सात पैरी की चार लटीं सुन लेव।

एक बोतल और लै कें बिशना झूमत–झामत् रात में घर पोचो। घरवारी चूल्हे पै रोटी सेंक रई ती और बेटू रोटी खा रओ तो। मंद–मंद उजयारो करत डिवरी (चिमटी) जल रई ती। बोलो – ''बलब काये नई जराओ? तैने फिर डिवरी जराई''

''बलब फूट गओ!''

''कैसें फूट गओ? दूसरो लियाउती। अरे, सरकार ने एक बत्ती कनैक्शन दै कें मुफ्त में बिजली कौ उजियारो करो। और...... और तें करम अभागी।''

''बापू! कितनी बेर कई कै दारू नई पियें गये, अपनो सब अई कछु तो मिट् गओ और तुम दारू पिये बिना मानत नईयां।'' बेटू ने बीच अई में टोंको। बिशना गिर परो, बोलो – ''खूब पीने। ..... पीने और पीने। तें हमें रोकवे वारो को होत्। ससुरे ने रात मदरसा में दो आखर का सीख लये, कै बिलकुल पंडत बन गओ। काल कौ टोंका हमें सिक्छा देत्। दारू नई पियें गये।'' ''कित्ती बेर गई कै बेटू से न बोलें गये। एक तो दारू पी कें आऊत और फिर गंगात् हो। उल्टी–सीदी बातें करत्। अरे–तनकऊ लाज नई आउत'' घरवारी ने फटकारो। पै बिशना खों तो आज दारू बिच्छू के डंक की नाई ऐड़ी से लें के कपार लों चढ़ी ती। सो वौ इकदम्म चिल्ला परो। ''छिनार जू! जौ सादुअन कैसो गियान्–धियान् मोय न सिखा। अब जियादा न क्वाओ! नई तो फिर हाँ..... आ......। समझ लो।''

''देखो। मोय गारी न दिईयो। नई तो फिर ठीक न हुईयै।''

''ठीक न हुईये। का.. कई ठीक न हुईये? कैसो– ठीक न हुईये, बोल–बोल'' बिशना बीचअई में चिल्ला परो।

''मैं खूब पी हो। पी हो। और देख तोरे सामने पी हो। देखे, देख जा दारू की बोतल और......'' कत् भये विशना ने फैंटा में खुरसी बोतल निकारी और पियन लगो।

चून भरे संकरे हांतन् घरवारी ने सपाटे सें बोतल छुड़ा दीवार पै मार दई। बोतल फूट गई और काँच की किरचें कुठरिया भरे में फैल गई। दारू के भभका से कुठरिया गंधा गई। बोतल के फूटतन बिशना को गुस्सा आसमान पै चढ़ गओ। वौ चिल्ला परो – ''जो का करो तैने। हरामजादी? मोरी दारू छुड़ावै वारो तो ई घरती पै पैदअई नई भओ? तै का दारू छुड़ाये। तैने मोरी दारू छुड़ाकें बोतल फोर ड़ारी। अब ई कौ मजा चिखाऊत।'' चिल्ला–चिल्ला के कत् भयें विशना कुठरिया कें बायरे दुगई में खुसो लट्ठ निकार लियाव, और आव देखो न ताव

घरवारी खों मारन लगो।

घरवारी चिल्ला–चिल्ला कें रोउन लगी। बेटू अपनी मताई खों बचाउन लगो दारू के नशा में बिशना खों कोनऊ होस नई रओ और पगलया (सिर्रया) सो गओ। बीच–बचाव करवे में बिशना कौ एक लट्ठ ऐसो लगो, कै बेटू की खपरिया खुल गई। खून के फब्बारे छूट गय। नन्हीं सी जान, एक चीख दें कें बेटू जमीन पै गिर परो और बेहोश हो गओ। खून की धार लग गई। खून देख विशना कौ नशा हवा हो गऔ। उन्ना (कपड़ा) जरा कें बेटू की मूड़ में भरकें जब बिशना ऐंगर गओ तो बेटू के हांत्–पांव ठंडे हो गये ते। घरवारी दहाड़ मार कें रोऊन लगी। छक्के छूट गये विशन के ओर वौ चिल्ला–चिल्ला कें कन् लगो'' बेटू ! अरे! बेटा बेटू। उठो आज सें हम दारू नई पियें। अरे– बेटू – ऽ – रे – ऽ। उठो।'' बिशना की आवाज कुठरिया में गूँज रई ती, और जब पुरा–परोस के जनी–मान्सन ने असलियत् समजी, सोजुर आये, देवकिया तुरतंई डाक्टर के लिवावे भगत् गओ। उनने इन्जैक्शन लगाये, बोतल चढ़ाई और घाव की मरहम पट्टी करी। दम सादै सब देख रये ते और बिशना खौ उँगरया रये ते। खुस–फुस हो रई ती। विशना झार–झार अंसुवा बुआ रओ तो। रात–भर डाक्टर बैठो रओ और सबअई पुरा वाले के लोग–लुगाई भोंर के पालें लो जुरे रये।

भोर के पारें डाक्टर ने बेटू की नारी देखी और बाकी आँखन में चमक लौट आई। बेटू खतरे सें बाहर हो गओ तो, अब होंस आऊन लगो तो। आसमान में भोर की नई किरन् निकर आई ती और जो विशन के भों पै कारिख सी पुती ती सो अब नये विसवास, नई आशा और परतग्या सें रौनक लौट परी ती। मानो सूरज की किरन् नें सबखों संदेशो दओ होय – दारू न पीवे को, नशा न करवे कौ।

तो भई देखो। दारू के नशा ने अच्छे–अच्छे घर बरबाद कर दये और जो कजनत् डाक्टर न आउतो और ईश्वर किरपा न करते तो बिशना के घर में तो हमेशा हमेशा खों अँदयारो हो गओ तो। सो जा सांची बात हमारी मानियो और दारू खों आपनो दुश्मन जानियो।

– अध्यापक, बल्देवगढ़, टीकमगढ़ □

गरीब बुन्देलखण्डी की संकरात

– हरिमोहन सरावगी 'हरि'

बहुत दूर लमटेरा कैसो सुनात है,
आज संकरात है, कल भर–भरांत है।
छूंछी करइया है, रीती परांत है,
आज संकरात हैं, कल भर–भरांत है।।
मेला देखबे खों हमें कितऊँ नही जाने,
मुफ्तई में धक्का औ मुक्का ही खाने
उन्नन को टोटो है, हवा सर–सरात है।
आज संकरात हैं, कल भर–भरांत है।।
कनक, तिली, फूला, ठुरू, औलाई,
मैदा, मूंग, मगद, और बेसन, मलाई
सपने में लडुअन की देखी बरात है
आज संकरात हैं, कल भर–भरांत है।।
रधियां संग नदिया पै जाने
तिली को उपटनों कर खिचरी भी खाने
चिल्ला को जाड़ो परो, सवरो आंग थरथरात है,
आज संकरात है काल भरभरांत है।।
पुआ, पुरी, पपरियाँ, बने हैं ठडूला,
गूजा, गुजिया, खुरमा, सेव, बने हैं टिडूला
हमें नई खाने ऊसई पेट खलबलात है
आज संकरात हैं, कल भर–भरांत है।।
चर्बी युक्त डालचन्द तेल बहुत मांगो है,
सोयाबीन, पामोलीन, रेपसीड, त्यागो है,
पानी की करइया में फरा फर–फरात है
आज संकरात हैं, कल भर–भरांत है।।
हरिया खौं रधिया इशारो कछु कर गई
आंखन ही आंखन में जानें का कै गई
प्रेम मगन होंके दोऊ डूबत उतरात है
आज संकरात हैं, कल भर–भरांत है।।
अपनी गरीबी पे हरिया मुस्करात है,
आज संकरात हैं, कल भर–भरांत है।।

– मऊरानीपुर, झांसी □

पानी के उपयोग में सावधानी बरतें

दिग्विजय सिंह
मुख्यमंत्री

मध्यप्रदेश शासन
भोपाल – 462004

प्रिय भाइयों और बहनों,

हमारे प्रदेश में इस बार प्रकृति का कुछ ऐसा प्रकोप रहा कि वर्षा बहुत कम हुई जिससे भविष्य के लिए हमारे सामने पानी के अभाव से निपटने की एक बहुत बड़ी चुनौती पैदा कर दी है। अल्प वर्षा से खेती-किसानी चौपट हो गई है और जल स्रोतों पर विपरीत असर पड़ा है।

नदियों और पर्वत श्रृंखलाओं के इस प्रदेश में कुछ ऐसे हालात बन रहे हैं कि नदियाँ सूख रही हैं और हरियाली कम नजर आ रही है। आप स्वयं इस बात को महसूस कर रहे होंगे कि पिछले सालों की तुलना में आपके आसपास पानी की समस्या किस तरह पैदा होती जा रही है। ऐसी स्थिति में हमें अभी से ही सावधान और सतर्क रहने की जरूरत है।

मैंने अपने अब तक के जीवन में ऐसा साल कभी नहीं देखा जिसमें अक्टूबर-नवम्बर माह से ही पानी का अभाव दिखाई देने लगा हो। बड़े-बुजुर्ग भी यही कहते हैं कि पिछली एक शताब्दी में पानी का इतना संकट अभी पैदा नहीं हुआ था। प्रदेश के कुछ इलाकों में गर्मी के महीनों में पानी की कमी जरूर हो जाती रही है लेकिन इस कमी को आप सबके सहयोग से पूरा करने में हम कामयाब रहे हैं। जरूरत के मुताबिक पानी का परिवहन भी हम करते रहे हैं लेकिन इस बार तो सभी जगह पानी की कमी दिखाई दे रही है। प्रदेश के कुछ इलाकों में जहां जल संग्रहण के अच्छे काम हुए हैं वहां तो उतनी समस्या नहीं है किन्तु ऐसे अनेक इलाके ही जहां इस दिशा में काम पिछड़ गया है वहां जल स्रोत सूख गये हैं और जल का स्तर जमीन के काफी नीचे चला गया है। इस स्थिति का हमें मिल-जुलकर मुकाबला करना होगा।

पानी का अभाव हमारे लिये अभिशाप हो सकता है। पानी की कमी से विद्युत उत्पादन प्रभावित होता है, उद्योगों के लिए पानी की जरूरत पूरी नहीं हो पाती है और यहां तक कि लोगों और पशुओं के लिए पीने के पानी तक की समस्या पैदा हो जाती है। इसी तरह की स्थिति हमारे यहां भी बन रही है। आज हमें पानी के इस्तेमाल को लेकर अपनी मानसिकता में बदलाव लाना होगा। हमें सावधानी बरतनी होगी कि आवश्यकता से अधिक पानी का उपयोग हम नहीं करें। हम पानी को बरबाद होने से बचायें और लोगों को भी प्रेरित करें कि वे पानी की बचत करें।

इन दिनों हमारी सबसे बड़ी चिंता प्रदेश में अल्प वर्षा से उत्पन्न विपरीत परिस्थितियों के बारे में है। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि शासन की पूरी मशीनरी सूखे की भयावह स्थिति से निपटने के लिए पूरी शक्ति के साथ सक्रिय रहेगी। हमारी कोशिश होगी कि कोई भी व्यक्ति प्यासा नहीं रहे। मवेशियों को उनकी जरूरत के मुताबिक पानी और चारा मिलता रहे। सूखे की स्थिति से निपटने के लिए हमने व्यूह रचना की है जिसके तहत शासन के प्रत्येक स्तर पर जिम्मेदारियां तय कर दी गई है। हमारे इन प्रयासों में हम सभी कामयाब हो सकेंगे जब शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के सभी नागरिक बंधुओं का इसमें सहयोग मिलेगा।

धन्यवाद।

सादर,

आपका,

(दिग्विजय सिंह)

बुन्देली फागों में 'ईसुरी' का योगदान

– डॉ. नाथूराम चौरसिया

भारत की 'फागु' काव्य परम्परा अत्यंत प्राचीन है। फागु बसंतोत्सव के अवसर पर गाये जाने वाले विशिष्ट गीत हैं। इस शैली में राजस्थानी और गुजराती में प्रचुर परिमाण में साहित्य सृजन हुआ है। जिसका प्रमुख स्रोत संस्कृत और अपभ्रंश की रचनाओं में उपलब्ध है। भारत के अनेक जनपदों की भाँति बुन्देलखण्ड में भी बसंतोत्सव या फाग' का त्योहार अत्यंत हर्षोल्लास, उमंग एवं उत्साह के साथ मनाया जाता है। बसंतागमन प्रायः माघ शुक्ल पंचमी से माना जाता है। इसी दिन से बुन्देलखण्ड में आनन्दोल्लास, हर्ष एवं रस और भावों से लबाबल भरे गीतों की बाढ़ सी आने लगती है, जिसमें सर्वाधिक प्रचलन फाग का ही है।

ईसुरी के पूर्व बुन्देलखण्ड में फाग गीतों के अनेक रूप प्रचलित थे। जैसे – छन्दयाऊ, डिड़खुरयाऊ, टपयाऊ, लपिड़याऊ और खड़ी फागें आदि। ईसुरी ने लोकगीत की इसी विशिष्ट विधा फाग गीत को अपनाया और उसमें संशोधन करके एक नये रूप को जन्म दिया, जिसे 'चौकड़िया फाग' कहते हैं। इसमें प्रायः चार कड़ियॉं हैं। कहीं–कहीं अधिक भी परन्तु अल्प मात्रा में। चौकड़िया फाग 16 और 12 मात्रा के विश्राम से 28 मात्राओं का छंद होता है। इसके अन्त में दो गुरु होते हैं। छन्द–शास्त्र के अनुसार इसे नरेन्द्र और ललित पद की श्रेणी में इसे रखा जा सकता हैं इनकी अधिकांश काव्य–रचना इसी रूप में हुई है। इनकी फागें संगीत की दृष्टि से लोकधुनों में गाई जाती हैं, लेकिन इसे ईमन और कल्याण आदि रागों में गाया जाने लगा है।

बुन्देलखण्ड में होलिकोत्सव पर फगुवारे अत्यंत आदर, चाव और सम्मान के साथ ईसुरी की सरस, रसीली और चुटीली फागों को गाते नहीं अघाते और अपार आनंद का अनुभव करते हैं। इनकी भाषा शुद्ध बुन्देली होने के कारण इनमे सरसता और माधुर्य का अनूठा सामंजस्य हो गया है, जो जन साधारण के मन को बरबस अपनी ओर चुम्बक की भाँति आकृष्ट कर लेने में समर्थ है। लोककवि ईसुरी का समय विशेष परिवर्तन का था। जीवन की विभिन्न गतिविधियों में मानव इतना व्यस्त है कि उसे मनोरंजनादि के लिये फुरसत ही कहाँ और समय है भी तो बहुत कम। ईसुरी ने समय की इस गति को पहचान कर व्यस्त मानव की प्रकृति को समझा। परिणामस्वरूप चौकड़िया नाम की चारकड़ी की एक ऐसी फाग को जन्म दिया, जो सर्वथा नूतनता लिये हुये, नवीन शैली और स्वर लहरी में, कम से कम समय में गाई जा सकने वाली तथा मन को स्पर्श करने वाली, चुटीली बातों को अपने में संजोये हुये थी।

प्रकृति के वरदान के रूप में ईसुरी को सुरीला कंठ भी प्राप्त था। वे फागें बनाते भी थे और गाते भी। प्रारम्भ में लोग इस प्रकार की फागों को 'ईसुरी की फागें', 'फाग ईसुरी', या 'ईसुरयाऊ फागों' के नाम के सम्बोधित करते थे। चार कड़ियाँ होने के कारण बाद में 'चौकड़िया' कहना प्रारम्भ हुआ। बुन्देलखण्ड में ईसुरी की फागें ही पुकारी जाती हैं। इनकी फागें ठेठ बुन्देली में होने के साथ ही साथ सरस, सरल, भावप्रधान, मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी होती है। इनके विषय विविध हैं, परन्तु श्रृंगार की प्रधानता है।

ईसुरी की फागों में बुन्देलखण्डी लोकजीवन का सफल चित्रण हुआ है। बुन्देलखण्ड की तत्कालीन सामाजिक स्थिति, पारिवारिक परम्पराएँ और राजनीतिक गतिविधियों का प्रभाव इनकी फागों में परिलक्षित होता है। परिवार से पति–पत्नी, सास–बहू, ननद–भौजाई, देवर–भाभी आदि के मधुर और कटु दोनों ही प्रकार के सम्बन्धों का अंकन इनकी फागों में उपलब्ध है।

ईसुरी की फागों को इस जनपदीय जीवन के अनेक पक्षों का प्रतिबिम्ब कहा जा सता है। इनके वर्ण्य विषय दैनिक जीवन में घटित होने वाली छोटी–छोटी घटनायें हैं। इन्होंने लोक जीवन के प्रत्येक अंश का वर्णन किया है। इनकी फागों में बुन्देली के परिनिष्ठित और साहित्यिक रूप के साथ ही भावानुकूल शब्द–चयन, धारावाही प्रवाह, चित्रोपमता, स्वाभाविकता और सरलता के सर्वत्र दर्शन होते हैं। बुन्देली भाषा को व्यापक और प्रभावशाली बनाने का इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। इनकी भाषा में भावानुकूलता के साथ ही साथ सपाटबयानी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इनकी शैली भी हृदय की कोमल भावनाओं को व्यक्त करने के लिये अत्यंत उपयुक्त है। इसीलिये इनकी शैली अपनी पृथक विशेषतायें रखती हैं। वे जो कुछ कहते हैं, अत्यंत सीधे सादे ढंग से, परन्तु इस सिधाई में एक बांकपन रहता है। इनकी अतिश्योक्तियां अत्यंत स्वाभाविक रहतीं हैं। इनकी फाग की प्रथम दो पंक्तियाँ इतनी प्रभावशाली होतीं हैं कि श्रोता के कान अपने आप खड़े हो जाते हैं। उसका ध्यान फाग पर केन्द्रित हो जाता है। इनकी फाग की प्रथम पंक्ति को द्वितीय पंक्ति का जबरदस्त समर्थन रहता है। इसीलिये बुन्देली के विद्वान और फागों के गायक केवल फाग सुनकर यह संकेत कर सकते हैं कि भाषा और शैली की दृष्टि से यह फाग ईसुरी की ही है। इनकी फागें बुन्देलखण्डी लोक जीवन को

सहन करने की क्षमता रखती हैं।

ईसुरी ग्राम्य संस्कृति के सच्चे पारखी थे। इनकी फागों में ग्राम्य जीवन का अत्यन्त स्वाभाविक और अनूठा चित्रांकन हुआ है। ग्राम्य संस्कृति का पूरा इतिहास इनकी फागों में उपलब्ध है इसीलिए इनकी फागें न केवल अपने अंचल में वरन् सुदूरवर्ती फागों में लोकप्रियता प्राप्त कर सकीं है। इनकी फागें बुन्देली जन–मानस के रंजन एवं मस्ती जुटाने में पूर्णरूपेण समर्थ हैं। बुन्देलखण्ड में होली के अवसर पर ढोलक की ढमक, झांझ की झमक एवं नगाढ़िया की ठनक के साथ बुन्देली लोकगायकी वातावरण में सजीवता ला देती है। जिन्होंने इनकी जादुई भरी फागों को लोक कंठ से श्रवण किया है, वे ही स्वीकार कर सकते हैं कि इनकी ध्वनि कान में पडते ही ग्रामवासियों के मलीन चेहरे खिल उठते हैं और नेत्रों में एक दिव्य आभा झलकने लगती है। इनकी फागों को बुन्देलखण्ड के फगुवारे उल्लसित नृत्यनिमग्न मयूर की भांति थिरकते हुये गाते नहीं अघाते और एक अपार आनन्दानुभूति का अनुभव करते हैं।

'राई' बुन्देलखण्ड का नृत्य है, जो प्रमुख रूप से होली के अवसर पर हुआ करता है। ईसुरी की फागों का इसी नृत्य के साथ गायन होता है। ईसुरी स्वयं फाग बनाते और गाते थे परन्तु इनकी फागों के नामी गवैया धीरे पण्डा थे। धीरे पण्डा का फाग गायन और गंगिया एवं सुन्दरियां रंगरेजिन भगिनीद्वय के नृत्य ही बुन्देलखण्ड में इनकी फागों की प्रसिद्धि को प्रमुख कारण बने। धीरे पण्डा की मोहनी भाखा के साथ रंगरेजिन भगिनी द्वय के नृत्य ने इनकी फागों के प्रचार या प्रसार मे चार चांद लगा दिये। धीरे के विषय में ईसुरी ने कहा है –

''इनकी बड़ी मोहनीं भाखा चलै अंगाउँ साखा।
इनकी कहन लगत औरन खौं, गोली कैसो ठाँका।
बैठे रओ, सुनो सब बेसुध, खेंचें रओ सनाका।
दूनर होत नचनियाँ फिर–फिर, मईं कौं जात छमाका।
फागन खौं हैं धीरे पण्डा, 'ईसुर' आँय पताका।

इसी प्रकार रंगरेजिन भगिनी द्वय के बारे में ईसुरी ने लिखा है –

नैना तरवारन से पैंने, करे सामने तैंने।
घायल करदओ मुलक भरे खौं, ऐसी दई की दैंने।
प्राण हरन सुन्दरिया, गंगिया, एकई सी दोई बैंने।
ऊसई पैंने नैंन तुमारे, कछु चलत हैं सैंने।
'ईसुर' कात सामने परकैं, सये ससन भर मैंने।

कहा जाता है कि ईसुरी इन पर आसक्त थे। इनके कार्य व्यापार पर मोहित होकर उन्होंने कहा है –

नैना भँवर भये बारी के, रंगरेजिन प्यारी के।
एक से दोउ वेषधारी हैं, रुचिर रेख कारी कै।
सालिगराम बीच कमलन के, चितबन अनयारी के।
लेत सुगंध फूल भये फूले, मानस संसारी के।
'ईसुर' पड़े इसक के फन्दे, आसिक हैं यारी के।

वास्तव में रंगरेजिनों के पदों की घुंघरुओं की छमा–छम की मधुर ध्वनि एवं पण्डा धीरे की मधुर कण्ठ ध्वनि से सारा जनसमूह उमंग से झूमने लगता था। धीरे की मोहनी भाखा गोली का काम करती थी, जिसे सुनकर लोगों में सन्नाटा छा जाता था। साथ ही रंगरेजिन भगिनी द्वय के सुसज्जित होकर नृत्य करने तथा भ्रूविक्षेप के कारण सारा जनसमुदाय खबरभूल हो जाता था, बेचारे देखने वालों की तो आफत ही गुजरती थी। इस प्रकार ईसुरी अथवा पण्डा धीरे का फाग–गायन एवं रंगरेजनि भगिनी द्वय के नृत्य के एक साथ इनकी फागों के प्रचार में एक विज्ञापन का कार्य किया। यही कारण है कि ईसुरी की फागों के समान दूसरे जनपद में एक कवि की ऐसी कविता का प्रचार दृष्टि–गोचर नहीं होता, जैसा कि बुन्देलखण्ड में ईसुरी की कविता का उपलब्ध होता है। ईसुरी ने अधिकांशतया चौकड़िया फागों की ही सर्जना की है, जिनका होली के अवसर पर गायन होता है, परन्तु इन्होंने इसे होली तक ही सीमित न रखकर एक स्वतंत्र छंद के रूप में प्रयुक्त किया और श्रृंगार के अतिरिक्त करुण, शान्त और भक्ति रसों में इस छंद का सफल प्रयोग हुआ।

फाग–साहित्य की लोकप्रियता एवं उसके विकास में फड़बाजी की भी प्रमुख भूमिका है। काव्य क्षेत्र में इस फड़बाजी का प्रचलन एक विषय की रचनाओं तथा समस्यापूर्ति के साथ हुआ। ईसुरी प्रतिभा–सम्पन्न कवि थे। बात–बात में फाग बनाकर कह देने में इन्हें कमाल हासिल था। धवर्रा और बघौरा में उस समय फाग मंडलियाँ थीं, जिनमें फाग प्रतियोगितायें चला करती थीं। छतरपुर निवासी श्री गंगाधर व्यास ने ईसुरी से प्रभावित होकर अनेक फागों की सृष्टि की। उपर्युक्त दोनों फाग–मण्डलियों में से कोई कवि किसी एक दल का प्रतिनिधित्व कर लेता था और इन दोनों दलों में प्रायः फाग प्रतिस्पर्धायें चला करतीं थीं। यह प्रतिस्पर्धा कभी रूप–वर्ण को लेकर कभी काव्य शास्त्र, ज्योतिष या अन्यविषय नायिका–भेद आदि पर हुआ करतीं थीं। फागों के फडों में गाते–गाते ही ईसुरी सहज रूप में अपने फाग मुक्तकों की सर्जना करने में समर्थ थे। इनके फाग मुक्तकों में संक्षिप्तता, सम्बद्धता और भाव की अन्विति आदि विशिष्टतायें उनको सजीव बना देती है। गेयता तो उनका प्राण है। आचार्य होने के नाते ईसुरी के सम्मुख कोई भी कवि प्रतिद्वन्दी बनकर उपस्थित होने का साहस नहीं करता था, परन्तु व्यास जी आये दिन मोर्चा सम्हालते थे। वे फड़बाजी के लिये लिखी गई फागें अत्यन्त चमत्कार पूर्ण, आकर्षक एवं मधुर होतीं थी, और इन फागों में कवियों

की प्रतिभा के पूर्ण विकास के दर्शन होते हैं। कहना न होगा कि बुन्देलखण्ड में फागों की फड़बाजी के लिये ईसुरी ने एक सुदृढ़ आधार प्रस्तुत किया।

लोककवि ईसुरी जिस समय अपनी वाणी से बुन्देलखण्ड के रसिक, समाज मानव को रसाप्लावित कर रहे थे, उस समय बुन्देली में कोई भी ऐसा प्रतिभाशाली कवि नहीं था, जो इनका मार्गदर्शन करता ईसुरी ने अपनी चमत्कारिक प्रतिभा पर पूर्णरूपेण आश्रित रहकर एक पृथक मार्ग निर्धारण किया, जिसके द्वारा वे अपने लक्ष्य पर सफलतापूर्वक पहुंच गये और बाद में यह परिष्कृत मार्ग बुन्देली में फाग सृजनकर्ताओं के लिये प्रकाशस्तम्भ सिद्ध हुआ। ईसुरी मुख्य रूप से चौकड़िया फागकार थे। बुन्देली के अन्य चौकड़िया फागकार श्री गंगाधर व्यास, श्री ख्यालीराम, श्री रसिया, श्री मनभावन आदि ईसुरी की विचार धारा से पर्याप्त साम्य रखते थे। गंगाधर व्यास ने ईसुरी से प्रभावित होकर अनेक फागों की सर्जना की। चौकड़िया फाग में दो मात्रायें और बढ़ाकर खड़ी फाग बनाई, जो चौकड़िया की ही भांति लोकप्रिय हुई। दोनों ने एक ही जैसी फागों की सृष्टि की। फड़बाजी के लिये लिखी गई रंगत की एक–एक फाग प्रस्तुत है। ईसुरी की नायिका के मुख पर अवस्थित गोदना का चिन्ह देखिये –

गुदनू गोरे गाल पै टाँकी, लगा गई गुदना कौ।
पन्ना हरो जड़ो सोने में, मानों बड़ी जमा कौ।
बुध को गोद लयें यों राजत, परत चंद्र में झाँकौ।
विष की बूँद लयें ग्रीवा में, बैठो पती उमाँ कौ।
'ईसुर' कात नजर लग जैहे, घूँघट पट सैं ढाँकौ।

इसी प्रकार गंगाधर का गोदना वर्णन देखिये –

गुदना लगत गाल पै प्यारी, गोरी चतुर तुमारौ।
गोरे बदन गाल के ऊपर, बनबैठो रखवारौ।
देखन देव नजर भर हमखाँ, न घूंघट पट डारौ।
ठाँड़ी होओ देख लैं चित सैं, जी ललचात हमारौ।
'गंगाधर' की तरफ हेरलेव, दैंकैं तनक इसारौ।

उपर्युक्त दोनों फागें, दोनों कवियों ने एक ही विषय को लेकर लिखीं है। ईसुरी में हमें बहुज्ञता के दर्शन होते हैं। जहाँ ईसुरी ने गोदना के चिन्ह को लेकर ज्योतिष, उपमा और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के दर्शन होते हैं, वहाँ गंगाधर में एक सामान्य वर्णन उपलब्ध होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ईसुरी की भाषा में सहजता, सरलता, अभिव्यंजना की उत्कृष्टता और मार्मिकता है, वहाँ गंगाधर में इसका अभाव है। इस आधार पर व्यास जी भाव, भाषा और शिल्प आदि क्षेत्रों में इसका अभाव है। इस आधार पर व्यास जी भाव, भाषा और शिल्प आदि क्षेत्रों में ईसुरी से प्रभावित थे और गंगाधर ने तो यहाँ तक कहा –– "गंगाधर' ईसुर रसिया ने फाग कहे कै जादू।"

श्री ख्याली राम भी ईसुरी के समकालीन थे। श्री ख्याली ने मुख्य रूप से चौकड़िया फागें ही लिखी हैं। दोनों कवियों की नेत्र विषयक एक–एक फाग दृष्टव्य है –

ऐसे अलबेली के नैना, मुख सौं कात बनेना।
सामैं परै सोउ छिद जैहै, अगल–बगल बरकैना।
लागत चोट निसाने ऊपर, पंछी उड़त बचैना।
जियरा लेत पराये, 'ईसुर' जो निरदई कसकैना।

ऐसे अलबेली के नैना, कवि सौं कात बनैना।
मधुकर मीन कंज की लाली, टकसाली के है ना।
औसर पाय पुराने खंजन, डर सौं डगर बसै ना।
'कविख्याली' अली नैनन सौं, बनमाली उतरै ना।

इस प्रकार भाषा, भाव और शैली तीनों रूपों में ख्यालीराम, ईसुरी से प्रभावित हैं। ईसुरी की सी अभिव्यक्ति की, स्वाभाविकता का अभाव उनमें खटकता है।

'रसिया' ईसुरी के समसामयिक चौकड़िया फागकार थे। इन्हें बुन्देली घनानंद कहा जाता है। दोनों कवियों की एक–एक फाग प्रसतुत है–

'ईसुरी'–जौ तन हो गओ सूक छुआरौ, असई हतो इकारौ।
रैगई खाल हाड़ के ऊपर, मकरी कैसो जारौ।
तन भओ मांस, बांस भओ पिंजरा, रकत रओ न सारौ।
कात 'ईसुरी' सुनलो प्यारी, खटका लगो तुमारौ।

'रसिया'–जौ तन हो गओ सूख छुहारौ, नेही तनक निहारौ।
काया भई सूक कैं पिंजरा, ऊसई हतो इकारौ।
लिपटी खाल हाड़ के ऊपर, मकरी कैसो जारौ।
न मांसे भर मांस बदन में, नइयाँ रकत फुहारौ।
'रसिया' कहैं आस मिलवे की, कड़ै न हंस बिचारौ।

उपर्युक्त रचनाओं के आधार पर निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि रसिया वस्तु और भाव वर्णन की दोनों दृष्टियों से ईसुरी से प्रभावित है। यहाँ तक कि इन्होंने कतिपय भाषाई परिवर्तन के साथ ईसुरी की पंक्तियां ज्यों की त्यों अपना ली हैं।

'मनभावन' चौकड़िया फागकार थे। ये ईसुरी के समकालीन थे। दोनों ही फड़बाजी में उपस्थित रहा करते थे। अब दोनों कवियों का श्यामल चिकने केशों की लम्बी वेणीं का वर्णन प्रस्तुत है –

'ईसुरी'
गोला मौ पै पटियाँ पारें, सुन्दर मांग समारें।
मानो स्वच्छ चन्द्र के ऊपर, कागा पंख पसारें।
दोऊ तरफ बहैं सुन्दर सीं, गंगा जमुना धारें।
तिरवेनी बैनी खौं देखत, रातीं सिमट किनारें।
ईसुर' कात दरस के होतन, कलमल सिखर निकारैं

नभावन – पटियां मन हरबें खों पारैं, रच–रच मांग समारैं।
चुटिया चुस्त बंदी चुटला सें, गुरियाँ कुच पै डारैं।
ऊपर मांग भरी मौतिन की, सीस फूल को धारैं।
मनभावन मन हरबे कारन, हर–हर बेर उघारैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि सुरीकालीन लोक कवियों का फाग साहित्य ईसुरी से तु एवं भाव वर्णन की दृष्टि से पूर्णतया प्रभावित है। तना ही नहीं, कतिपय भाषाई परिवर्तन के साथ इन लोक वियों ने ईसुरी रचित फागों को अपने काव्य में ज्यों का यों उद्धृत भी किया हैं नि संदेह हम कह सकते हैं कि सुरी जैसी काव्यगत सहजता, मार्मिकता तथा प्रभविष्णुता न्य कवियों की फागों में दृष्टिगत नहीं होती।

बुन्देली फाग काव्य–धारा में ईसुरी ने क्रांतिकारी रिवर्तन किया। उन्होंने जन–मन के अन्तस में बैठकर से आल्हादित किया। मानव मन का जितना ज्ञान ईसुरी ो था, उतना उनके पूर्ववर्ती कवियों को शायद ही रहा । यही कारण है कि उनकी फागें हर शिक्षित–अशिक्षित के मन में बैठ गई हैं। जैसा सहज, सरल और हंसोड उनका व्यक्तित्व था, वैसी ही उनकी फागें भी। इसीलिये उनके समकालीन और परवर्ती फागकार उनसे प्रभावित हुये बिना नहीं रह सके। गंगाधर, ख्यालीराम, रसिया बोधन, मनभावन, रामप्रसाद, द्विज दुर्गा और भुजबल सिंह आदि का नाम इस क्षेत्र में फाग के संदर्भ में विशेष प्रचलित है। फागों के समस्त रचनाकार ईसुरी के ऋणी हैं। इन सभी ने फागों के क्षेत्र में ईसुरी की श्रेष्ठता स्वीकारी है और मुक्त कंठ से उनकी प्रशंसा की है। मेरा तो यह कहना है कि ईसुरी के बाद से अनेक कवियों ने फाग सर्जना की और आज भी कर रहे हैं, लेकिन वे ईसुरी से आगे नहीं निकल पाये। इस प्रकार समकालीन और परवर्ती फागकारों में ईसुरी का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। उनकी मृत्यु को आज 92 वर्ष हो चुके हैं, परन्तु उनका महत्व आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। जन–मन के कंठहार ईसुरी की फागें बुन्देलखण्डी जनपद में जब तक यौवन और उल्लास रहेगा, तब तक गाई जाती रहेंगी।

– शास. शिक्षा महाविद्यालय, छतरपुर □

चिट्ठी मिली

बागीस शास्त्री जू ने अपनी पोथी में लिखो है कै बुन्देली भाषा में ऐसे सब्द मिल जात, जिनकौ आदि और कऊं नईं मिलत। ठेठ वेदकाल की भाखा में मिलत। ईसे सिद्ध होत है कि अपनौ भूखंड बहुतई प्राचीन है। विद्वानन की राय में विन्ध्याचल पर्वत, हिमालय पर्वत कौ पड़दादा है। महाराज छत्रसाल जू के जमाने में बुन्देली भाषा हती, और वे अपनी चिट्ठी पत्री, अपनी सनदें इत्यादि बुन्देली में लिखवाउत्ते। धीरे–धीरें जैसे–जैसे समैया बीती, बुन्देली भाषा मिटकें बोली कहाउन लगी। आगें जैसें जैसें गमई गांव के टुरवा टुरियां स्कूल जान लगे और पढ़ लिख कें तैयार भये और सहरन में रहन लगे, उन्ने अपनी बोली भी छोर दई और खडी बोली बोलन लगे।

जा भौतई खुसी की बात है कि आप पढ़े–लिखे डाग्डरन, पुरफैसरन कौ ध्यान अपनी बोली की तरफ गऔ, अगर अपुन खौं अपनी बोली को जिन्दा रखने हों तो गावन के स्कूलन में बुन्देली पढ़ाई जावै, बुन्देली के मास्टर तैयार कराये जावें, पढ़ावे के लाने बुन्देली की किताबें तैयार कराई जावें, अपनी बोली खों जिन्दा राखबे भौत त्याग और तपस्या करने पड़हे। हम तो बूढ़े हो गए हमसें तो अब कछु होने नईयाँ अब अपुन जवानन से ही आशायें हैं।

–महेन्द्र कुमार 'मानव', भोपाल ☐

बुन्देली उत्सव स्मारिका मिली यह पुस्तक बहुत अच्छी एवं संग्रहणीय है। बहुत मेहनत का काम है अध्ययन अध्यापन के बाद आप यह श्रमसाध्य कार्य कैसे कर लेते हैं। बधाई स्वीकार करें।

–बूलाकार, परासिया ☐

बुन्देली उत्सव 2000 की स्मारिका के प्रकाशन हेतु मेरी बधाई स्वीकार कीजिये। जहां स्मारिका का आकर्षक आवरण पाठक को अपनी ओर आकर्षित करता है। वहीं स्मारिका की विषय वस्तु, उसका मुद्रण तथा अशुद्धियों का लगभग न के बराबर होना आपके अकथ श्रम की फलश्रुति ही है।

– हरिविष्णु अवस्थी, टीकमगढ़ ☐

बुन्देली उत्सव पढ़ना बुन्देली साहित्य कोष को पढ़ने जैसा प्रतीत हुआ राजबहादुर सिंह की कविता 'चैतुवे' एक जीवित रचना है, जिसे पढ़कर महसूस हुआ कि कवि ने अंतर से सबकुछ सहने के बाद लिखा है। डॉ. पटेल का बुन्देली उत्सव गीत बुन्देलखण्ड की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब है। बुन्देली उत्सव रूपी उद्यान को आपने सहयोगियों सहित हृदय रस से सींचा है। जिससे उसका परिमल हरा–भरा हो गया है। बधाई स्वीकारें।

– नरेश अवस्थी, दमोह ☐

बुन्देली उत्सव 2000 अवलोकन करने का अवसर प्राप्त हुआ। बुन्देली लोक संस्कृति, लोकसाहित्य, इतिहास आदि पर उत्तमोत्तम लेखों का चयन व संपादन अत्यंत उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करता है। आज ऐसे प्रकाशनों की महती आवश्यकता है।

–रामप्रकाश गुप्त, हथनौरिया, चिरगांव ☐

बुन्देली उत्सव 2000 के सार्थक और सुन्दर सम्पादन के लिए बधाई।

– डॉ. वीरेन्द्र निर्झर, बुरहानपुर ☐

आपने तथा आपकी टीम ने अपने नाम के अनुरूप कार्य कर दिखाया वर्ना आजकल कौन इस महंगाई की मार खाकर भी बुन्देली उत्सवों का आयोजन तथा श्रमसाध्य व्ययसाध्य, समयसाध्य स्मारिका प्रकाशन का साहस करता है। हमारी हार्दिक बधाई स्वीकार करें। ग्राम बसारी धन्य हैं जहां संस्कृति के लिए ऐसी उर्वर भूमि है और शंकर प्रताप सिंह जैसे कर्मठ एवं लगनशील बन्धु हैं। लेखों का नियोजन एवं विषय व्यापकता सराहनीय है। यदि डॉ. हरिविष्णु अवस्थी के लेख की भांति शोधपूर्ण अप्रकाशित लेखों को ही स्थान दिया गया होता। तो पत्रिका का स्तर और ऊँचा हो जाता। जो लेख अन्य पत्रिकाओं में छप चुके हों उनसे बचना श्रेयस्कर होता है।

– अ.प्र. कुमुद, उरई ☐

अत्यन्त आकर्षक एवं उत्कृष्ट पत्रिका का प्रकाशन कर बुन्देली समिति बसारी ने साहित्य एवं संस्कृति की समृद्धि मे अभूतपूर्व योगदान किया है। पर्याप्त उपयोगी सामग्री को इसमें स्थान दिया गया है। सभी आलेख सारगर्भित तथा नवीन जानकारी के सूचक हैं। शोधदृष्टि से तो इसका सर्वत्र समादर होगा।

–डॉ. सियाराम शरण शर्मा, झांसी ☐

बुन्देली उत्सव 2000 का कलेवर उत्तम है चयनित सामग्री बुन्देली संस्कृति में प्राण फूंकने वाली है, संपादन श्लाघनीय है।

–डॉ. डी.आर. वर्मा 'बेचैन', स्यावरी, मऊरानीपुर ☐

बुन्देली उत्सव 2000 की छपाई साफ एवं सुन्दर है, पत्रिका बहुत सुन्दर निकली है। स्तरीय सामग्री चयन हेतु बधाई।

– रमेश शंकर सक्सेना, बल्देवगढ़ ☐

भैया साब अपुन और महाराज कुमार मुन्नाराजा जू अपनी माटी की काजें जो कछु नोंनों कर रय सो आबे बारो समय अपनु सबको जस गेहै।

– डॉ. लखन लाल खरे, कोलारस ☐

इनके अलावा अनेक पाठकों के प्रशंसा में सम्पादक को पत्र प्राप्त हुए हैं सभी का विवरण न दे पाने के लिए क्षमाप्रार्थी हूं।

– सम्पादक

लुप्त होते बुन्देली शब्द

– सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'

अँग्रेजी भाषा एवं अँग्रेजियत के प्रभाव के कारण बुन्देलखण्डी समुदाय द्वारा बुन्देली शब्दों के उपयोग–प्रयोग में हीनता अनुभव की बढ़ती प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप अंचल के लोगों की बातचीत में परम्परागत बुन्देली शब्दों के लुप्त होने की प्रक्रिया तीव्रता से गतिशील है। जो बुन्देली शब्द बाल्यकाल में दादा–दादी, नाना–नानी के द्वारा बातचीत में खूब प्रयुक्त किये जाते सुने थे, वे आज हमारी बातचीत में प्रयुक्त नहीं हो रहे हैं, किन्तु हम प्रौढ़ वर्गीय जन उनके प्रयोग व अर्थ जानते हैं, पर आज की युवा पीढ़ी तो उनसे परिचित तक नहीं हैं और न ही होना चाहती है।

ऐसी स्थिति में बुन्देली के मूल शब्दों के विस्मृत होते–होते लुप्त होने की आशंका स्वाभाविक है। इसी भावभूमि पर लगभग पांच वर्ष पूर्व मन संकल्पित हुआ कि ऐसे शब्दों का संग्रह करें। सम्प्रति कई हजार शब्दों का अच्छा खासा शब्द–भण्डार संग्रहीत हो गया।

तीन प्रकार के बुन्देली शब्द समक्ष आये (1) मूल बुन्देली शब्द (2) अन्य भाषाओं से रूपांतरित होकर बने बुन्देली शब्द (3) खड़ी हिन्दी के रूपांतरित हुए बुन्देली शब्द। हिन्दी व अन्य भाषाओं से रूपान्तरित होकर चलन में आए बुंदेली शब्दों की चर्चा व प्रस्तुति अन्यत्र करना उचित समझते हुए यहाँ उन मूल बुन्देली शब्दों की बतौर बानगी प्रस्तुति है जो यदाकदा ग्राम्यजनों के वाक्यों में सुनने को मिल जाते हैं अन्यथा नगरीय जमों से विलग होकर लुप्तप्राय हो गये हैं। कुछ ऐसे शब्द वर्णिक क्रम से अर्थसहित यहां प्रस्तुत हैं–

असफेर – आसपास का क्षेत्र
अलायदौ – पृथक
अलींजा – भरपूर, खूब
असती – खानपान में तृष्णा करने वाला
अमावौ – समाना
अतपर – आधार रहित
अदयाँट – मार्ग एवं किसी क्रिया का मध्य
अबढ़ाँये – स्वमेव
अथइकें – सन्ध्या समय
अण्डकाँकरी – पपीता
अनबांसवौ – प्रारंभ, नयी वस्तु प्रयोग करना
अडींच – रेखा
अड़धत्त – विचारहीन
अत्त मूतबौ – आतंकित करना
अनार – ऊधम
अँगोछबौ – शुष्क स्नान, स्नान पश्चात का पोछना
अँगोटवौ – अतिक्रमण
अट्टाचड़ी – ईर्ष्यावश प्रतिस्पर्धा
आगौनी – आतिशबाजी
अरवा, आरौ – दीवार में सामान रखने के आले
आड़पेंच – छुपाकर यत्न करना
आबड़ में परबौ – पहुंच की परिधि में आना
आँटौ–साँटौ – एक दूजे के घर लड़का–लड़की ब्याहना
आसजोत – दोज की पूजा में प्रयुक्त दीपक, रुई की बनी विशेष आकृतियां
आखौती – बाँयना देने पर नाइन को अन्न देना।
आवर्दा – आयु
आँग – अंग, अंग का हिस्सा
इकबाइ – छत विहीन दीवार
इकलाई – साड़ी
ईदकबीदा – उलझन, बिदौना
उसरी उसराँ – बारी–बारी, क्रमशः
उसार पात – घरेलू कामकाज
उरइयाँ – भोर की धूप
उरौतियाँ / उरवातियां – खपरों से वर्षा जल का टपकना, गिरना।
उठला चालौ – अधम
उबाँड़ौ – मनमाना ऊलजलूल ढंग
उकरान – जी भर जाना, ऊबना
उनजस, उन्हार – आकृति सादृश्य, छवि
उमानौ लैबो – नाप लेना
उपनए – नंगे पाँव, बगैर जूता / चप्पल
उतारन – पहिने हुए कपड़े दूसरा पहिने तब / भूत, प्रेत टोटका दूर करना / नई बहू के सिर पर नेग आदि फिराकर नदी में फेंकने की क्रिया
उसकारवौ – तीव्र करना
उलछारवौ – बर्तन में रखे अचार को नीचे से ऊपर करना / कुयें की पाट के नीचे से भरे बर्तन को ऊपर लाना / धूमिल लिखावट व चिपको पुनः रंग या स्याही से स्पष्ट करना
उलछारबौ – निशान बन जाना
ऊसइ – उसी तरह, कार्य ही
ऊपरफट्टी – दिखाउ तौर पर
ऊँठा – अंगूठा
ऊजरी – साफ स्वच्छ, छूत मानने वाली
ऊँछवौ – बालों में कंघी करना
ऊचवौ – चूकना
ऊतराँ – उसी तरह, किसी विशेष तरह
एरौ – आहट
अपने ऐरें – अकेले में
ऐंडबेंड – सामान्य से हटकर होना
ऐनइं एन – अधिकाधिक
ऐंगर–नेंगर – समीप
एसें एसें – इस तरह से
ऐबी – दुष्कर्मी, अश्लील कार्य करने वाला
ऐंचबौ – निकालना, खींचना
एजर – घासफूस, कूड़ा
ऐसें नोंनें – सुगमता से
ऐन नोने – खूब अच्छे, स्वस्थ
ऐंचकताने – तिरछी हेरन वाला
ओली – गोद, गोद भराई रस्म
औंदावौ – उलट–पलट कर रखना
ओछी – नाप से कम हो
ओछोपन – संकीर्ण मनोवृत्ति
ओद – गीलापन
औंरा – आँवला

ओरी – दादी, माँ
ओरे – ओले
ओंड़ौ – दीवाल में आर–पार जाने की जगह/छेद करना
ओंगन – गाड़ी के पहियों हेतु तेल
औरवौ, औसे – सूझना, सूझा
औतें – गुड़ी, गुड़ी की लकीर
औरन के – परायों में, पति–पत्नी का एक दूसरे को इंगित
अँगुछिया – तौलिया
अंतपंत – दूसरी या अन्य जगह
अंटा – गोला, भांग की गोली
अंटी – कमर में खोंसना
अंजा – नागा, अनुपस्थिति
अँडौलौ – बिना सोच विचार का, पद्धति विहीन कार्य या भाव
अँगर – गाड़ी में आगे के भाग में भार अधिक होना
अँगाऊँ – भविष्य में, आगे, बदन में सामने का भाग
अंधरयाकें – बिना देखे
अंदर खुक्क – पूर्णतः अंधकार
कुनवां – वंश, परिवार
कुठिया – मिट्टी का बड़ी टंकीनुमा पात्र अन्न संग्रह हेतु
कोते – बदले में
कडुवा – कर्ज, ऋण
करइ, करओ – कडवी, कडुवा
कुनयाब, कुनयाई – अनीति, अन्याय बदमाशी
कनबूजों – कान में समीप गाल
कंगीर – अत्यंत गरीब
कतन्नी – कैंची
कुकऊँ – पैर पेट से लगा पंजों के बल बैठना
कतरव्योंत – काट छांट
कूत खाँड़ – ज्ञान, जानकारी
कुतका – कछु नहीं, नहीं का संकेत
कडीलबौ – घसीटना
कोद, कुँदई – पक्ष, ओर, पाली
करए दिन – पितृ पक्ष
क्रिस्तान – अपवित्र, भ्रष्ट
कनकैया – पतंग
कुर्रू – दौड़
कुड़मुता – निकृष्ट कर्म करने वाला

कसतौ – कसा हुआ, कसावयुक्त
कुलांट खाबौ – सिर के बल उलट जाना/बात पर स्थिर न रहना/व्यापार में घाटा होना
कत्ती के – पर्याप्त मात्रा में/इच्छानुसार
कारे कोसन – बहुत दूर
काड़मूंसकें – कर्जकर/मांगकर
करनारी – खूब कार्य करने वाली
कानों – एक आँख का, कब तक, आ की मात्रा
कैनौ – अनाज दे के वस्तु खरीदना
किनमिनाबौ – सहमत न होना
खुंस – गुस्सा
खूंटवौ – टोकना
खखलखावो – दांतों से काट लेना
खोरी – दोषारोपण
खोर – गली, आदत
खातरी – भरोसा, स्वागत
खोंदवौ – पैरों से शरीर दबाना
खट्टापट्टी – मित्रता टूट जाना/बुराई हो जाना
खुटी – कमर वस्त्र में खोंसने का स्थान
खुदरौ/खुरचट्टो – झगड़ा लेने को छेड़ना
खलेती – जेब
खलता – थैला
खुर्रयाबौ – ताव खाना, गुस्सा होना
खूंत – लकड़ी का टूटा नुकीला सिरा
खाँदी – अनुभवी
खटका – शंकित होना,डर,खटखट स्वर
खटखटा –पालतू बड़े पशु के गले में लकड़ी की घंटिया
खिर्र विर्र – फैलना
खिरबिर्री – बड़ी बड़ी साँसों वाली बुराई, दूर–दूर होना
खुरूरू – नारियल की गरी
खँगवौ – संलग्न होना, लगातार विनय करना
खन्ना – होरा भूजने का स्थान
खैरोरीं – खैर की गोलियां
गववारौ – अज्ञान, छोटी उम्र का, पुत्र
गसा गुसी – बैठनें में संकीर्णता होना
गंवरगट्ट – महागंवार
गुलकवो – गड़ाने सहित स्पर्श
गुना फूल – बेसन का पकवाकर जो विदा के समय दिया जाता है।

गेरउँ गेर – चारों ओर
गेरना – परिक्रमा देना
गड़िया घुल्ला – मकर संक्रांति पर मिलने वाले शक्कर के खिलौने, इन्हें लेकर रिश्ते में जाना
गंठयावौ – जनेऊ का गांठ में रख लेना
गुड़यावौ – तह करना, मोड़कर रखना
गुड़ी–मुड़ी – मुट्ठी में बंद कर गोल कर देना
गेंतवौ – पीछा करना, घेरना
गड़ई – लोटा
गेंड़ुआ – तकिया
गुली–गुली से – छोटे–छोटे से
गटा पार्ची – प्लास्टिक
गुमकमार – दिखाई न पड़ने वाली/चिन्ह न छोड़ने वाली मार
गुलगुली – स्पंजदार, उंगली से पेट किनारे गुदगुदाना
गुड़कतान – उधेड़कर, विचारों का गुणाभाग करना
गुरा गुरा – पोर–पोर,जोड़–जोड(शरीर के)
गुरयाई – मिठाई
गरका – पहिया को रोके रखने की ओट
गीधवौ – मोहित करना, मंत्र मुग्ध होना
गजबीतौ – सामान्य से ज्यादा होना
गुरतरौ,गुरीरै – मीठौ, मीठे स्वाद का
गुंजवौ – कम स्थान में ज्यादा का होना/भीड़
गानौ गुड़िया – आभूषण, गहने
गतरा – टुकड़ा, रसदार ठोस कटा हुआ अंश
गंडा – ईख का टुकड़ा, ताबीज, लकडी का टुकडा
गुनमेटा – एहसान न मानने वाला
गजासाई – पूर्व में प्रचलित ठर्रा, मोटा पैसा पहले चलन का चांदी का कल्दार
घैरा – बनावटी दिखावा, परनिंदा
घंटी – छोटा लोटा, विद्यालय की घंटी
घुटपुटैंया – घुटनों के बल पर चलना
घरघूला – घरोंदा
घाँईं – समान, सदृश
घैला – छोटा घड़ा

घिनघिचयाव – मोलतोल / मोलभाव के अति
घुटे घुटाये – छटे हुए, मंजे हुए, अनुभवी
घरू – घर की, घर जैसे ही, आपसी
घोंचू – बुद्धू
घींच – गर्दन
घपोचा – अकुशल, मूर्ख, गलती करने वाला
चमकवौ – लज्जा–संकोच करना, चमक पैदा होना
चपरकुटौ – व्यर्थ की चर्चा
चिलकनू – चमकदार
चौज – कठिनाई, होशियारी
चपावौ – छिपालेना, दबाना
चटकें – उपहास, हंसी उड़ाना
चिचयावौ – जोर से बोलना
चुरू – चुल्लू
चरवदयाब – कहासुनी, बातचीत
चोंखरी – चूहा
चकड़धम – ऊधम, दौड़ धूप मची होना
चौंद – चेहरा, मुँह
चनकट – धीमा तमाचा
चरपटया – चौपटा (बिनएट) करने वाला
चोंचले – ठनगन, बनावटी व्यवहार
चीबन – हाथों / पैरों में तेज पीड़ा
चँइयाँ मँइयाँ– भावरें, पाणिग्रहण
चुन्नू दैबौ – ललकारना
चिनचिनौ – मन का जल उठना
चम्म चमीटा – पेट भरा होना, तैयार
चमाचम्म – पूर्ण
चोंगट – बुद्धिहीन
चमक चौदस – सौन्दर्य
चरुवा – प्रसव बाद की रस्म, घड़े में दवायें व पानी डाल कर उबालना
चपेटा – लड़कियों का एक खेल
चूल – सपरिवार
छछौबौ – सब स्थलों पर खोज जहां संभावना हो
छँइयापूता – मय बाल बच्चों के
छनकई / छनक्वारी – शीघ्र कार्य करने की आदत, फुर्ती
छाँयरी – परछाई
छिटिया – टोकरी का प्रकार
छिड़िया – सीढ़ी
छमकछल्लौ – प्रशंसा की ललक लिये सजी संवरी चंचल युवती
छन्नछन्न होवौ – हानि पर पछताना
छैल चिकनिया – सजे संवरे रसिक प्रवृत्ति वाले युवक
छरछंद – ढोंग
छेरी / छिरिया – बकरी
छन घुटरइ – अच्छी निभना / शराब या भांग पीना
जोर तगोर कें – एकत्र करके
जास्ती – अधिक
जरुबा बरुवा – ईर्ष्यालु
जुगत – उपाय
जुवाजीदार – यदाकदा
जेंबौ – भोजन करना
जैवाखाई – खाना पीना
जेंवनार – पंगत, भोज
जगड़डवार – बहुत सारी वस्तु का एकत्र समूह
जबरइँ – बलपूर्वक
जिदनइँ – जिस दिन भी
जुँदैया – चाँदनी
जमावड़ौ – भीड़
झोंटा – सिर के बालों का समूह
झुली परें – सन्ध्या पश्चात्
झाड़े / झड़ास – पाखाना,
झोला – थैला, कुर्ता
झुतरा – बिना कंघी किये केश समूह
झक्क – आवेश, स्वच्छ, खत्म
झम्मक झुल्ला – ढीला, लटकने वाला
झोल – देर
झेलवौ – सहन करना,
झुटपुटौ – हल्के प्रकाश, दिनरात की संधि बेला
झबरा – बड़े बालों वाला
झरयाबौ – खाली करना / सब रकम छुड़ा लेना
झट्टई – तुरन्त
झरपोटा – रसभरी, फल
झूकबौ – हिम्मत हारना
टटकौ, टटकरौ – पूर्ण शिथिल नहीं होना
टिटइँ – दुर्बल
टुनयाबौ – छेड़छाड़ करना
टाठी – थाली
टठुलिया – छोटी थाली
टीकाटीक दुपरिया – खरी दोपहर
टुनई / नुकई – डाल का अंतिम सिरा
टिंच – पूर्ण तैयार
टटा बेंड़ो – अवरोध, ज्ञान
टिमटल्लौ – ऊँची जगह
टपटेरबौ – देना
टुंगावौ – थोड़ा थोड़ा देना
टुलकौ – छेद
टका से – बहुत हल्की कीमत
टिकटी – तीन पैरों की बैठकी
ठक्काठाई – बिना लुकाव छिपाव, स्पष्ट
ठसक – घमंड
ठठबौ – चुभना
ठट्ठ – भीड़
ठेंके – जानबूझकर
ठाँस – डांट डपट
ठनगन – बहानेबाजी
ठनाठन्न – रुपये, कलदार
ठेंसबो – दबादबा कर भरना
ठवेरबौ – किसी को टारते हुए दे देना
ठठेरौ – ज्वार के पेड़ का सूखा तना
ठ्वाकरी – दूध देना बंद होने की समीपता वाली गाय / भैंस
ठिया – आश्रय
डांग – घना जंगल
डांड़ – पतवार, भीतर की ओर के दांत, दंड
डड़ींच – रेखा
डुरयाबौ – साथ लेना
डिंड़याबौ – जोर से रोना
डड़ौंका – डंडा
डुंडी – मुनादी
डिंगरा / डिंगरिया – वस्तु के बड़े या छोटे टुकड़े
डेरा डंडी – गृहस्थी का सामान
डांडौ – खुला मैदान, होलिका हेतु गाड़ा गया ध्वजायुक्त बांस
डौल डाल – प्राप्ति की आशा, शौच
डील डौल कौ – तंदुरुस्त, मोटा
डंगाडोली – दो लोगों द्वारा उठाकर रखना
ढड़क पैला – अस्थिर
ढंग ढौर के – व्यवहार लायक
डँड़ा – चकिया या जतरिया के चलाने की मुठिया

ढुकरा – बृद्ध
ढट्टी – आंख पर बांधी पट्टी
ढंकाढाई – टालमटोल
ढढ़कावौ – लुढ़का देना
ढला चला – परम्परा, जीवन निर्वाह
ढिल्लमुतान – ढीले ढाले, आलसी
ढिग – समीप, किनारी, गोवर से लीपने की सफेद मिट्टी की बनी सीमायें
ततोश – आवेश, गुस्सा
तानकें – बल लगा के, जोर से
तुलजावौ – कमर कसना
तरऊपर – एक के ऊपर एक
तिनंग – चिढ़ाने का आधार
तुन्नयावौ – ऐंठना
तिड़ीबिड़ी – बिखर जाना
तक्का – छेद
तकता – दर्पण
तिरखूंट – समोसा
तींतौ – गीला
तऊ – इस पर भी
तुरतई – तत्काल
थराई – अहसान
थत्ता मम्मा करवौ – ऊपरी मन से हाल पूंछना, औपचारिकता
थतोलबौ – स्पर्श, हाथ फेरना
थुड़् उड़ाबौ – अपमानित करना
थुली – दलिया
थन्ना – स्थान
थिलार – गोबर का बड़ा ढेर
दिखनोसू – दर्शनीय
दुगइ –दरबाजे या आंगन में बनी छपरी
दोंचाल – भूकंप
दोंचबौ – मूसल मारना
दांती – परेशानी
दबारौ – दबाव
दौनैंयां, दुनियां – पलास के पत्तों से बना कटोरानुमा पात्र
दुनयाबौ – मोड़ना
दोंदबौ – अपनी ही बात पर अड़ना
दुलीचा – गलीचा
दाँय – फसल गाहना, अधम
दालुद्दुर – गंदगी, कूड़ाकरकट
दिक्क – बीमार
दिनारू – लंबी उम्र का
दुराभांती – भेदभाव

दुरभतयाई – भेदपूर्ण व्यवहार
दोंदरा – शैतान
धरौवल – विशेष समय हेतु धरी वस्तु या पोषाक
धौरी – सफेद
धुकयावौ – पहिचान न पाना
धता बतावौ – इंकार करना
धुकरइ – मनचाहा होना
धौलथपरिया – सिर पर दो एक मारना
धकापेल – बिना रुकावट
धज – रूपरंग, तन सौन्दर्य
धुरपट बिगार सै – निष्क्रिय करना
धुंगोई – गुंडागर्दी
धिंगानौ – ऐसाहोहल्ला जिससे मान पर दाग लगे
धोबा की – धुसी धुलाई छिल्के रहित दाल
धुनबौ – धोया जाना, मानहानि होना
धन्ना सेठ – अमीर
धरातौ – जल्दबाज, अधीर
धचेड़कें – ठूंस ठूंस के भरना
धचेड़वौ – पटक के ऊपर चढ़ बैठना
धूर दैबौ – सामर्थ्य को धिक्कारना
धुनकबौ – बहुत पीटना
धरौ – तौल बनाना
धांई – बारी, क्रम
धँधकानौ – खाना पीने वाला उत्सव
धनी धोरी – मालिक
धनी–धना – पति–पत्नी
निछक्कौ – सूनापन
निनोरबौ – सुलझाना
नैनूं – मक्खन
निचाट – दो टूक कहना
नीचट – मजबूत
निरैबौ – प्रदर्शन करना
न्योर कें – झुक कर
नोनों – मनोरम, अच्छा,
नेंगर – समीप
नातर – नहीं तो
न्यौतो – निमंत्रण
न्योंतार – मेहमान
नवेरबौ – छांटना
न्याव – झगड़ा
नन्नौ – छोटा पुत्र
नगड़दम – अकेला

नीखरा – शुद्ध
निखारी / निखरारी – बिना बिछौने की खटिया
नगीच – पास ही
नस – पोल, गुप्त रहस्य, मिर्च जलाने की गंध
नाज – गल्ला, अनाज
नंगाझोरी – खाना तलासी
नदारौ – निर्वाह
नरभरबौ – पेट पूजा
नों – नाखून
नोंन – नमक
नोंने – अच्छी तरह से
नोनपिठैया – पींठ पर लादना
नठया – संतानहीन
नरौंटें – नाखूने से नोचने के निशान
नानी – महीन, नीची जात
नौरता – नवरात्रि में कन्याओं द्वारा चौक पूरने का खेल
नातौ कौ पनातौ – बहुत दूर का रिश्ता
नर्रयाबौ – गुस्सा होना
नौबत – राजमहलों में बजने वाले मधुर बाजों का स्वर, हालत होना
परबायरौ – पृथक
पीरीं पई – भोर का प्रकाश
परवाई – सब्बल, कुश
पुरैंटबो – दौड़ते हुए पीछा करना
पैरबौ – पहनना, तैरना
पटाबौ – मोलभाव करना, मृत होना
पालौ परबौ – सामना या मुकाबला
पोलका – ब्लाउज
पठौनी – पुत्री की विदा में दिया सामान
पुरखेंत – पुरखों से प्राप्त
पच्यातिन – बातूनी महिला
पुमारौ – बेकार की चीजों का संग्रह व्यर्थ की बातें
पनवारौ – पत्तल पर व्यंजन परोसकर भेजना
पटियाँ पारबौ – केश सवांरना
पैलौटी – प्रथम प्रसव वाली
पसेऊ – पसीना
पनपथू – केवल हाथों से बनी रोटी
पलैर – पालतू
परवा – लम्बी दाढ़ी
पजोखो – मृतक के घर का फेरा

पटकें – चोट से पिचका भाग
पनैंयाँ – जूते
पसर – रात में भैंस चराने ले जाना
पिरातौ – दर्द, पीड़ा
पांउने – मेहमान, दामाद
पैला – अनाज मापने का पात्र
पैले मौरां – सर्वप्रथम
पुन्तरिया – शिशु का कमर वस्त्र
फुलका – बड़े आकार की पतली रोटी
फचउ – देहाती जूते
फटफटिया – मोटर साइकिल
फतोंई – पुरुष वस्त्र बनियाननुमा
फलइया – लाभ, धन मिलना
फट्टे बगराबौ – बनावटी व्यवहार
फाँस – कोई कण चुभकर रह जाना
फरवा – पैर का पंजा
फरा – पानी में सेकी गयी पूड़ी
फुसकेलू – थोड़े में फुसकने वाली
फद्दा – इतना मोटा कि चलते न बने
फुकला – छिलका
फुकला उड़ाबौ – हराना,
फट्टाझार – पूर्णतः, अन्त तक
फूंद सरकना – डर जाना
फुट्ट फैल – बिखरना
फर्राटे सें – तेज गति से
बिसी – बीस अदद की एक इकाई
बायनौं – विदा के साथ आए पकवान भेजना
ब्योंतबौ – नाप लिया जाना
बाई चौरा – दिखावा करना,
बोंकाबौ – दूर से पकड़ाना
बंदेज – सुरक्षा व्यवस्था, प्रेतबाधा से बचाव
बिलकुआ – छोटी सी टोकरी
बनौवल – बनावटी, कृत्रिम
बरयाकें – मुश्किल से
बजड़बौ – मारना,
बाँगी – लत डालना
बट्टौ – दाग
बोंटयावौ – बहलाना
बट्टठियाँ – तितर बितर, बर्बाद
बोंड़ार – विवाह में फुआ के द्वारा भेंट की गयी साड़ी
बस्कतया – किराएदार
बिजना – हांथ का पंखा

बुरवासन – बुराई हो जाना
बर्रोटी – सपना
बकटौ – पांचों उंगली से भर लेना
बैकल – पागल
बोंड़बौ – लता का बढ़कर छा जाना
बुक्ल्याबौ – हास परिहास करना
बरूला – गोबर से बने होलिका पूजन हेतु बने आकार
बिदी चुक्क – हैरान, किंकर्तव्यविमूढ़
बिलाबौ – समा जाना
बिरी – पान की बीड़ा
बराई – ईख
बुक्का भरबौ– पांचों उंगली गपाकर भरना
बिलात – बहुत
बोंटिया – बहू
बसकारो – वर्षाकाल
बगैचिया – छोटा सा बाग
ब्यारी – रात्रि का भोजन
भट्टें – कठोर श्रम के कारण हांथ व उंगलियों में बने चिन्ह
भैराटपन – खाने को लालायित रहना
भांस – स्वर
भेरो परबौ – सामना होना, साथ होना
भुकरबौ – रूठना
भन्नाबौ – गुस्सा होना
भ्याँवनो – भयप्रद लगना,
भबूदर – गर्मराख
भुन्सरां – भोर, सुबह
भंजाबौ – फुटकर कराना, दुश्मनी निकालना
भरका – गैल के गड्डा
भद्द खुलबौ – रहस्योदघाटन
भोंदू – मूर्ख
मसकई – बिना शोरगुल के
मोंगावौ – चुप कराना
मलकइयाँ – बैठे बैठे उछलना
मिलकाबौ – पलक झपकाना
मेंदरौ/मिदकरवा – मेंढक
मुंदरी – अंगूठी
मुकरबा – अन्त्येष्टि स्थल पर बना स्मारक
मुकरबौ – बात से पलट जाना
मसाकें – मुश्किल से
मुआसाकी – आमना सामना करना
मोंचायनौ – नई बहू का मुँह देखने की रस्म

मुंसेलू – मजदूर पुरुष
मुलक्कौ – बहुत अधिक
मड़वाई – मण्डपाच्छादन हेतु पत्ते, लकड़ी, बांस
मदल्लू – मोटी ताजी
मुड़ड़ा – जूता
मंतक मंतक – बताये बगैर
मदूकड़ा – मोटा
मनघटौ – कुयें का ऊपरी भाग
मिहरारू – पत्नी
मिहिरिया – औरत
मिसिया – नर्स
मिरजांई – पुरुषों का वस्त्र
मसकमार –ऐसी पिटाई जो निशान न छोड़े
रहुनियां – चरने जाते पशुओं को जोड़ने की जगह
राईभरौ – पुत्र, छोटा
रोंझौ – परेशानी
रुँगाबौ – अतृप्त रखना
रहस – निवास
रगेदबौ – पीछा करके भगाना
रुन्टयाई – बेइमानी
रगदा – सूक्ष्म धूल
रिरयाबौ – दीनता भरी विनती
रावला – राग विशेष, बात मचा देना
रहाई – चैन, आकुल न होना, शान्ति
रखन्वारी – चौकीदारी
रुबन्टू – बात–बात पर रो देने वाली
रुँद – सीमांकित भूमि
रौंठा – रसविहीन
रामध्वाई – राम की सौगन्ध
लुचई – पूड़ी,
लबुदिया – लघुलाठी,संठी
लमतरानी – हवाई, गप्प
लग्गू भग्गू – चापलूस
लग्गी – शत्रुता, पत्ती तोड़ने का हंसिया लगा बांस
लबरी – झूठी
लौंदा – खोवा भर सनी हुई माटी
लगवारे – प्रेमी, पीछे लगे
लमछरी – पतली, पनछीली, ऊँचे कदकी
लिबांड़ुआ – बिना काम मुंह उठाये फिरना
लिबड़ा – पागल सा

लहटावौ – मनपसंद चीज देकर बारबार बुलाना
लटौ – लड़ाकू
लतरौंदा – पैरदान, पैरों के नीचे का
लत्ता – कपड़ा
लुपरी – दवायुक्त गुथे आटे की पट्टी
लरम – कमजोर
लड्धेर – बच्चों की भीड़
लैनडोर – अटूट
ललाबौ – तरसना
लुखरगढ़ौ – चक्कर, व्यर्थ की परेशानी
लुखरिया – जड़ीबूटी, लोमड़ी
लीलबो – संपूर्ण वस्तु उदरस्थ करना
लड़इया – सियार, लड़ाकू
लेसबौ – जलाना
लखूरौ – लखपती गद्दी का जलता दिया
लाकौर – विवाह की रस्म
लोलकुचइया – कार्तिक पूजन के पकवान, गोंठी हुई मीठी पूड़ी
लोला – ज्ञानहीन
बार जैबो – टट्टी को जाना
बरयानौ – पागल
बरौ – जाओ
लौलैया – संध्याकाल
संगामित्तू – मित्र
सैराट – पागलपन भरा दिखावा
सुरेक – जाड़े की अत्यन्त ठंडी हवा
सर्र फर्र में – जल्द बाजी में
सोंड़रा – बर्बादी
सुद्धा – समेत
सरौदौ – विचार प्रवाह में बहते जाना
सेंगौ – सम्पूर्ण
सोसंतयाई – आजादी
सनाकौ – सन्नाटा
सब्यार – पूरी तरह
सरतारो – बिना काम काज का समय
सेंतमेत – निःशुल्क
सकरौंदा – संकीर्णता
सूदें – सामान्य ढंग से
स्यात – समय विशेष
साकौ – मन का खानपान
सकेलबौ – एक जगह करना
सौकारूं – समय रहते, शीघ्र
सांसी – सत्य
सुहारी – पूड़ी
सटाकदीना – बिना बाधा, तुरन्त
सकरौ – संकीर्ण, जूंठा
सोंज / संजातू – साझेदारी
सपराखोरी – स्नान
सुपेती – रजाई
सुपेत – सफेद
सूनर – निर्जन स्थान
सकरॉंत – बुड़की, मकर संक्रांति
सुटारौ – सुरक्षित
सुटौरा – प्रसव बाद मिलने वाला मेवा युक्त गुड़
सुमी – बराबरी करना
सजन पाँत – विवाह पंगत
सांवटे – समाप्त
हींसा पटा – हिस्सा बांट
हींड़बौ – बिछोह की व्याकुलता
हलालिया – गंदगी में काम करने वाला
हललयाई – गंदी गालियां
हलाकान – परेशान
हनकें – जोर से
हिलुरबो – लहरों का उठना
हाउहप्प – दीर्घाकाय
हुनगारू – शीघ्र विकसित होने वाला
हुलकी परै – मौत आये
हुलफुलाट – प्रसन्नता / जल्दबाजी
हुड़क चुल्लू – जल्दबाज
हाते लगाबौ – मनौती मनाने पंजा हलदी में रंग कर लगाना
हरिया – फसल पर बैठा पक्षी
हूँका – कहानी सुनते समय हाँ कहना
हार – जंगल, खेत, हार
हाल फूल – खुशी
हूँड़ – असभ्य
हींठबो – पैदल चलना
हरइँ हरइँ – धीरे धीरे
हुमसाबौ – आधार से थोड़ा ऊपर उठाना
हियाव – हिम्मत
हुड़बौ – सटकर बैठना
हँड़न में – पितृपक्ष में
हड़रा – हड्डियाँ
हूचबौ – चूकना, अवसर खोना

नोट : शब्दों की बनावट व शब्दार्थ में त्रुटियां संभावित व स्वाभाविक हैं। अतः सुविज्ञ जन इन्हें क्षमा करते हुए सुझाव प्रेषित करने का कष्ट करें।

– शुक्लाना, छतरपुर म.प्र. 471001

बुन्देली बुझौअल - अरविन्द सिंह यादव

एक ठांडी एक परी, एक छमा-छम नाच रही। (रोटी)
फरै न फूलै छबलन टूटे। (राख)
कौडू-कोडू गइया, नाक गई नरिया, भींजी न पगैया। (मकरी)
रात में खाली दिन में भरी। (अरगनी)
भूरी बिलैया हरीरी पूँछ, न जानौ तौ बऊ से पूँछ। (मूली)
क्यारी उपजे हाट विकाय, गूदो फैंके बकला खाय। (आटा, चल्ली)
हाय-हाय हायरी, बरै तोरी कायरी।
लरका है पेट में झालर है बायरी। (भुन्टिया)
रींग रींगा तीन सींगा, गाय गोला दूध मीठा। (सिंगारा)
ऊँट कैसी बैठक बैठों चीता कैसी खाल
एक अचम्भौ हमने देखो तन में नइया बाल। (मेढक)
एक भरका में लोटे लरका। (जीभ)
सुरका के नेचें भरका। ओई में बिड़े बत्तीस लरका (दांत)
गेर गेर बारी, बीच में घुन्चू कारी (आंख)
गोल-गोल जीमें सात टोंल। (मूंड़)
एक बैलवा अजरा कजरा चारउ देश रमांय।
बास्सा से बात करैं पानी देख उरायें।। (कागज)
एक भुजा धारन करैं, बैठो आसनमार
सब जग खां बस में करैं, तन में नइयां चाम।। (जांतो)
पान कैसो पत्ता, सुपारी कैसो रंग।
देवरा को छोड़कें, चली जेठ के संग।। (राहर)
बन से निकरो बन बिलार।
आदौ करिया आदौ लाल। (घुन्चू)
करिया डारो लाल निकारौ।
उकरूं हो फटा-फटा मारौ। (कुसिया)
दस जनन के बीच में, पकड़ी गई एक नार।
अपनो काम संवार के, पाछूं डारी मार। (रोटी)
टूटे न बारी ऐरो न होय।
पतरिया निकर गयो छेड़ो न होय। (सुई)
देत होय ता न लाईये। न देत होयता लेत आईये। (कीपर)
जान कहानी मोरी, मुन्डी मताई तोरी। (सुपारी)
लेन जात ती तोय, तैंने ले लयो मोय।
तें छोड दे मोय, मैं लै जांव तोव।। (पानी, पनिहारी)
पोले में पोलो का (नारियल)
कारी कुत्तू कुदवा खाय, भौंक धरे ता जी से जाये। (बन्दूक)
तनक सौ लरका थूलमथूल।
करया धोती माथे फूल। (मकाई को भुन्टा)
तनक सौ लरका लये गुटान।
धर मसके ता हले ज्वान। (बिच्छू)
हंसा राम हरीरौ खांय, हगवे कबहूँ न जाय। (हंसिया)
क्यारी उपजे हाट विकाय, घर आवे घर बह जाय (फूट)
एक चौंतरा पै घांस जमी। (मूड़)
गैल चलत में पाई बात, डेढ़ मताई अढ़ाई बाप। (अंगद)
उठत कें घींच मसकौं। (गड़ई)
दिन में खाली रात में भरी। (खटोली)
आठ पहर बत्तीस घड़ी, ठाकुर ऊपर ठकुराइन चढ़ी। (तुलसी)
ऐचक मेचक घोड़े को।
तीन मूड़ दस गोड़े कौ। (हर, बैल, हरवाओ)
एक थाली में दो अंडा। एक गरम एक ठंडा। (सूरज, चंदा)
सोरा के संगै सोवै तीन जनैं। (चौपर के गोटी पांसे)
एक लठिया की ऐसी कहानी।
ऊ में लुको है मीठो पानी। (बराई)
हगत में काय मारत। (चल्ली)
गुच गुच करे लत्ता के पोंछ देत। (गुदना)
बारे में बगला भई, ज्वानी में सुवा।
ऐरी सखी मैं तोंसे पूछों, बुढ़ापे में का हुआ। (मिर्च)
भोजन के सामान में, कुल अक्षर है तीन।
पहला अक्षर छोड़कर, ब्याह शंभू से दीन। (मगौरा)
दिनभर सपरे दिन भर खाय।
लबरो नोई सांसो आय। (सांचो ईट को)
जांतौ बरै कुनैतौ तापै, तापै बैठी करधनियां।
एक अचम्भौ हमने देखौ, डउवा पैरें परदनिया। (लालटेन)
गंग शीश ऊपर बहै, गरैं मुण्ड की माल।
वर्षा पर असवार है, गौरा कौ पति नाय। (रहट)
खेती के सामान में, कुल अक्षर है तीन।
पहलो अक्षर छोड़कें, ब्याह है राम को दीन। (कुसिया)
तेली लौ कौ तेल, कुम्हार की हंडी।
हांथी कैसी सूड़, नवाब की झंडी। (दीपक की लौ)
तुमाई घरवारी हमें देत तुमें देत नइयां। (घूंघट)
बीस हाथ कौ लुगवा, दो हाथ की लुगाई।
लबरौ नोई सांसो आय, राम दुहाई। (रावण-मंदोदरी)
हार से आई बंदो, घरै छिदाय कान।
बीस पांव से निग चली, छः मौं बारह कान। (कोपर लगाना)
पांच नग धरनी धरैं, पचपन चलै अकाश।
तीन लोक की संपदा, घरैं कंधा पै जात। (हनुमान-राम-लक्ष्मण)
सरकें लल्ला, औंदे लल्ला।
साल भरे में लौटें लल्ला। (खपरा)

- भियांताल, जिला छतरपुर □

"पइसा दै दे मोय मतारी"

पइसा दै दे मोय मतारी, जाने गाँव बसारी।
कक्का, बब्बा, बऊ से कओ सो, उनने मारो भारी।
कोऊ पुरा में ऐसौ नइयां, करदौं जी संग त्यारी।
देखौं खेल बुंदेलखण्ड के, सुनहौं राई दिवारी।
मेला लगो देखहौं जी भर, करहौं उतई बियारी।। □

- काशीराम अकेला, सहकारी प्रेस, छतरपुर

प्रतिवेदन : बुन्देली उत्सव एवं महाराजा छत्रसाल मेमोरियल टूर्नामेन्ट 2000

प्रस्तुति : भारत कृष्णदेव, जितेन्द्र सिंह 'जित्तू' एवं शारदा प्रसाद शुक्ला

बुन्देली लोकसाहित्य और संस्कृति संपदा की जीवनदायनी आनंदधारा को भौतिक युग की चकाचौंध के कारण आये संकट से सुरक्षित रखने हेतु महाराजा छत्रसाल नेहरू युवा क्लब, बसारी के तत्वावधान में सन 1995 से बुन्देली उत्सव के रूप में किये गये प्रथम प्रयास ने सन् 1998 के आयोजन में तब एक ऐतिहासिक मोड़ लिया जब तत्कालीन छतरपुर विधायक श्री शंकर प्रताप सिंह के रचनात्मक सोच का क्रियान्वयन हुआ। दिन में छत्रसाल मैमोरियल टूर्नामेन्ट के साथ ही रात्रिकालीन आयोजन में आंचलिक एवं पारंपरिक मंचीय कलारूपों की प्रस्तुति ने उत्साह और प्रेरणा दी, फलस्वरूप 1999 के आयोजन को गति मिली जिसका प्रतिवेदन गतवर्ष की स्मारिका में प्रकाशित हुआ था। सन् 2000 के आयोजन में साहित्यिक और सांस्कृतिक विद्वानों के विशेष सहयोग ने कुछ नये आयाम जोड़े जिसका संक्षिप्त प्रतिवेदन यहां प्रस्तुत है।

समिति द्वारा लिये गये निर्णय के अनुसार आयोजन 2000 की स्मारिका में बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित करने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर विद्वानों के आलेखों का प्रकाशन किया गया। स्तरीय आलेखों को स्थान मिलने के कारण स्मारिका संग्रहणीय बन गई। इस स्मारिका के संपादन का दायित्व डॉ. बहादुर सिंह परमार एवं सहायक संपादक का दायित्व डॉ. के.एल. पटेल एवं डॉ. हरिसिंह घोष को सौंपा गया था।

महाराजा छत्रसाल मैमोरियल टूर्नामेन्ट 2000 में बालीबाल तथा कबड्डी प्रतियोगिताओं में अनेक स्थानों से आई टीमों ने भागीदारी की। बालीबाल टूर्नामेन्ट मे 19 टीमों ने पंजीयन कराया। बालीबाल में कर्री, चंदला, छतरपुर, नौगांव, पड़वार, खरगापुर, खैराकसार, जरेहटा, खजुराहो, बल्देवगढ़, गढ़ीमलहरा, बड़ा मलहरा, पहरा, मातगुवां, पन्ना चरखारी से आई टीमों ने भाग लिया और कबड्डी में भागीदारी करने के लिये सिवनी, नौगांव, बरेठी, गंगवाहा, कदारी, टिकरिया, शिकारपुर, तिलौहा, सादनी, कर्री (तीन टीमें) बसारी, चौका, खड़गांय, हिलगुवां, पलयन पुरवा, रसुइया ठाकुरन की, एवं पहरा से टीमें आई थीं। खो–खो में तीन टीमों ने भाग लिया। ये टीमें सिवनी, मातगुवां और छतरपुर की थीं। गिल्ली–डंडा में भाग लेने के लिये कुल आठ पंजीयन हुए जिनके नाम हैं – सर्वश्री जगदीश यादव–बसारी, रम्मू रैकवार–बसारी, स्टूडेन्ट क्लब सिवनी, दयाशंकर जोशी–बसारी, बड़े राजा –पहरा, केदारनाथ अग्रवाल – बसारी, दुर्गा प्रसाद अहिरवार – बसारी, सुरेन्द्र सोनी – बसारी। चौपर के टूर्नामेन्ट में भाग लेने के लिये नौ पंजीयन हुए जिनके नाम हैं – सर्व श्री रनधीर सिंह परमार – झमटुली, गुलजारी पाठक – झमटुली, राम किशोर अग्रवाल – पहरा, मुन्नू राजा – नौगांव, कृष्ण बिहारी रिछारिया – नौगांव, धर्मेन्द्र खरे – बसारी, देवेन्द्र सिंह बुन्देला – मातगुंवा, प्रतिपाल सिंह – भैरा, और गोकुल प्रसाद शुक्ल – बसारी, सौ मीटर की दौड़ में ग्यारह धावकों ने भाग लिया। इनके नाम हैं – सर्व श्री कैलाश पटैल – कर्री, सुरेश कुमार चौरसिया – बल्देवगढ़, सुरेश कुमार वाल्मीक – छतरपुर, मुकेश विश्वकर्मा – बसारी, पुष्पेन्द्र सिंह बघेल – बसारी, राजेश अग्रवाल – बसारी, दया शंकर जोशी – बसारी, सुरेन्द्र कुमार सोनी – बसारी, श्री प्रकाश पटैल – बकनन पुरवा, गनेश बरसैया – सिवनी, अनुराग सिंह बुन्देला – कुड़ीला (टीकमगढ़)

टूर्नामेन्ट में बालीबाल की विजेता टीम वाई.एम.सी. क्लब– बल्देवगढ़ एवं उपविजेता बालीवाल टीम – खैराकसार रही। कबड्डी की प्रतियोगिता में प्रगति क्रीड़ा मण्डल सिवनी को विजयी तथा बजरंग क्लब – हिलगुवां को उपविजेता घोषित किया गया। खो–खो की प्रतियोगिता में स्टूडेन्ट स्पोर्टिंग क्लब – सिवनी टीम ने विजय प्राप्त की और सरस्वती शिशु मन्दिर, मातगुवां टीम दूसरे स्थान पर रही। गिल्ली–डंडा की प्रतियोगिता में प्रथम एवं द्वितीय स्थान बसारी के पक्ष में रहे। चौपर की प्रतियोगिता में विजेता श्री गोकुल प्रसाद शुक्ल – बसारी एवं श्री राम किशोर अग्रवाल – पहरा उपविजेता रहे। दौड़ की प्रतियोगिता में भाग लेने वाले धावकों में प्रथम स्थान श्री सुरेन्द्र कुमार सोनी बसारी, द्वितीय स्थान श्री दयाशंकर जोशी–बसारी, और तृतीय स्थान पर सुरेश कुमार वाल्मीकि छतरपुर को प्राप्त हुआ।

महाराजा छत्रसाल मेमोरियल टूर्नामेन्ट, 2000 में कुश्ती की प्रतियोगिता भी बहुत मनोरंजक रही। जिसमें पुरुष एवं महिला वर्ग की जोड़ियों ने भाग लिया। भाग लेने वाली जोड़ियों के नाम इस प्रकार हैं – सर्व श्री सज्जन पहलवान (ग्वालियर) – बद्दा पहलवान (फतेपुर) {बराबर}, बंटी पहलवान (ग्वालियर) – हंश राज पहलवान (रायबरेली) {विजयी}, असरत विद्यार्थी (महोबा) {विजयी} – फूलचन्द यादव (बसारी), राजू पहलवान (हमीरपुर) {विजयी} – चुनवाद पहलवान (कर्बी–बांदा), असरत विद्यार्थी (महोबा) – कैलाश पहलवान (बदियन–बसारी) {बराबर}, रामचन्द्र पहलवान (इलाहाबाद) – रीतेश चीफ साहब (झांसी) {विजयी},

हंशराज (रायबरेली) – जनमेद सिंह (झांसी) {बराबर}, अनिल पहलवान (फतेपुर) – पवन पहलवान (झांसी) {बराबर}, गजेन्द्र सिंह पहलवान (झांसी) – मनकाई पहलवान (रायबरेली) {अनिर्णीत}, गोपाल पहलवान (महोबा) – रामेश्वर यादव (सूरजपुरा–चन्द्रनगर) {बराबर}, रामसिंह पहलवान (इलाहाबाद) – रसीद पहलवान (बांदा) {विजयी}, कल्लू पहलवान (बांदा) – टाइगर पहलवान (फतेपुर – इटावा) {बराबर} बबलू सिंह (बारीगढ़ – छतरपुर) – अशोक सिंह (फतेपुर) {बराबर}, रामप्रसाद उइके (सिवनी) {विजयी} – रंजीत पहलवान (महोबा), श्री राम विद्यार्थी पहलवान (फतेहपुर) – गजेन्द्र सिंह 'भूरे' (झांसी) {बराबर}, नीतू सिंह पहलवान (गाजियाबाद) – चित्रा चौहान पहलवान (कानपुर) {विजयी}, ईदल सिंह (बारीगढ़ – छतरपुर) {विजयी} – जगत सिंह (डगरिया – महोबा), राजू (हमीरपुर) {विजयी} – नंदकिशोर इनवाती (सिवनी)

बुन्देलखण्ड में प्रचलित अश्व–नृत्य की प्रतियोगिता में भागीदारी के लिए जिन्होंने अपना पंजीयन कराया उनके नाम हैं – सर्व श्री धूप सिंह – बरा, करन सिंह – ललपुर, मदन यादव – ललपुर, रामकुमार पटेल – गौमाँकला, मथुरा यादव – बसारी, चतुर सिंह – सैला, बाबूलाल पटेल – सैला, मन्नूलाल यादव – बसारी, किशोरी लाल यादव – कर्री, प्रेम नारायण अवस्थी – नेंगुवां, मातादीन पुजारी – सिलावट, चन्द्रभान यादव – बंधियन, गुलाब यादव – बधियन, इनका सहयोग करने के लिए दुर्गा प्रसाद बाजे पार्टी (बड़े ढोल) बसारी ने भी भागीदारी की थी। यह प्रतियोगिता डॉ. अवध किशोर मिश्रा, प्राचार्य शास. शिक्षा महाविद्यालय, छतरपुर की अध्यक्षता एवं प्रो.. के.डी. मिश्रा प्राचार्य – शास. महाराजा महाविद्यालय छतरपुर के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुयी।

महाराजा छत्रसाल मेमोरियल टूर्नामेन्ट की प्रतियोगिता में दिनांक 12–2–2000 को प्रातः 11:00 बजे से प्रारम्भ हुयी। इस भव्य उद्घाटन समारोह की-अध्यक्षता श्री मानवेन्द्र सिंह विधायक, बिजावर ने की तथा मुख्य अतिथि थे श्री सत्यव्रत चतुर्वेदी, सांसद खजुराहो। दिनांक 14–2–2000 को प्रातः 9:00 बजे से कबड्डी, बालीबाल, खो–खो, गिल्ली डंडा और चौपर प्रतियागिता में प्रारम्भ की गयी। इन प्रतियोगिताओं के आयोजन में मुख्य अतिथि श्री बृजेन्द्र सिंह राठौर विधायक निवाड़ी, विशिष्ट अतिथि श्रीमती ललिता यादव, अध्यक्ष नगर पलिका छतरपुर, और समारोह की अध्यक्षता श्री प्रयाग पाण्डेय महाप्रबंधक, भारतीय स्टेट बैंक छतरपुर ने की । कबड्डी, बालीवाल, खो–खो, गिल्ली डंडा एवं 100 मी. की फाइनल प्रतियोगिता दिनांक 15–2–2000 को प्रातः 9:00 बजे से प्रारम्भ हुयी। यह प्रतियोगिता श्री सत्यव्रत चतुर्वेदी सांसद खजुराहो, के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुयी। दिनांक 16–2–2000 को प्रातः 9:00 बजे प्रारम्भ हुयी कुश्ती प्रतियोगिता में श्री विजय बहादुर सिंह बुन्देला विधायक चन्दला, मुख्य अतिथि, श्री बादशाह सिंह विधायक मौदहा, उ.प्र. और अध्यक्षता डॉ. सुभाष चौबे छतरपुर द्वारा की गयी।

बुन्देली उत्सव 2000 के तहत दिनांक 15–2–2000 को बुन्देली पर आधारित स्कूली बच्चों के सांस्कृतिक कार्यक्रम व बुन्देली पोषाक प्रतियोगितायें सम्पन्न हुयीं जिसकी अध्यक्षता विन्ध्य कोकिल भैया लाल व्यास छतरपुर ने की तथा मुख्य अतिथि के रूप में कुँवर विक्रम सिंह नाती राजा अध्यक्ष, नगर पंचायत खजुराहो, उपस्थित रहे। स्कूली बच्चों के कार्यक्रम में 16–विद्यालयों के बच्चों ने भागीदारी की इसमें बधइया प्रस्तुत करने वाले जीरो माडल हाई स्कूल देवेन्द्र नगर, नाटक प्रस्तुति के लिए हायर सेकेन्डरी स्कूल बसारी नृत्य प्रस्तुति में कुमारी मयूरी जैन लौडी एवं गायन प्रस्तुति में कु. अवन्तिका दुबे खजुराहो को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ और गायन में रवि मंसूरी ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। बुन्देली पोषाक की प्रतियोगिता में तीन वर्ग बनाये गये बालिका, पुरुष और बालक। इसी के अन्तर्गत प्रथम स्थान पाने वालों के नाम हैं कु. अमी अग्रवाल– इटावा, रामलाल चौरसिया, रवी मंसूरी – खजुराहो और द्वितीय स्थान मयूरी जैन–लौड़ी, हीरालाल पाल बसारी, एवं सौमित्र नामदेव – बसारी ने प्राप्त किया।

16 फरवरी को श्रीयुत श्रीमिवास शुक्ल की अध्यक्षता में प्रतियोगितायें सम्पन्न हुयी। इस सन्ध्या कार्यक्रम में दिवारी, कछियाई, ढिमरयाई, चमरयाई बैठक एवं बधइया की प्रस्तुति हुयी। दिवारी की प्रस्तुति में चार पार्टियों ने भाग लिया जिसमें फ्रेन्डस क्लब दिवारी पार्टी –गड़ीमलहरा ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त कछियाई में तीन पार्टियों ने ढिमरयाई की पांच टीमों ने और चमरयाई की दो टीमों ने भागीदारी की। बधइया लोक नृत्य, लोक नाट्य संस्थान पन्ना द्वारा प्रस्तुत किया गया। जिसकी सभी ने सराहना की। इसमें कुल चौदह कलाकारों ने भाग लिया था। ढिमरयाई में पांच पार्टियों ने हिस्सा लिया। जिसमें संजय दुबे एण्ड पार्टी बकस्वाहा ने प्रथम स्थान पाया और नेहरू युवा केन्द्र सागर द्वितीय स्थान पर रहा।

17 फरवरी को बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर के अध्यक्ष डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त की अध्यक्षता में कार्यक्रम सम्पन्न हुये। इस दिन आल्हा गायन में चार दलों ने भागीदारी की। इनमें से प्रथम स्थान प्राप्त किया पहलवान सिंह व पार्टी खन्ना जिला हमीरपुर एवं दूसरे स्थान पर श्री चन्द्र प्रकाश अवस्थी – बसारी की पार्टी रही। दलदल घोड़ी में दो दलों ने हिस्सेदारी की श्यामरी की पार्टी प्रथम स्थान पर तथा कर्री की पार्टी द्वितीय स्थान पर आयी

लोकगीत गायन में 29 दलों ने भाग लिया। इसमें हिमांशु गौतम एवं अवंतिका दुबे खजुराहो ने प्रथम स्थान पर तथा संजय दुबे एवं बैजयन्ती बकस्वाहा द्वितीय स्थान पर रहे। गारी गायन में प्रथम स्थान नीरज विश्वारी बमीठा एवं द्वितीय स्थान बजरंग मण्डल बरेठी ने प्राप्त किया। बिलवारी की प्रस्तुति में फूलबाई एवं सखियाँ बसारी ने प्रथम स्थान पाया। बनरा गायन में कु. ऋतु सिंह बघेल बमीठा ने प्रथम स्थान पाया। लांगुरिया की प्रस्तुति में कु. सुखवती सोनी बसारी को प्रथम स्थान मिला। डॉ. गुप्त ने कार्यक्रम को लोक संस्कृति हित में एक अच्छा आयोजन बताते हुए कुछ नये सुझाव दिये।

18 फरवरी को वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया' की अध्यक्षता में फाग, राई और लघु बुन्देली नाटक कार्यक्रम प्रस्तुत हुये। राई की प्रतियोगिता में पांच पार्टियों ने भागीदारी की। जिसमें से जैसीनगर राई पार्टी (सागर) को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ और द्वितीय स्थान स्वर्गेश्वर राई पार्टी चन्द्रनगर (छतरपुर) को मिला। फाग विधा को प्रस्तुत करने में दो पार्टियों ने भाग लिया। फाग पार्टी श्यामरी (छतरपुर) ने प्रथम स्थान पाया और दूसरी फाग पार्टी पारवा (छतरपुर) दूसरे स्थान पर रही। इसी तारतम्य में लघु बुन्देली नाटक की प्रस्तुति लोक नृत्य संस्थान पन्ना द्वारा प्रस्तुत किया गया। नाटक के सभी पात्रों का प्रदर्शन सराहनीय रहा। इसमें भाग लेने वाले कलाकार थे – कलीम रिजवी, करन सिंह, अरविन्द सिंह, सुरेन्द्र सिंह, अमजद खान और कमल किशोर। कार्यक्रम को संस्कृति की सुरक्षा में एक सकारात्मक प्रयास मानते हुए डॉ. बरसैंया ने इसके सतत् चलते रहने की कामना की।

प्रतियोगिताओं में विद्वान निर्णायकों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रहती है। श्रीमैयादीन तिवारी छतरपुर डॉ. के. एल. पटेल, और श्री करन सिंह बुन्देला को सभी सांस्कृतिक कार्यक्रमों का निर्णायक बनाया गया था। इनके निर्णयों की सार्थकता इस बात में निश्चित होती है कि बिना किसी विवाद के निर्णय केवल स्वीकार ही नहीं हुये, बल्कि सभी भागीदारों एवं दर्शकों ने अपनी संतुष्टि भी जताई। समिति ने इनका आभार माना।

19 फरवरी के अन्तिम कार्यक्रम की अध्यक्षता विजना स्टेट के पूर्व महाराजा ने की। मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. कमलाकर सिंह संयुक्त सचिव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग मध्य क्षेत्र भोपाल उपस्थित रहे। डॉ. सिंह के कर कमलों से बुन्देली उत्सव 2000 की स्मारिका का लोकार्पण किया गया। तत्पश्चात कुछ विशेष विधाओं का फाइनल प्रदर्शन इसी दिन किया गया और विशेष प्रदर्शन राई का भी हुआ। सभी विजेताओं को पुरस्कार वितरण कर सभी का आभार व्यक्त करते हुए विधिवत समापन की घोषणा की गयी।

– बसारी, जिला छतरपुर □

झलकियाँ





बुन्देली उत्सव में बाल कलाकारों की कलात्मक प्रस्तुति।



छात्राएं बुन्देली नृत्य प्रस्तुत करते हुए।



पन्ना का नृत्य दल बधैया नृत्य प्रस्तुत करते हुए।



सागर के कलाकार मिरयाई प्रस्तुत करते हुए।



अश्व नृत्य के दौरान अपनी कला का प्रदर्शन करते हुए अश्वारोही।



अश्वारोही एक और कठिन करतब का प्रदर्शन करते हुए।



दिवारी नृत्य की एक आकर्षक झांकी।



बुन्देली नाटक प्रस्तुत करते हुए स्कूली छात्र।



मूंछ प्रतियोगिता में मूंछों से 4 ईंटों का भार
उठाते हुए एक प्रतियोगी ।



रावला की प्रस्तुति बुन्देली उत्सव 2000 में ।



बुन्देली उत्सव 99 में कार्यक्रमों का अवलोकन करते हुए मध्यप्रदेश के संस्कृति मंत्री श्री अजय सिंह, लोक निर्माण राज्य मंत्री श्री मानवेन्द्र सिंह, पूर्व विधायक श्री यादवेन्द्र सिंह तथा उत्सव के संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह बुन्देला (मुन्ना राजा)



देवरी के कलाकारों की बुन्देली उत्सव 2000 में राई नृत्य की आकर्षक प्रस्तुति



महोबा के कलाकार बुन्देली उत्सव 2000 के दौरान घट नृत्य प्रस्तुत करते हुए।



बाल कलाकारों की भावपूर्ण प्रस्तुति।



महाराजा छत्रसाल टूर्नामिंट में 100 मीटर की दौड़



महाराजा छत्रसाल टूर्नामिंट में कबड्डी मैच का एक दृश्य



कलाकारों को पुरस्कार वितरण



व्यंजन प्रतियोगिता में सजा हुआ थाल बुन्देला



सिवनी की कबड्डी विजेता टीम को पुरस्कृत करते सांसद श्री सत्यव्रत चतुर्वेदी जी।



बुन्देली कवि सम्मेलन में काव्य पाठ करते हुए कवि डॉ. अवधकिशोर जड़िया।



बुन्देली कवि सम्मेलन में सुश्री शशि कणवित काव्य पाठ करते हुए।



बुन्देली कवि सम्मेलन में इतिहासकार श्री जयेन्द्र सिंह परमार बुड़रख अपना उद्‌बोधन देते हुए।



बुन्देली उत्सव 2000 के दौरान श्यामरी पुरवा की चमरयाई बैठक की प्रस्तुति देते हुए।



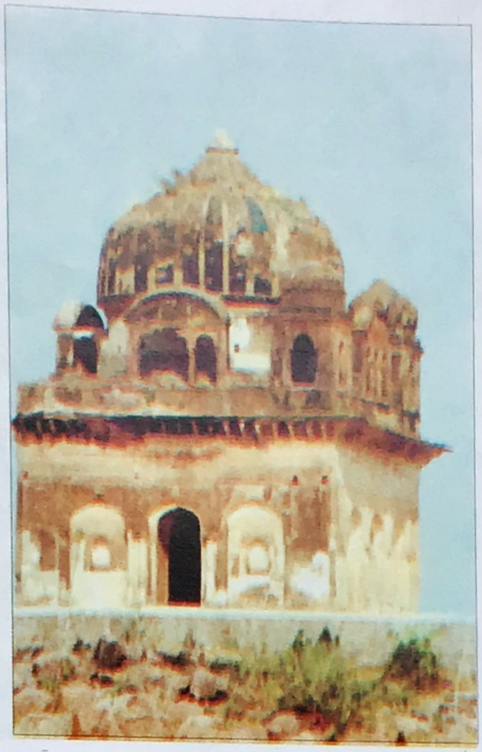
बुन्देली उत्सव में दलदल घोड़ी नृत्य प्रस्तुत करते हुए कलाकार



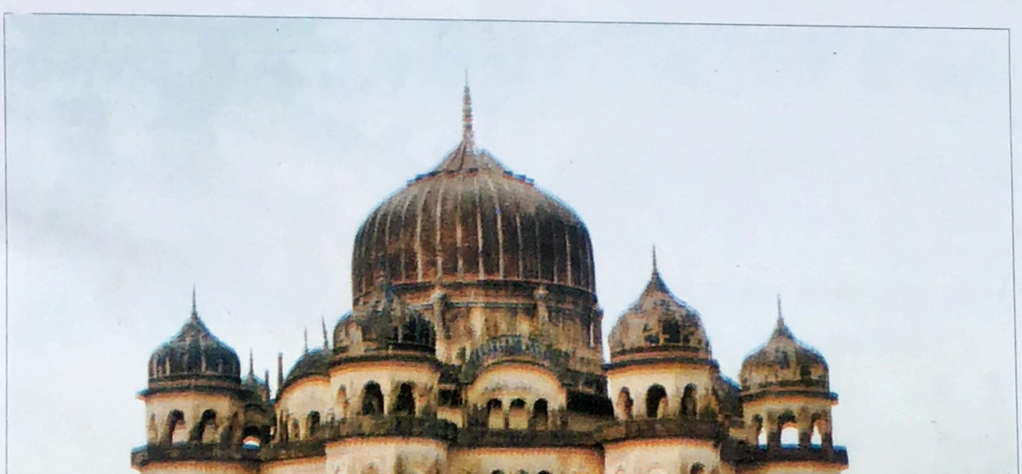
कुश्ती प्रतियोगिता में पहलवानों से परिचय प्राप्त करते हुए विधायक श्री बादशाह सिंह चौदहा तथा श्री विजय बहादुर सिंह बुन्देला।



बुन्देलखण्ड में खेला जाने वाला ग्रामीण खेल गिल्ली डण्डा।



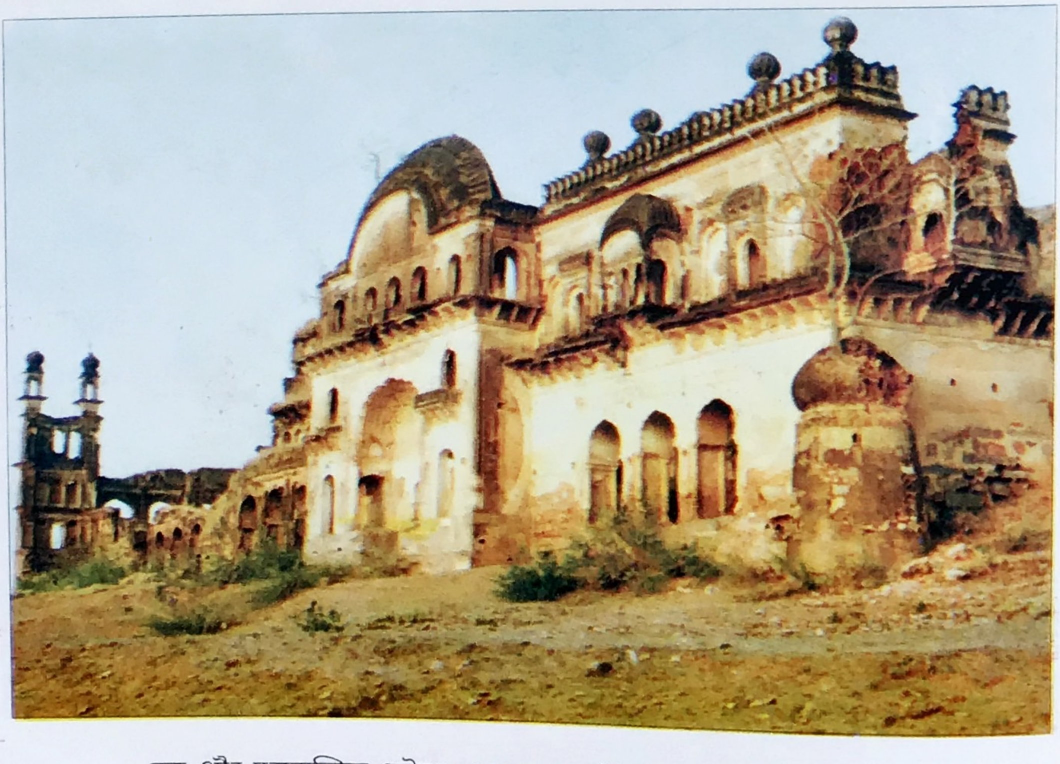
बुन्देलखण्ड के छतरपुर जिले में बिखरी पुरातात्विक धरोहर : बेरछा वाली रानी का मकबरा, धुबेला



महेवा का कमलापति का मकबरा : बुन्देलखण्ड की पुरातात्विक धरोहर



मस्तानी महल, धुबेला : पुरातात्विक धरोहर का साक्षी



एक और पुरातात्विक धरोहर : भग्नावस्था में हृदयशाह का महल, धुबेला

प्रियंका ऑफसेट, 25-ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, भोपाल. फोन : 555